देवराज सुराणा :: अभयराज नाहर
अध्यक्ष मन्त्री
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

*

मुद्रक :
पं० बालकृष्ण उपाध्याय
नारायण प्रिन्टिंग प्रेस,
ब्यावर.

:: दानदाता की शुभ नामावली ::

श्री मज्जैनाचार्य शातमूर्ति स्वर्गीय श्री खूबचन्दजी म० के गुरु भ्राता स्व० व्याख्यी पं० मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म० के सुशिष्य श्रमण सघीय जैनागम तत्त्व विशारद प० रत्न मुनि श्री हीरालालजी का स० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर केन्टोन्मेन्ट मे श्री वर्ध० स्था० जैन श्रावक सघ की आग्रह भरी विनती से मोरचरी तथा सर्पींग्सरोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित एव हृदयस्पर्शी होते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सर्व साधारण के सदुपयोग में लाने के लिए श्रीमान धर्मपालजी मेहता द्वारा सकेत लिपि लिखवाए गए और उन व्याख्यानों का सपादन हो जाने पर "हीरक-प्रवचनादि" पुस्तक के रूप मे प्रकाशित करवाने के लिए सांवत्सरिक महापर्व के समारोह की खुशी मे निम्नलिखित उदार महानुभावों एव महिलाओं ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए सहयोग प्रदान किया:—

:: मानद् स्तम्भ ::

१००१) श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूकड़,
चिकपेट बैंगलोर २

:: माननीय सहायक ::

४०१) श्री सेठ जसराजजी भंवरलालजी सियाल, चिकपेट ,, २
३००) श्री गुप्तदान (एक बहिन की तरफ से) मामूली पैंठ ,, २
२५१) श्रीमती मजुला बहिन C/o एम०एस० मेहता, वॉरटन शोप
महात्मा गाधी रोड़; बैंगलोर १

२५१) श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूनिया,
मोरचरी बाजार, बैंगलोर १

४०६) ,, महिला समाज की ओर से बैंगलोर

१५१) ,, गुप्त दान (एक सज्जन की ओर से) हलसूर

१०१) ,, सेठ किशनलालजी फूलचन्दजी लूनिया,
दीवान सुरापालेन, बैंगलोर २

१०१) ,, ,, मिश्रीलालजी पारसमलजी कातरेला,
मामूली पैंठ बैंगलोर २

१३१) ,, ,, घेवरचन्दजी जसराजजी गुलेछा,
रंग स्वामी टेम्पल स्ट्रीट, बैंगलोर २

१०१) ,, ,, मगनभाई गुजराती, गांधीनगर बैंगलोर २

१०१) ,, ,, गुलाबचन्दजी भवरलालजी सकलेचा,
मलेश्वरम बैंगलोर २

१०१) ,, ,, भभूतमलजी वेवड़ा, वेनी मिल्स रोड़ बैंगलोर २

१०१) ,, ,, पन्नालालजी रतनचन्दजी कांकरिया,
सर्पींग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, उदयराजजी भीकमचन्दजी खींवसरा,
सर्पींग्स रोड बैंगलोर १

१०१) ,, ,, पुखराजजी मूथा, सर्पींग्स रोड बैंगलोर १

१०१) ,, ,, गणेशमलजी लोढ़ा, सर्पींग्स रोड बैंगलोर १

१०१) ,, ,, नेमीचन्दजी चांदमलजी सियाल,
सर्पींग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, भवरलालजी बीसूलालजी समदड़िया,
सर्पींग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, हीराचन्दजी फतहराजजी कटारिया,
केवेलरी रोड बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा,
मारवाड़ी बाजार बैंगलोर १

१०१) ,, ,, दुलराजजी मोहनलालजी बोहरा,
अलसूर बैंगलोर ८

१०१) ,, ,, अमोलकचन्दजी लोढ़ा, तिमिया रोड ,, ,,

१०१) ,, ,, जवानमलजी भवरलालजी लोढ़ा, ,, बैंगलौर १

१०१) ,, ,, मिठ्ठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड
तिमिया रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, मोतीलालजी छाजेड़ ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, भवरलालजी बांठिया ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, जेवतराजजी भवरलालजी लूनिया,
भारतीनगर बैंगलोर १

१०१) ,, ,, लक्ष्मीचद C/oमोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी
न० ३२ D. अरुनाचलम मुदलियार स्ट्रीट बैंगलोर १

१०१) ,, ,, पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नि श्रीमती गजरा बाई
चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) ,, ,, जी० नेमीचन्दजी सकलेचा
ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंगलोर १

१०१) ,, ,, लखमीचन्दजी खारीवाल स्वस्तिक इलेक्ट्रिक
हनुमान बिल्डिंग चिक पैठ बैंगलोर २

१०१) श्री गुप्तदान (एक सज्जन की ओर से) शूले बाजार बैंग०

२०२) ,, सेठ मंगलचन्दजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) ,, ,, रामलालजी मांडोत ,, ,, ,,

१०१) ,, ,, पुखराजजी मांडोत, च्लोक पल्ली ,, १

१०१) ,, ,, पुखराजजी पोरवाल,
चिक बाजार रोड शिवाजी नगर बैंगलोर १

१०१) श्री सेठ अम्बूलालजी धर्मराजजी रांका,
एलगुण्ड पालियम बैंगलौर १

१०१) " " चम्पालालजी रांका ओल्डपुर हाउस रोड़ बैंग० १

१०१) " " भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा,
नगरथ पैठ बैंगलोर २

१०१) " " शान्तिलालजी छोटालालजी, एवेन्युरोड़ बैंगलोर २

१०१) " " हिम्मतमलजी माणकचन्दजी छाजेड,
अलसूर बाजार बैंगलोर

१८१) " " घीसूलालजी मोहनलालजी सेठिया,
अशोका रोड़ मैसूर

१०१) " " मेघराजजी गादिया, अशोका रोड मैसूर

१०१) " " गुलाबचन्द कन्हैयालालजी गादिया आरकोनम मद्रास

१५१) " " केसरीमलजी अमोलकचन्दजी आछा, कांजीवरम

१०१) श्रीमती सरस्वती बहिन C/o मणिलाल चतुरभाई
नवरंगपुरा एलीस ब्रिज बस स्टेन्ट के सामने, अहमदाबाद

१२१) श्री सेठ जुगराजजी खींवराजजी बरमेचा मद्रास

१०१) " " मिश्रीलालजी लूंकड त्रिवल्लूर "

१०१) " " मानमलजी भवरलालजी छाजेड "
पलुमर रोड़ उरगम के० जी० एफ०

१०१) " " पुखराजजी अनराजजी कटारीया आरकोनम

१०१, श्रीमती अ०सौ०कंचनगोरी धर्मपत्नी श्री नवलचन्दजी डोसी,
C/o बोम्बे आपटीक्लब १७ सी ब्रोडवे मद्रास १

१०१) श्री सेठ हेमराजजी लालचन्दजी सीघवी
नम्बर ११ बड़ा बाजार रायपेट मद्रास १४

१०१) " " अमोलकचन्द भवरलाल विनायकीया
१D२/१३६ माऊन्ट रोड़ थाऊजेन्ट लाईट मद्रास ६

:: आभार ::

"हीरक प्रवचन" का तीसरा भाग पाठकों के कर-कमलों में उपस्थित करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता है। कुछ ही समय पूर्व पहला व दूसरा भाग प्रकाश मे आ चुका है। पाठकों ने उसे सहर्ष अपनाया है और इसी कारण आगे के भाग प्रकाशित करने का उत्साह हमे प्राप्त हो सका है। आशा है अगले भाग यथा सम्भव शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुँच सकेंगे।

इन प्रवचनों के प्रकाशन मे जिन-जिन महानुभावों का हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उनके प्रति अतीव आभारी हैं। प० र० मुनि श्री हीरालालजी म० का, जिनके यह प्रवचन हैं, कहां तक आभार माना जाय ? आप तो इसके प्राण हैं ही। वे सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके आर्थिक सहयोग

१०१) वसजीवन पी० सेठ, ठी० सुलतान बाजार
इन्द्र बाग हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)

१०१) श्री खिवराजजी चोरडिया, न० ३६ जनरल मुथैय्या स्ट्रीट
साहूकार पेठ मद्रास न० १

अन्त में निवेदन है कि प्रत्येक पाठक इन्हें स्वयं पढ़ें, दूसरों को पढने के लिए दें और अधिक से अधिक प्रचार करने मे सहायक बनें। इति शम्।

देवराज सुराणा, अभयराज नाहर
अध्यक्ष, मन्त्री,
जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर
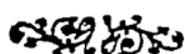
विषयानुक्रमणिका
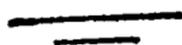
प्रस्तावना:

बैंगलोर गत वर्षावास में पंडित प्रवर श्री हीरालालजी महाराज ने जनता-जनार्दन के कल्याणार्थ जो प्रवचन किये थे वे स्थानीय श्रद्धालु-श्रावकों के प्रयत्न से हीरक प्रवचन के रूप मे सम्पादित और प्रकाशित होकर पाठकों के कर-कमलों मे पहुँच रहे हैं जिसमें मुनि श्री जी ने अनेक आगमिक, ऐतिहासिक, धार्मिक व लौकिक कथा कहानियां व भजन, चुटकले आदि से जनता का मनोरंजन ही नहीं किया अपितु जीवनोत्कर्ष की एक पवित्र प्रेरणा भी प्रदान की है। विविध विषयों पर प्रकाश डालने के कारण साधारण पाठकों के लिये यह समह अत्यन्त दिलचस्प है यह अधिकार की भाषा में कहा जा सकता है।

यह हीरक प्रवचन का तृतीय भाग है, इससे पूर्व दो भाग प्रकाश मे आचुके हैं। पूर्व भागों की तरह ही इस भाग मे भी मुनि श्री जी के अनुभव रूपी हीरे कहीं २ बिखरे पडे हैं जिन्हें पाठकों ने गहराई से अन्वेषण की तो प्राप्त कर सकेंगे और उनके द्वारा अपने जीवन को चमका सकेंगे।

पिछले दिनों स्थानकवासी जैन साहित्य के इतिहास मे प्रवचन साहित्य जिस रूप से प्रकाशित हुआ है वह हमारे लिये अवश्य ही गौरव की चीज है। किन्तु प्रवचन-साहित्य ही सम

कुछ नहीं है, यह साहित्य का एक अग अवश्य है। कहानी, नाटक, उपन्यास, निवन्ध, काव्य आदि अनेक अंग साहित्य के हैं जिनकी ओर भी विज्ञों का ध्यान जाना आवश्यक है। प्रवचन साहित्य में भी चिन्तन की मौलिकता विचारों की गम्भीरता तथा भाषा की प्रांजलता अपेक्षित है। आशा है स्थानकवासी समाज का विद्वद्वर्ग और विशेषतः मुनिराज, साहित्य के उपेक्षित अन्यान्य आवश्यक एवं उपयोगी अंगों को भी समृद्ध वनाने के लिए सचेष्ट होंगे।

११-७-६०
जैन स्थानक
पिपलिया वाजार
ब्यावर (राज०)

देवेन्द्र मुनि "साहित्य रत्न"

— ओम अर्हम् नमः —

:: प्रभु नाम सुमर सुख पायगा ::
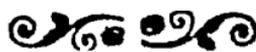
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ।
धातासि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥

卐卐

भाइयो ! यदि आप इस लोक तथा परलोक में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के अभिलाषी हैं तो उसका एक मात्र सरल उपाय यह है कि आप सदैव अपने जीवन में वीतराग परमात्मा का स्मरण करें। निरंजन निराकार तथा अनन्त गुण सम्पन्न भगवान को याद करने से आपकी आत्मा भी तद्रूप बन जायगी। फिर आपको इधर उधर हाथ फैलाने तथा भटकने की आवश्यकता नहीं रहेगी। भगवान का नाम सच्चे हृदय से लेने वाले के सभी विघ्न निवारण होजाते हैं। सच्चे हृदय से भगवान का नाम स्मरण करने पर सती सीता का अग्नि कुण्ड जल कुण्ड में परिवर्तित होगया, सती द्रौपदी के भरी सभा में दुश्शासन नराधम के द्वारा चीर खींचने पर चीर बढ गये और सुदर्शन

सेठ के लिए शूली का सिंहासन बन गया। सो भगवान के नाम-स्मरण में बड़ी अद्भुत शक्ति रही हुई है। परन्तु आज का इन्सान इतना हैवान बन गया है कि उसे परमात्मा का नाम स्मरण करना बड़ा ही कठिन कार्य लगता है। वह अपना सारा समय अपने सांसारिक कार्यों में तो खर्च कर सकता है परन्तु दो घड़ी परमात्मा का नाम लेना मुसीबत समझता है। यही कारण है कि आज का मानव सब प्रकार से दुखी बनता जा रहा है और अपने परभव के लिए भी दुख के बीज बो रहा है। इसलिए अपने आपको इस लोक तथा परलोक में सुखी बनाने के लिए भगवान का स्मरण अवश्यमेव करना चाहिए।

उक्त भक्तामर स्तोत्र के पच्चीसवें श्लोक में भगवान ऋषभदेव की तारीफ करते हुए आचार्य श्री मानतुंग कह रहे हैं कि हे भगवन्! विद्वान् गणधर देवों ने आपके केवल ज्ञान के बोध की पूजा की है अतएव आप ही बुद्धदेव हैं, तीनों लोक के जीवों के लिए आप ही सच्चे सुख एवं कल्याण के करने वाले हैं अतएव आप शङ्कर स्वरूप हैं और हे धीर! मोक्ष मार्ग की रत्न-त्रय रूप विधि का विधान करने के कारण आप ही विधाता हैं। इसी प्रकार हे भगवन्! आप ही प्रकट रूप से पुरुषों में श्रेष्ठ होने के कारण पुरुषोत्तम अर्थात् नारायण स्वरूप हैं।

भाई! उक्त श्लोक में आचार्य महाराज के कहने का यही आशय है कि इस लोक में बौद्ध लोग जिसे मानते हैं वह क्षणिकवादी अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को अनित्य मानने वाला बुद्ध नहीं हो सकता। परन्तु सच्चे बुद्ध तो आप ही हैं। क्योंकि आपके केवल ज्ञान के बोध की देवों ने भी पूजा की है। दूसरे

सच्चे मायने मे शंकर भी आप ही हैं क्योंकि आप वास्तविक सुख के देने वाले हैं। परन्तु शैव लोग जिसे मानते हैं वह पृथ्वी का सहार करने वाला कपाली शकर नहीं हो सकता क्योंकि शंकर शब्द का अर्थ तो सुख का करने वाला है। अतएव वह शकर (महादेव) नहीं परन्तु आपही वास्तव मे शकर स्वरूप हैं। तीसरे रम्भा के विलासों से जिसका तप नष्ट होगया था, वह सच्चा धाता (ब्रह्मा) नहीं परन्तु आप ही सच्चे विधाता हैं। क्योंकि आपने ही ससार को मोक्ष मार्ग का रत्नत्रय रूप विधान बताया है। और इसी प्रकार वैष्णवों के द्वारा माना जाने वाला गोपियों का चीर हरण करने वाला पुरुष पुरुषोत्तम (विष्णु कृष्ण) नहीं हो सकता। परन्तु उपर्युक्त गुणों के कारण आप ही सच्चे पुरुषोत्तम कहलाने योग्य हैं।

भाई! जिस विधान शब्द का शास्त्रकारों ने शास्त्रो में प्रयोग किया है वही विधान शब्द आज स्वतन्त्र भारत की सविधान सभा में प्रयुक्त हो रहा है। आज विधान सभा मे बैठकर प्रत्येक प्रान्त से निर्वाचित प्रतिनिधि मिलकर भारतवर्ष के स्वतन्त्र नागरिकों की सुरक्षा एवं कल्याण के लिए जो कानून पास करते हैं उसे सविधान कहते हैं। और जिस पुस्तक मे विधान सग्रहीत किए गए हैं उसे "भारत का संविधान" नाम से पुकारते हैं। तो यह तो देश की सुरक्षा के लिए सविधान तैयार किया गया है। परन्तु तीर्थंकर भगवान को जिस विधाता (ब्रह्मा) के नाम से सबोधित किया है वह इस मकसद से किया गया है कि भगवान ने संसार के लोगों के कल्याण के लिए मोक्ष मार्ग का रत्न त्रय स्वरुप विधान बनाया है उक्त विधि विधान के द्वारा संसारी जीव मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति करते हुए एक दिन सच्चे सुख की प्राप्ति कर सकते

है। तो तीर्थङ्कर भगवान ही सच्चे रूप में विधाता हैं। जैसे आज दुनिया कहती है कि "विधाता का लिखा हुआ लेख कभी टलनेवाला नहीं है।" और हम लोग भी दूसरे शब्दों में कहते हैं कि "भगवान ने जो ज्ञान में देखा है वह मिटने वाला नहीं है।" तो विधाता शब्द का प्रयोग यहां तीर्थङ्कर भगवान के लिए किया गया है क्योंकि वे ही भव्यात्माओं के समक्ष सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र रुप मोक्षमार्ग का विधान करने वाले हैं।

दूसरे पुरुषोत्तम शब्द का प्रयोग यहां तीर्थंकर भगवान के लिए ही किया गया है क्योंकि तीर्थंकर भगवान अनन्त गुणों से युक्त होते हैं। यद्यपि श्रीमद् ठाणांगजी सूत्र में तीन पुरुषों के लिए पुरुषोत्तम शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे धर्म करनी करने मे चौवीस तीर्थंकरों को, भोग भोगने में वारह चक्रवर्तियों को और कर्म करने में नौ वासुदेवों को पुरुषोत्तम माना गया है। इन महापुरुषो के मुकावले में दूसरे पुरुषों को उत्तम नहीं माना है। तो इस सिद्धान्त से तीर्थंकर भगवान को पुरुषोत्तम माना है। जिस प्रकार एक राष्ट्र का सुचारुरूप से शासन संचालन करने के लिए उसकी सरकार के द्वारा वनाए हुए विधान होते हैं उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान के शासन का संचालन भी व्यवस्थित ढङ्ग से चलाने के लिए उसके भी विधान वनाए हुए हैं। उस विधान के अनुसार चलने से मानव अपनी आत्मा को मोक्ष-मन्दिर के निकट पहुँचाने मे कामयाव हो जाता है। तीर्थंकर भगवान की गुणस्तुति करते हुए "नमोत्थुणं" के पाठ में भगवान को 'पुरिसुत्तमाणं' की उपमा से उपमित किया गया है। अर्थात् हे भगवान्! आप पुरुषों में उत्तम पुरुष स्वरुप है। तो ऐसे ही

भगवान् ऋषभदेव सर्वगुणों से संपन्न थे। उन्हीं भगवान ऋषभ देव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान ने जगज्जीवों के कल्याण के लिए धर्मोपदेश दिया और उसी धर्मोपदेश को गणधरों तथा आचार्यों ने सूत्र रुप में गूथा। और आज वही बत्तीस सूत्र हमारे लिए आधारभूत हैं।

आज मैं आपके समक्ष ग्यारहवें विपाक सूत्र में से दुख-विपाक के तीसरे अध्ययन के विषय में सुनाने जा रहा हूं। आर्य भगवान सुधर्मा स्वामी से उनके परमशिष्य जंबू स्वामी के द्वारा दुख-विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन के विषय में पूछे जाने पर भगवान ने फर्माया कि हे जंबू! उस काल और उस समय में पुरिमताल नाम का नगर था। वह सब प्रकार की ऋद्धि से सयुक्त था। उस नगर के बाहर अमोघ नाम का उद्यान था। उस उद्यान में एक तरफ अमोघ नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर में महाबल नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही न्याय प्रिय राजा था।

उस पुरिमताल नगर के उत्तर-पूर्व दिशा के बीच ईशान-कोण मे शाला नाम की अटवी थी। वह चोरों के रहने का सुरक्षित स्थान था। वहीं विषभ-गिरि पर्वत की कंदरा में पल्ली ग्राम नाम का एक गांव था। वह अटवी घनी झाड़ियों में घिरी हुई थी। उसके चारों तरफ वंशजाल का परकोटा पल्ली ग्राम को घेरे हुए था। वह इतनी घनी झाड़ियों से घिरा हुआ था कि बाहर से आने वालों को रास्ता भी दिखाई नहीं देता था। और

जो अन्दर प्रवेश कर जाता तो उसे बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। उस पल्ली ग्राम में भागकर छिपने के लिए बहुत से स्थान थे तथा भागकर बाहर जाने के लिए भी बहुत से गुप्त द्वार थे। परन्तु उस गांव में रहने वाले लोगों को ही आने-जाने दिया जाता था। यदि कोई कोपायमान मनुष्य भी अन्दर प्रवेश करना चाहता तो वह भी अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता था। तो इस प्रकार का वह शाला पल्ली ग्राम था।

भाई! मैं सौराष्ट्र प्रान्त में घूमा हूँ और घूमने से मालूम पड़ा कि जामनगर से पोरबन्दर जाते हुए बीच मे जो पहाड़ आता है तो वह ऐसी घनी झाडियों से घिरा हुआ है कि यदि वहा चोर या डाकू इधर-उधर से आकर छिप भी जाय तो उनका पता चलना मुश्किल हो जाता है। मैंने उक्त पहाड़ के चारो तरफ परिक्रमा भी लगाई है। इसलिए मैं स्वय के अनुभव द्वारा कह सकता हूं कि वह चोरों के छिपने के लिए सुरक्षित स्थान है। और इतिहास भी वहा के चोरों के लिए साक्षी देरहा है कि यह स्थान किसी समय चोरों का अड्डा रह चुका है।

उक्त शाला पल्ली ग्राम मे भी चोरों का निवास था। उन चोरों के सरदार का नाम विजय चोर था। वह अपनी शूर वीरता से दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त था। परन्तु वह विजय नाम का चोरों का सरदार बड़ा अधर्मी था। वह हमेशा दूसरों से अधर्म की ही बातें करता, अधर्म कार्य मे खुशी मनाता और अधर्म कार्य करके अपनी आजीविका उपार्जन करता था। उसके सदैव दूसरों का वध करने से हाथ रक्त से रञ्जित रहते थे। वह तो अधर्मी था ही परन्तु उसका इष्टदेव भी अधर्मी था। दूसरे लोग भी

अपने सरदार के सामने सदा अधर्म की बातें करते रहते थे। वह अधर्म का ही व्यापार करता और आचार भी अधर्ममय था। वह ऐसा जल्लाद और क्रूर था कि वह जिसको मारता उसके प्राण ही विसर्जन कर देता था। वह इस प्रकार से नृशासता पूर्वक कार्य करने मे निर्भीक था। वह किसी व्यक्ति को उसके शब्द सुनकर भी शब्द भेदी बाण से मार सकता था। इसलिए उसे शब्द भेदी नाम से संबोधन किया गया है।

आपने मुगल कालीन इतिहास तो पढा ही होगा। उसमें बताया गया है कि पृथ्वीराज चौहान जो कि अजमेर का शासक था, उसमे भी यह विशेषता थी कि वह शब्द सुनकर उसी निशान पर बाण चला देता और वह अचूक निशाना लगा सकता था। एक समय की बात है कि मुगल बादशाह शहाबुद्दीन ने उसे लडाई मे बंदी बना लिए। उस वीर स्वाभिमानी राजा की उसने दोनों आंखें निकलवाली और उसे जन्मभर के लिए अंधा बना दिया। उसने फिर भी उसे ऐडी से चोटी तक भारी सांकलों से बांध रखा था। पृथ्वीराज के साथ उसका भाट चन्द्वरदाई भी सेवा में उपस्थित था। उसने एक समय खुशी के मौके पर बादशाह शहाबुद्दीन के सामने पृथ्वीराज के शब्द भेदी बाण चलाने की प्रशसा की। बादशाह ने पृथ्वीराज को उसकी कला देखने के लिए राज दरबार बुलाया। जब पृथ्वीराज दरबार में पेश किए गए तो बादशाह ने उसे अपनी कला प्रदर्शन करने के लिए हुक्म दिया। राजा के हाथ-पैरों की हथकड़िया और बेडियां खोल दी गई। चन्दवरदाई भाट ने अपने स्वामी के हाथ में तीर कमान देकर निम्न दोहा कहा कि:—

चार बास चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुलतान है, मत चूके चौहान॥

उक्त दोहा सुनते ही पृथ्वीराज चौहान ने भरे दरबार में उसी प्रमाण के अनुसार कमान को खींचकर जोर से तीर छोड़ दिया। वह तीर सीधा जाकर जहां शहाबुद्दीन बादशाह झरोखे में बैठा हुआ था उसके सीने को पार कर गया। तीर लगते ही बादशाह के प्राण पखेरु उड़ गए। यह माजरा होते ही उन दोनों ने भी एक दूसरे को छुरा मारकर समाप्त कर लिया। तो इसे कहते हैं शब्दभेदी बाण की कला का प्रदर्शन।

भाई! इसी प्रकार से वह विजय सेन चोर सेनापति भी शब्द सुनकर लोगों के प्राण विसर्जन कर देता था। वह हमेंशा अपने हाथ में लाठी, तलवार, भाला, या छुरा लेकर ही बाहर निकलता था। वह खाली हाथ कभी घर से बाहर नहीं निकलता था। उसके आधीनस्थ पांच सौ चोर रहते थे। वह उन सब को खाना पीना वस्त्रादि देकर उनका पोषण करता था। वह तमाम राजा के द्वारा दण्डित पुरुषों को अपने यहां आश्रय दे देता और उनकी रक्षा करता था। इस प्रकार उसकी शाला अटवी में पांच सौ चोर आश्रय पाते हुए जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन चोरों में कोई लूला, लगड़ा, गूगा और बहरा भी था।

वह विजय सेन चोर सेनापति अपने पांच सौ चोरों के सहयोग से ईशान-कोण के जनपददेशों में बहुत से ग्रामों, नगरों के लोगों को पीड़ित करता हुआ, मारता हुआ, उनकी प्यारी वस्तुओं को लूटता हुआ, लोगों को धर्म से भ्रष्ट करता हुआ, उन्हें जबर्दस्ती शराब और मांस का सेवन कराता हुआ, उन्हें

ताड़ना, तर्जना देता हुआ, भय उत्पन्न करता हुआ, आतंक जमाता हुआ, चाबुक प्रहार करता हुआ, द्रव्य लूटता हुआ, दुःख देता हुआ तथा लोगों को अपने स्थान से भ्रष्ट करता हुआ स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण कर रहा था। वह आस-पास के ग्रामवासियों के साथ तो इस प्रकार का असद् व्यवहार करता ही था परन्तु महाबल राजा से भी आमदनी का भाग कर के रूप में वसूल करता था। वह राजा से यह कहता था कि "मैं तुम्हारे ग्राम-वासियों की रक्षा करता हूं, अतएव मुझे आमदनी की चौथ दो।" और राजा भी उसे चौथ देकर संतुष्ट रखता था। वह कट्टर-नास्तिक था। वह ईश्वर, स्वर्ग, नरक और आत्मा में विश्वास नहीं करता था। परन्तु जैसे-तैसे भी लोगों को लूट खसोट कर धनोपार्जन करने मे ही अपने जीवन की सार्थकता समझता था। वह ईश्वरोपासक नहीं परन्तु अपने आपको ही भगवान कहता था। इस प्रकार से वह लोगों के साथ दुष्टता का व्यवहार करते हुए अपने जीवन को आनन्दपूर्वक गुजार रहा था।

भाई! आज से ढाई सौ वर्ष पहिले इतिहास पर दृष्टि-पात करेंगे तो मालूम होगा कि इसी भारतवर्ष मे जब कि छोटे छोटे राजा कई हिस्सों मे विभक्त थे तो उनका भी यही काम था कि वे अपने से कमजोर राज्य को लूटते खसोटते और वहां की जनता के साथ पाशविक व्यवहार करते थे। उस समय का इति-हास प्रायः करके ऐसा ही रहा है। परन्तु जब अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ और उन्होंने जहा-तहां इस प्रकार की अराजकता देखी तो उसे रोकने के लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने उन सब राजाओं को अपनी शक्ति के द्वारा अपने कब्जे मे कर लिए और उन्हें छोटी छोटी जागीरें देकर काम-धन्धे से लगा दिया।

इसके पश्चात् जहां कहीं भी डाकू नजर आए उन्हें मारकर साफ कर दिया। और इस प्रकार सारे देश में प्रजा के लिए निर्भयता पैदा कर दी। भाई! अंग्रेज शासन काल मे अब प्रत्येक आदमी जोखम लेकर निर्भयता के साथ इधर से उधर जा सकता था।

परन्तु आज के स्वतंत्र भारत में पुनः पूर्व विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। आज फिर आए दिन आपको समाचार-पत्रों में डाकुओं के दिल दहला देने वाले समाचार पढने को मिल सकते हैं। आज जहां-तहां डाकू पुनः बरसाती मेंढकों की तरह उत्पन्न होगए हैं। वे भारत सरकार की कमजोरी का नाजायज फायदा उठाने को तत्पर होगए हैं। उन डाकुओं के आंतक से दुखी होकर लोग ग्रामों को छोड़ छोड़कर शहरों मे बसने लगे हैं। यद्यपि भारत सरकार का मिलिट्री डिपार्टमेन्ट तथा पुलिस विभाग इस विषय में पूर्ण सतर्कता एव सावधानी से कार्य कर रहा है और बहुत से डाकू गोलियों के शिकार बन चुके हैं, बहुत से जीवित ही पकड़ लिए गए हैं तथा बहुतों ने अपने-आपको समर्पित कर दिया है परन्तु फिर भी डकैती जड मूल से समाप्त नहीं हो सकी है। अभी अभी मैंने समाचार-पत्र मे पढा था कि आगरा की तरफ मानसिंह के गिरोह के रूपा और लाखन नाम के डाकूओं के दल अभी भी जहां तहां उपद्रव मचा रहे हैं और लोगों को प्राण के घाट उतार कर द्रव्य हरण कर रहे हैं। वे अभी तक भी मिलिट्री या पुलिस के कब्जे में नहीं आसके हैं। तो कहने का मतलब यह है कि देश में डाकूओं का जोर बढता जारहा है और गांवों की जनता उनके आंतक से आतंकित हो रही है। उनके उपद्रव से लोगों को नींद लेना भी हराम हो गया है। मैंने समाचार-पत्र में अभी-अभी यह भी

पढ़ा था कि भिंड जिले के एक गांव के रहने वालों ने जब नदी के किनारे बैठे हुए कुछ डाकूओं को देखा तो उन्होंने उक्त सूचना पुलिस विभाग को दे दी। जब उन डाकूओं को मालूम हुआ कि उक्त गाव के लोगों ने हमारे विषय मे पुलिस को सूचना दे दी है तो वे डाकू मौका पाकर उन गाव वालों से बदला लेने के लिए उक्त गाव में पहुँचे और वहां के खास चौबीस व्यक्तियों को एक लाइन में खड़ा करके उन्हें गोली से उडा दिए। और गाव से बहुतसा धन माल लेकर चम्पत हो गए। कहिए! उस गांव वालों के सामने कितना वीभत्स दृश्य उपस्थित हुआ होगा तो आज भी डाकाजनी की वारदाते आए दिन सुनने को मिलती ही है।

हां, तो मैं कह रहा था कि वह विजयसेन चोर सेनापति भी इसी प्रकार से लोगों पर जुलम करके उनसे धन छीन रहा था। उसके खध श्री नाम की भार्या थी। वह सुन्दरता मे किसी से कम न थी। उसने एक समय अभगसेन नाम के पुत्र को प्रसव दिया। वह भी सर्वा गों से परिपूर्ण था। उसके अगों पांगों से सुन्दरता टपकती थी।

अब उस काल और उस समय मे विश्ववद्य श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी का अपने शिष्यों सहित पुरिमताल नगर के बाहर अमोघ नाम के उद्यान में पधारना हुआ। भगवान के शुभागमन की शुभ सूचना प्राप्त होते ही राजा और प्रजा सभी भगवान के दर्शनार्थ गए। वहां पहुंचकर सबने भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और धर्मोपदेश श्रवण कर पुनः अपने नगर को लौट आए।

अब उस काल और उस समय मे भगवान महावीर स्वामी से ज्येष्ठ शिष्य भगवान गौतम स्वामी अपने वेले के पारणे के लिए भगवान की आज्ञा प्राप्त करके उक्त उद्यान से निकल कर नगर मे प्रविष्ट हुए। वे नगर मे, ऊच नीच और मध्यम कुलों मे गोचरी के निमित्त घूमने लगे। वे ज्योंही राजमार्ग को ओर से होकर गुजर रहे थे त्योंही उन्होंने चौराहे पर वहुत से हाथी, घोड़े और सिपाहियों को अपने हाथों मे शस्त्र लिए हुए देखा। यही नहीं, परन्तु उन सबके बीच में एक ऐसे आदमी को देखा जिसकें दोनों हाथ पीछे की तरफ बधे हुए थे। और उज्झित कुमार की तरह उसका भी मुह काला किया हुआ था तथा चोर की तरह फटे हुए कपड़े पहिनाए हुए थे। उसके सामने फूटा ढोल वजाया जारहा था। लोग उसकी तरफ धूल उछाल रहे थे और अपशब्द बोल रहे थे। चौराहे-चौराहे पर सरकारी आदमी सूचना कर रहा था कि इस आदमी को जो सजा दी जारही है इसमे राजा का कोई दोष नहीं है। यह अपने ही द्वारा किए हुए दुष्कर्मों का फल भोग रहा है। इस प्रकार उसे प्रथम चौराहे पर लेजाकर एक चबूतरे पर वैठा दिया और उसके ही सामने उसके आठ काकाओं को लाकर खड़े कर दिए। फिर उन सिपाहियों ने उक्त आठों व्यक्तियों के शरीर के छोटे छोटे टुकडे किए और उनके मास के टुकड़ों को उन्हें खिलाया। इस प्रकार की हालत होने से वे करुणामय शब्द करने लगे। जब उक्त प्रकार से चीत्कार करने पर उनके कण्ठ सूख गए और पानी मांगने लगे तो उन सिपाहियों ने पानी के वदले उन्हीं के शरीर से निकले हुए रक्त को उन्हें जबर्दस्ती पिला दिया और उन आठों ही व्यक्तियों के प्राण ले लिए गए।

इसके बाद दूसरे चौराहे पर उसकी आठ काकियों को लाकर खडी की और उनके शरीर के भी कांगणी के दानों के बराबर टुकड़े किए और उन्हें खिलाकर फिर उन्हीं को उनके शरीर से निकला हुआ रक्त पिला दिया। इस प्रकार उन आठों काकियों को भी क्रूरता पूर्वक मार डाला गया।

फिर तीसरे चौराहे पर उसके आठ बडे बापों की भी इसी तरह दुर्दशा करके उन्हें भी उसके सामने मौत के घाट उतार दिया।

चौथे चौराहे पर उसकी आठ बड़ी माताओं को लाकर खडी की, उनके शरीर के कांगणी के बराबर टुकड़े किए, उन्हें खिलाया और उनके शरीर के रक्त को पिलाकर उन्हें भी इसी प्रकार से मार डाला।

फिर पांचवें चौराहे पर उसके आठ पुत्रों को भी इसी प्रकार बेदर्दी से मार दिए।

इसके बाद छठे चौराहे पर उसके पुत्रों की आठ पत्नियों को भी खडी की गई और उनके भी शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें भी मार दिया गया।

इसी प्रकार सातवें चौराहे पर उसके आठ जमाइयों को मारा गया। आठवें चौराहे पर उसके ही सामने उसकी आठ बेटियों को मार डाला।

नवमें चौराहे पर बेटियों के आठ लड़कों को मारा गया। दसवें चौराहे पर उसकी बेटियों की लड़कियों को मौत के घाट उतार दिया गया।

इसके बाद ग्यारहवें चौराहे पर उसकी आठ दोहित्रियों के भरतारों को भी इसी नृशंसता के साथ कत्ल कर दिया गया। बारहवें चौराहे पर उसकी आठ दोहितों की भार्याओं को मार डाला गया।

फिर तेरहवे चौराहे पर उसकी आठ भुआओं के भरतारों को लाकर खड़े किए। उनके भी शरीर के टुकड़े टुकडे किए और उन्हीं का रक्त मांस उन्हें खिला-पिलाकर उन्हे भी मार दिया गया।

चौदहवे चौराहे पर इसी प्रकार उसकी आठ भुआओं के प्राण पखेरू लूट लिए गए। और पन्द्रहवें चौराहे पर उसके आठ मासाजी की हत्या कर डाली गई।

इसके बाद सोलहवे चौराहे पर उसकी आठ मासीजी को भी इसी प्रकार मौत के घाट उतार दया गया। फिर सत्रहवें चौराहे पर उसके आठ भाइयों को लाइन मे खडा किया गया और उन्हें भी इसी प्रकार उसके सामने मार डाला गया।

तत्पश्चात् अठारहवे चौराहे पर उसके समस्त चोर परिवार को, मित्रों को, स्वजनों को, दास दासियों को और सभी प्रमुख आदमियों को लाइन में खड़े किए। उनके भी शरीर के टुकड़े-टुकड़े किए गए। फिर उनके मांस को उन्हें खिलाया गया और पानी के बदले उनका ही रक्त उनके मुंह में डाला गया। इस प्रकार कराहते हुए उन्हें भी मार डाला गया। उसके समस्त परिवार के सदस्यों को मार देने के पश्चात् उसे भी इसी तरह टुकड़े-टुकड़े करके मार डाला गया।

भाई ! जो हंस-हंस के पाप कर्म बांधे जाते हैं वे उदय काल आने पर रो-रो कर भी भुगतने पड़ते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि पाप कर्म से सदैव डरते रहो और भगवान का नाम स्मरण करते हुए अपने जीवन को सुखमयी बनालो ताकि भविष्य मे उक्त प्रकार से नारकीय वेदना भोगने का मोका ही न आने पाये।

इस प्रकार का वीभत्स देखकर भगवान गौतम स्वामी के मन मे अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि ओहो ! मैंने नरक नहीं देखा और न ही नारकी जीव को घोर वेदना भोगते हुए देखा है परन्तु यह पुरुष प्रत्यक्ष मे नरक जैसा दुख भोग रहा है। वे यह दृश्य देखकर तुरन्त आहार-पानी लेकर और पुरिमताल नगर से निकल कर सीधे भगवान महावीर स्वामी की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान को विधि सहित वन्दन-नमस्कार किया और कहने लगे कि हे भगवन् ! मैं निश्चय करके नगर में आहार-पानी के लिये गया तो मैंने इस प्रकार से एक पुरुष को नरक के सदृश दुख भोगते हुए देखा। वह तो अपने किये हुए दुष्कर्मों का फल भोग ही रहा था परन्तु उसके सामने अलग-अलग अठारह चौराहों पर उसके कुटुम्बी, रिश्तेदार, मित्र, स्वजन, दास दासी और नौकर-चाकर वगैरह कुल एक सौ चम्मालीस व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिए। उन्हें वेदना पाते हुए देखकर मेरा हृदय करुणा से विह्वल हो उठा। हे भगवन् ! प्रत्यक्ष में यहां नरक नहीं परन्तु वे सब नरक जैसा दुःख भोग रहे थे। तो उस पुरुष ने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से अशुभ कर्म किए थे जिनकी वजह से उसे और उसके कुटुम्बियों को दुःख भोगने पड़े ?

भगवान गौतम स्वामी की शका का समाधान करने के

लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फर्माया कि हे गौतम ! उस काल और उस समय मे पुरिमताल नाम का नगर था। वहां उदाई नाम का राजा राज्य करता था। उसकी महिमा चारों दिशाओं मे फैली हुई थी। वह न्यायप्रिय राजा था।

उसी नगर में निन्हव नाम का अडवाणिया रहता था। वह तरह-तरह के अडे बैचने का व्यवसाय करता था। वह बड़ा अधर्मी था। वह हमेशा अधर्म की ही बातें करता और अधर्मकार्य करके अपनी आजीविका उपार्जन करता था। दूसरों को दुःख मे देखकर उसे आनन्द की अनुभूति होती थी। भाई ! पापी जीव अपने पापकर्म का फल भोगने के लिए सदैव पापी कुल में उत्पन्न होता है और वहां भी पाप कार्यों मे ही आनन्द का अनुभव करता है। वह अपने कुल के कुसस्कारों के कारण अपने मन में विचारता है कि पाप कर्म करने से ही आराम मिल सकेगा और धर्म करने से तो मर जाना पड़ेगा। अतएव पापी जीव सदैव पापकर्म की बातें सुनकर खुश होता है और दूसरों को भी पाप कर्म करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

भाई ! एक समय की बात है कि जोधपुर में उस समय महाराज प्रताप्सिहजी शासन कर रहे थे। चातुर्मास काल में वहा किसी तपस्वी मुनिराज का चौमासा था। उन्होंने लबे दिनों की तपस्या कर रखी थी। जब उनके तपस्या का पूर दिवस आया तो उन्होंने सुश्रावक बिलमचन्दजी भडारी से कहा कि श्रावकजी ! आप मुसद्दी लोग हैं। और आपकी पहुँच महाराज तक है। अतएव आज मेरी तपस्या के पूर दिवस पर आप महाराज के पास जाकर कसाई खाने बंद करवाने की कोशिश करो। तपस्वीजी

की आज्ञा प्राप्त होते ही भंडारीजी महाराज प्रतापसिंहजी के पास गए और हाथ जोडकर निवेदन करने लगे कि महाराज सा० ! यह चातुर्मास का समय है और यहा एक तपस्वीजी महाराज के आज तपस्या का पूर है अतएव आज के दिन यदि शहर के तमाम कसाई खाने बद रहें तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

उक्त निवेदन को सुनकर महाराज सा० क्रोधित होगए और कहने लगे कि भंडारोजी ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। हम जितने भी दिन जिंदा रहेंगे तो हमेशा ऐसा ही होता रहेगा। यदि ये कसाई खाने बद होजाते हैं तो समझलो कि हम भी मर जायेंगे। आखिर ! उनकी सारी कोशिशें व्यर्थ साबित हुई और कसाई खाने बन्द नहीं हो सके। तो कहने का मुद्दा यह है कि इस जमाने में भी ऐसे ऐसे पापकार्यों में आनन्द मानने वाले व्यक्ति मौजूद हैं जो इस ससार में पापकर्म के बल पर ही जीवित रहने का दावा करते हैं। जबकि यह पच्चीस सौ वर्ष पुराना इतिहास सुनाया जारहा है उस समय तो भारतवर्ष में हिंसा का प्रबल साम्राज्य छाया हुआ था।

तो वह अडआणिया भी इसी प्रकार से पापकर्म करके आनन्द मान रहा था। उसने अपने यहां बहुत से नौकर रख रखे थे। वह उन सबको खाना पीना और मजदूरी देता था। वे लोग नित्यप्रति, कुदालिए और टोकरिएं लेकर जगल में जाते और चारों दिशाओं से बहुत से कौवों, उल्लुओं, कबूतरों, गिलहरी, मोरनी बतखों, मुर्गियों और दूसरे पक्षियों के अडे कुदाली से खोदकर टोकरियों में इकट्ठे करके लाते और अपने मालिक को दे देते थे। वे बहुत सी मछलिया भी टोकरियों में भर कर

लाते थे। तब वह निन्हव धारिया उन विविध प्रकार के अंडों को बड़ी कढ़ाई मे तेल डाल कर तलता, भूंजता और उनके टुकड़े करके उनमें मसाले मिलाकर राजमार्ग पर बेच देता। इस प्रकार से वह अपना जीवन निर्वाह करता था। वह उन अंडों का उक्त प्रकार से व्यापार ही नहीं करता परन्तु वह स्वयम् भी उन अंडों को तलकर, भूंजकर और मसाले मिलाकर शराब के साथ सेवन करता था।

भाई! अभी कुछ दिन पहले के जैन प्रकाश में पढ़ा गया था कि दिल्ली में सातसौ मुर्गियें और चार लाख अण्डे सेवन किये जाते हैं। देखो! इस जबान के जायके के लिये कितने जीवों को प्राणों से विमुक्त कर दिया जाता है। परन्तु वे पापी लोग तनिक भी यह नहीं सोचते कि एक दिन हमारे द्वारा किये हुये पाप हमें ही नष्ट कर देंगे। आज गांधीजी की अहिंसा के पुजारी कहलाने वाले भी जब पाप के कार्य करते हुए नहीं शर्माते तब दूसरे लोगों की तो बात ही क्या कह सकते हैं। परन्तु याद रखना। इन पाप कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा मिलने वाला नहीं है। इनका फल या तो इसी जन्म में भोगना पड़ेगा अथवा अगले जन्मों में तो भोगना ही पड़ेगा।

भाई! मुझे इसी सम्बन्ध में एक बात याद आ रही है कि संवत् १६६४ में जब मैं पंजाब प्रान्त में विचरण कर रहा था तो मालूम हुआ कि पटियाला महाराज मृत्यु शैय्या पर पड़े पड़े दारुण दुख भोग रहे हैं। वे नरक के नेरिए के समान चीत्कार करने लगे थे। उनकी बीमारी का इलाज करने को बड़े-बड़े डाक्टर आए और उन्होंने बहुतेरा इलाज किया परन्तु आराम

नहीं पहुँचा सके। इस प्रकार से वे नरक जैसा दुःख भोगकर मर भी गए। भाई! उनके पास सब प्रकार के यथेष्ट साधन होने पर भी वे अच्छे क्यों नहीं हो सके और उन्हें नरक जैसा दुःख क्यों भोगना पड़ा? तो इस कारण की तलाश करने पर मुझे अवगत कराया गया कि महाराज! बीमार होने से पहिले इनका शरीर तीन मन का था और अब केवल एक मन का ही रह गया है। ये अपनी तन्दुरुस्ती की हालत में हमेशा नाश्ते के समय मे चौबीस अण्डे खाजाते और दिन भर मे एक बकरे का गोश्त भोजन के रुप मे खा जाते थे। ये बड़े ही ऐय्याश थे। अपने विषय की पूर्ति के लिए ये जहा तहा से सुन्दर स्त्रियों को अपने नौकरों द्वारा मगवा लेते और उनके साथ मन चाहा भोग भोगते। परन्तु इन पाप कर्मों का जब उदय आया तो इन्हें मरते समय नरक जैसा दुःख भोगना पड़ा। तो कहने का प्रयोजन यह है कि पाप कर्म करने वाले पहिले भी थे, आज भी है और भविष्य मे भी होंगे। पाप कर्म करने वालों को उसका फल पहिले भी भोगना पड़ा है, आज भी भोग रहे हैं और भविष्य में भी पाप कर्म का फल भोगेगे। पाप और पुण्य का फल भोगे बिना छुटकारा भी होने वाला नहीं है।

तो वह अश्ववाणिया भी असंख्यात जीवों के प्राण लूटकर आनन्द का अनुभव कर रहा था। परन्तु उसे स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं आया कि इस पाप कर्म का फल रो-रोकर भी भुगते बिना छुटकारा मिलने वाला नहीं है। इस प्रकार उसकी आत्मा पाप कर्म के बोझ से भारी होती गई और एक दिन एक हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु भोगकर तथा काल समय काल करके तीसरी नरक मे सात सागरोपम की स्थिति तक दुःख

भोगने के लिए चली गई। वहां के असह्य नारकीय दु खों को भोगकर वह अण्डवाणिया इसी शाला अटवी में विजयसेन चोर सेनापति के यहा खधश्री भार्या की कुक्षिका से पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ। उसका नाम अभगसेन रखा गया।

देखो! दूसरों के दु'ख का इतिहास सुनकर श्रोताजनों को पाप कर्म करने से बचने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। पाप कर्म का फल सदैव दुःखदायी होता है। शास्त्रकारों ने भी कहा है कि: —

तेणे जहां सधि मुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एव पया पेच्च इह चलोए, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ॥

भाई! तीर्थङ्कर भगवान ने श्रीमद्उत्तराध्ययन-सूत्र के चौथे अध्ययन की तीसरी गाथा में सुथार का दृष्टांत देते हुए भव्यात्माओं को उपदेश दिया है 'कि हे भव्यात्माओ! अपने द्वारा किये हुए अशुभ कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है। अतएव सदैव अपने जीवन को पापकर्म से बचाते रहो। अन्यथा कहीं किसी दिन तुम्हारी भी उस सुथार जैसी दशा न होजाय।

जैसे किसी शहर मे एक सुथार रहता था। वह लकड़ी पर चित्रकारी का काम करने में बड़ा प्रवीण था। परन्तु परिस्थितिवश अत्यन्त गरीब होगया और फिर उस पर कर्जा भी बहुत बढ गया वह उस कर्ज से मुक्त होने में बिल्कुल असमर्थ होगया। वह एक दिन एकान्त मे बैठकर विचार करने लगा कि इस मजदूरी से तो

पेट भी भरने नहीं पाता फिर कर्ज किस प्रकार चुकाया जा सकता है। अब मुझे इसके लिए क्या करना चाहिए जिससे मैं भी आराम से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण कर सकू और कर्ज से भी मुक्ति मिल जाय। इस प्रकार विचारते-विचारते उसके दिमाग में एक उपाय सूझ पड़ा। उसने विचार किया कि क्या ही अच्छा हो कि मैं चोरी करने लग जाऊ। ऐसा करने से मुझे द्रव्य भी खूब प्राप्त होजाएगा और कर्ज भी अदा होजायगा। इस प्रकार का अपने मन में दृढ़ सकल्प करके वह अपने घर से निकल पडा। वह चलते-चलते एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहां तीन व्यक्ति बैठे हुए आपस मे परामर्श कर रहे थे। ज्योंही इसने उन व्यक्तियों को देखा तो यह उनके पास पहुँच गया और उनसे पूछने लगा कि भाई ! तुम कौन लोग हो ? उन लोगों ने उसे अपने पास बिठाया और चिलम आगे बढाते हुए कहा कि लो तुम भी चिलम पियो। जब इसने चिलम की फूक खींचते हुए यही प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि हम लोग चोर हैं और आज इसी शहर में एक सेठ के यहां चोरी करने जा रहे हैं। अच्छा ! अब तुम यह बताओ कि तुम कौन हो और यहा जङ्गल में किस मकसद से आये हो ? उस सुथार ने जब अपने मन की बात सफल होती हुई जानी तो उसने कहा कि भाई ! मैं जाति से तो सुथार हू परन्तु घर की गरीबी और कर्ज से तङ्ग आकर मैं भी इसी काम को करने के लिए घर से निकल पडा हूँ। क्या आप लोग मुझे भी अपने गिरोह में शामिल कर सकेंगे ? जब उन तीनों चोरों ने उसके मुह से यह बात सुनी तो वे खुश हुए और विचार किया कि इस बेचारे को भी अपनी पार्टी में शामिल कर लेना चाहिए। इसमे अपने को नुकसान के बजाय लाभ ही है।

क्योंकि अब हम तीन से चार की संख्या में बढ़ रहे हैं। तब प्रत्यक्ष में उन्होंने इससे कहा कि अच्छा! तुम हमारी पार्टी मे शामिल हो सकते हो परन्तु ईमानदार बनकर काम करना। इसने उनकी बात मानली और उनमे शामिल होगया।

अब वे चारों चोर उसी शहर में एक मालदार सेठ के घर पर पहुचे। वे उसके मकान के चारों तरफ घूमे परन्तु अन्दर प्रवेश करने के लिए कोई खुला हुआ रास्ता नहीं मिला। आखिर उन्होंने दीवार मे सैंध लगाकर अन्दर घुसने का विचार किया। जब वे दीवार में सैंध लगाने लगे तो आखिर मे खोदते-खोदते लकड़ी का पाटिया आगया। यह देख उस सुथार ने कहा कि अब तुम लोग अलग हट जाओ। अब मुझे अपनी कला प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त होगया है। वे तीनों चोर दूर होगए और सुथार ने अपने औज़ार लेकर उस लकड़ी को कमल के आकार में काटना शुरू किया। इसने विचार किया कि यदि मैं इसे ऐसे ही काट दूंगा तो इससे मेरी कारीगरी का क्या पता लग सकेगा। अतएव उसने उसमें बड़ी महनत के साथ कमल की पंखड़िए बनाई और अपनी कारीगरी को देख-देखकर, बड़ा प्रसन्न होने लगा। परन्तु जब खट खट की आवाज अन्दर मकान मे पहुँची तो जो सेठ और सेठानी आराम से नींद ले रहे थे वे जाग उठे। यह देख, सेठानी ने सेठ से कहा कि मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि अपने घर में चोर घुसने वाले हैं। अतएव अब हमको यहां से भाग निकलना चाहिए। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाग्यवान्! क्या तु यह समझती है कि यहां से भाग निकलने में अपनी खैरियत है? परन्तु पगली! तूने यह नहीं विचार किया कि यहां से भागने में तो हम मारे जायेगे और धन भी नहीं बचा सकेंगे।

इसलिए हमको यहां से भागने के बजाय एक कार्य करना चाहिए कि घर में अंधेरा कर देना चाहिए और हमें उन दीवार के सहारे चुपचाप बैठ जाना चाहिए। इस प्रकार ज्योंही कोई अन्दर प्रवेश करे तो उसकी एक टांग तू पकड़ लेना और एक टांग मैं पकड़ लूंगा। यह सुनकर सेठानी को सेठ की राय पसंद आगई। वे दोनों अंधेरे में उस सैंध के पास बैठ गए।

इधर जब सैंध बनकर तैयार होगई तो उन चारों चोरों ने आपस में विचार किया कि सबसे पहिले इस छेद में प्रवेश किसे करना चाहिए। यह प्रस्ताव सुनकर वह सुथार कहने लगा कि भाई! आप यह बताइए कि सबसे पहिले अन्दर प्रवेश करने वाले को कितना हिस्सा दिया जाएगा? तब उन तीनों चोरों ने कहा कि जो पहिले पहिला प्रवेश करेगा उसे चोरी के माल का आधा हिस्सा दिया जाएगा। जब उस सुथार ने आधे हिस्से का नाम सुना तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा और उसने कहा—"अच्छा! मैं सबसे पहिले अन्दर जाने को तैयार हूं। जब वह उस सैंध में घुसने को तैयार हुआ कपड़े खोलकर तो उसने अपने साथियों से पूछा कि भाई! पहिले अन्दर सिर ले जाऊं या पैर तब उन तीनों ने कहा कि देखो! पहिले-पहिल सिर अगर अन्दर लेगए और किसी ने अन्दर से सिर ही काट दिया तो मुफ्त में मारे जाओगे अतएव सबसे पहिले अन्दर पैरों को ही जाने दो।

उस सुथार के दिमाग में भी सबसे पहिले पैर अन्दर ले जाने की ही तरकीब अच्छी लगी। अतःएव सबसे पहिले उसने बड़े एहतियात के साथ अपने पैरों को ही अन्दर जाने दिए। ज्योंही उसके पैर सैंध को पार करके कमरे में पहुँचे त्योंही

वहां बैठे हुए दोनों सेठ सेठानी ने उसके एक एक पैर को पूरी शक्ति लगाकर पकड़ लिए। जब सुथार ने कहा कि भाई! मेरे दोनों पैर अन्दर वालों ने पकड़ लिए है। तो यह सुनते ही उन तीनों चोरों ने भी मजबूती से इसका सिर पकड़ लिया। वे इसे अपनी ओर जोर से खींचने लगे और उधर अन्दर से सेठ-सेठानी मिलकर अपनी ओर खींचने लगे। अब दोनों पार्टियों में जोर शोर से रस्साकशी होने लगी। परन्तु इस रस्साकशी मे उस बेचारे सुथार का सारा शरीर उन कंगूरों से छिल-छिल कर खूना खून हो गया। अब वह बहुतेरा चिल्ला-चिल्लाकर कहता है कि "मुझ पर दया करो और मुझे छोड़ दो"। परन्तु किसी भी तरफ के लोग उसे छोड़ने को तैयार नहीं हुए। आखिर अपने हाथों से बनाए हुए उन कंगूरों से रगड़-रगड़ कर वह बुरी तरह पीडित होता हुआ मर गया।

तो तीर्थंकर भगवान इस दृष्टान्त के निष्कर्ष मे कहते हैं कि हे भव्यात्माओं! वह सुथार इस प्रकार से असह्य दुःख भोगकर मारा गया तो उसके लिए दुःख उत्पन्न किसने किया? इसका स्पष्ट उत्तर यही मिलेगा कि उसे दुःख सागर में डालने वाला दूसरा कोई नहीं था। उसने अपने ही हाथों से कंगूरे बनाए और अपने आप ही सधिमुंह मे प्रवेश करके अपने लिए दुःख का सामान तैयार कर लिया। यदि वह इस प्रकार अपनी कारीगरी नहीं दिखाता और संधिमुंह मे प्रवेश नहीं करता लोभ के वशीभूत होकर तो उसे अपने प्राण नहीं गवाने पड़ते।

इसलिए तीर्थंकर भगवान उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे ससार के लोगो! तुम इस संसार में रहते हुए जो पाप कर्म

कर रहे हो और आनन्द मान रहे हो परन्तु जब वही पाप उदय मेंआएगा तो रो-रो कर भी भोगे बिना छुटकारा मिलने वाला नहीं है। उन पापकर्मों का फल तुमको अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। इसलिए ज्ञानी पुरुषों की नसीहत मान कर पापकर्मों से बचो और शुभ काम में प्रवृत्ति करो।

यदि मानव अपने जीवन को इस लोक तथा परलोक में सुखी बनाना चाहता है तो उसे एक कवि की कविता के निम्न भावों को हृदय में स्थान देते हुए उस पर अमल करना चाहिए।

एक कवि ने बड़े ही भावपूर्ण शब्दों मे शिक्षा देते हुए कहा है कि:—

मत भूल मनुष्य पछताएगा, प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा ॥टेक॥

यह दौलत आनी - जानी है,
यह दुनिया बहता पानी है।
नहीं काम और कुछ आएगा,
प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा ॥ १ ॥

क्यों मोह के झूले झूल रहा,
तन, धन, यौवन मे फूल रहा।
यह फूल तेरा कुम्हलाएगा,
प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा ॥ २ ॥

काया दो दिन की माया है,
उड़ते पछी की छाया है।
जो आया है सो जाएगा,
प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा ॥ ३ ॥

यह झूठा तेरा—मेरा है,
तू प्रभु का है प्रभु तेरा है।
प्रभु बोलत ही तिर जाएगा,
प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा ॥ ४ ॥

हे मानव ! तुझे जो यह मनुष्य की जिन्दगी मिली है यह बड़े ही पुण्योदय से प्राप्त हुई है। यह जिन्दगी इतनी बेशकीमती है कि इसकी प्राप्ति के लिए देवता भी आशा करते हैं। इसलिए इस जीवन मे नेक कमाई करते हुए अपने भविष्य को समुज्ज्वल बनालो। क्योंकि पुण्य कर्म से तो तुझे इसके साथ-साथ जीवन निर्वाह के लिए जो सुन्दर साधन उपलब्ध हुए हैं तो वे भी एक दिन नष्ट होजाने वाले हैं। इनमे से तेरे साथ कोई भी चीज जाने वाली नहीं है। यह यौवन भी बहते हुए पानी की तरह अस्थिर है। और तुझे जो लक्ष्मी प्राप्त हुई है तो यह भी चंचला है। स्थिर रहने वाली नहीं है एक जगह। इसे प्राप्त कर कभी कोई आकाश को स्पर्श करने वाली ऊची अट्टालिकाओं मे बैठकर अपने आपको गौरवशाली मानता है तो कभी कोई इसे गंवाकर दरिद्रनारायण के रूप मे दर दर भटकता फिरता है। अरे ! मरते समय कोई भी चीज तेरे काम मे आने वाली नहीं है। यहां तक कि मरते समय यह मोटा ताजा शरीर भी तुझे धोखा दे जायगा। यह भी तेरे साथ चलने वाला नहीं है। और जिन तिजोरियों की चाबीए तू कन्दोरे मे लटकाए हुए गर्व के साथ घूमता फिरता है तो वे चाबिएँ भी मरते समय खोल ली जायेगी। ऐ नादान इन्सान ! जिनको तू मेरा मेरा कह रहा है वे सब यहीं रह जायेंगे और तुझे अकेले ही पाप की गठरी सिर पर लाद कर इस

ससार से कूच करना होगा। तो कहने का मतलब यह है कि जिन कोठी, बङ्गलों, मोटरों, धन-माल, कुटुम्ब-कबीले वगैरह वगैरह को मेरा मेरा कह रहा है तो इनमे से कोई भी चीज तेरे साथ जाने वाली नहीं है। अरे! जिस गुलाब के फूल के सदृश कोमल एव सुन्दर शरीर को देख देख कर नाज कर रहा है तो वह भी एक दिन फूल की तरह कुम्हला जाने वाला है। भाई! इस संसार रूपी बाग में जितने भी फूल खिले हैं वे सब एक दिन कुम्हलाने के लिए हैं। और तू जो यह विचार करके बैठ गया है कि मरने वाले दूसरे हैं परन्तु मैं तो अमर होकर आया हूँ तो तेरा यह विचार भी मिथ्या है। क्योंकि यह आयुष्य भी आकाश में उडने वाले पक्षी की छाया की तरह अस्थिर है। जैसे उस पक्षी की छाया राहगीर पर क्षण भर के लिए पडती है और गायब हो जाती है तो इसी प्रकार मनुष्य की आयु भी पछी की छाया की तरह विलीन होजाने वाली है। परन्तु इतना सब कुछ आंखों से देखते हुए और कानों से सुनते हुए भी मोह नींद में बेहश होकर सो रहा है। और इन झूठी चीजों को फिर भी मेरी तेरी कह रहा है। इसे तेरी निरी अज्ञानता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। तू इस छोटी सी जिन्दगी में भी दूसरों को आराम पहुंचाने के बजाय तकलीफ पहुँचा रहा है। परन्तु याद रखना! तेरे पाप कर्म अपना चमत्कार दिखाए बिना नहीं रहेंगे। वे तुझे भव-भव मे दुःख पहुंचाने वाले हैं।

इसलिए ज्ञानी पुरुष ससारी जीवों को बार-बार चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे भव्यात्माओं! अब इस मोह नींद से सजग हो जाओ और मानव जीवन को शुभ कर्म करके सफल बनालो। ये जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं वे सब नाशमान हैं।

इसलिए इस झूठे झगड़े मे फंसकर अपने अमूल्य जीवन को बरबाद मत करो। यदि तुम्हारे साथ कोई जाने वाला है तो वह प्रभु का नाम स्मरण और पुण्य कर्म ही हैं। यदि तुम तीर्थङ्कर भगवान के बताए हुए सुपथ पर चल पडे तो इससे तुम ससार सागर से पार हो जाओगे और तुम्हारी आत्मा समस्त दु:खों से मुक्त होकर हमेशा के लिए सुखी बन जायेगी। प्रभु का नाम लेने से तुम्हारा मन, वचन और शरीर भी पवित्र हो जाएगा। इस-लिए आत्मा को चिदानन्द स्वरुप देखने के लिए सदैव जीवन में प्रभु का नाम लेते रहो।

अब किस प्रकार से भगवान सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को अभगसेन चोर सेनापति के भविष्य के विषय में फर्माते हैं यह आगे सुनने से मालूम हो सकेगा। इस प्रकार जो मानव पापकर्म से डरते हुए अपनी आत्मा को भगवान के नाम-स्मरण मे लगा देगा वह इस लोक तथा परलोक में सुखी बन जाएगा।

ऋषभ-भवन्तरी–

अब मैं आपके समक्ष भगवान ऋषभदेव के जीवन चरित्र के सम्बन्ध मे कुछ सुनाने जा रहा हूँ। कल मैं आपको यह सुना चुका था कि भगवान ऋषभदेव एक हजार वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ दशा मे विचरण करते रहे।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव विचरण करते हुए एक समय पुरिमताल नगर के सगडमुख नाम के उद्यान मे पधारे। वे वहा वटवृक्ष के नीचे ध्यान करके खड़े होगए। जब वे शुक्ल

ध्यान के अन्दर चौथे पाए पर थे तो उन्हें ध्यान करते-करते फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन सर्व विज्ञान प्रकाशक केवल ज्ञान की प्राप्ति होगई।

भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होते ही वहां देवलोक से चौंसठ इन्द्र आकर उपस्थित होगए। वे सब देवी देवता भगवान का केवल ज्ञान महोत्सव मनाने के लिए उपस्थित होते हैं। जब यह सूचना पुरिमताल नगर को जनता को मिली तो नगर के सारे स्त्री-पुरुष भी उस महोत्सव मे शरीक होने के लिए आकर उपस्थित होगए। उसी समय देवताओं ने समवसरण की रचना की और वहां बारह प्रकार की परिषद् ने बैठकर भगवान का धर्मोपदेश श्रवण किया। भगवान ऋषभदेव ने आई हुई परिषद् को धर्मोपदेश देते हुए दो प्रकार का धर्म बताया। उन्होंने सर्वविरति अर्थात् साधु धर्म और देश विरति अर्थात् श्रावक धर्म के विषय में निरुपण किया। जो सर्वविरति रुप साधुधर्म को स्वीकार करने में असमर्थ हैं वे देशविरति रुप श्रावक धर्म को अर्थात् बारह व्रतों को धारण करके श्रावक बन सकते हैं। यदि श्रावक धर्म को भी स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके द्वारा भी कभी न कभी आगे बढते हुए साधुधर्म को स्वीकार करके एक दिन मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार भगवान ने केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् ही प्रथम देशना जनता मे दी। उनकी प्रथम-देशना खाली नहीं गई। उनका धर्मोपदेश श्रवण करके कई स्त्री-पुरुषों ने साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रुप धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार भगवान ने चारों तीर्थ की स्थापना की।

भगवान ऋषभदेव का धर्मोपदेश श्रवण कर चौरासी हजार

व्यक्तियों ने साधु धर्म को अगीकार किया। उनके साधु संघ का सुचारु रूप से सचालन करने के लिए चौरासी गणधर महाराज हुए। भगवान के द्वारा प्रवर्जित साध्वियों की सख्या तीन लाख थी। उनके समय में बीस हजार केवली भगवान हुए। भगवान के कुल तीन लाख पांच हजार श्रावक और पांच लाख चौंसठ हजार श्राविकाएं हुई। उनके साधु समाज मे चार हजार साढ़े सात सौ वादी थे। भाई ! वादी उन्हें कहते हैं कि उनके सामने कोई भी देवता या मनुष्य आकर यदि गूढ से गूढ प्रश्नोत्तर करें और उन्हें हराना चाहें-निरूत्तर करना चाहें तो उनमे से कोई भी उन्हें पराजित करने में समर्थ नहीं हो सकता। वे सबके प्रश्नों का उत्तर इस विलक्षणता से देते हैं कि उन्हे सुनकर सब विस्मय मे पड़ जाते हैं और स्वयं ही पराजित होकर चले जाते हैं। तो ऐसे मेधावी पुरुष को वादी कहा जाता है। राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमारजी की बुद्धि भी बडी कुशाग्र थी। वे उत्पादिया बुद्धि के धारक थे। इसी प्रकार से शास्त्रों मे कई मेधावी पुरुषों का वर्णन आता है। उनकी तीव्र बुद्धि के सामने कोई भी प्रश्नोत्तर में नहीं ठहर सकता था।

भाई ! जिसमें बुद्धि की प्रखरता होती है और हाजिर-जवाबी होती है तो उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता और उसे कोई पराजित नहीं कर सकता। मैं आपके सामने बुद्धि के चमत्कार के सम्बन्ध में एक सच्ची घटना सुना रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि उस दृष्टान्त को सुनकर आप लोग कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। एक समय की बात है कि किसी गांव में एक जीनिंग प्रेस था। वहां आस-पास के लोग कपास लाकर लुढवाते थे। उस प्रेस के कम्पाउन्ड मे कई लोगों की रुई की गाठें पड़ी हुई

थीं। एक दिन उस कम्पाउन्ड में से किसी की गांठें चुरा ली गईं। चूंकि गांठे चुराने वाला कोई बाहर का आदमी नहीं था इसलिए आपस में एक दूसरे का नाम लेने से लड़ाई होजाने की सभावना थी। तो किसी ने भी किसी का इस विषय मे नाम नहीं लिया। जब यह केस सरकार के पास पहुँचा तो राजा ने उस व्यक्ति को बुलाया जिसका कि माल चोरी में गया था। जब वह व्यक्ति राजा के सामने उपस्थित हुआ तो उसका सारा बयान लिया गया। परन्तु जब राजा के दिमाग में कोई हल नहीं सूझ पड़ा तो उसने अपने दीवान से इसका फैसला करने को कहा। दीवान बड़ा बुद्धिमान था। उसने उक्त केस की वकफियत की और सारी जानकारी हो जाने के बाद उन व्यापारियों को बुलाया जिनका माल उस मील मे रखा हुआ था। उन व्यापारियों के आ जाने के बाद उसने सबसे कहा कि भाई! जिसने भी गाठे ली हों वह वापिस लौटा दे। परन्तु जब सबके मुह से एक ही उत्तर मिला कि मैंने तो माल नहीं लिया है, तो उस दीवान ने एक-एक हाथ लम्बी कुछ लकड़िएं मगवाईं। जब लकड़िए उसके सामने लाकर रखदी गईं तो उसने उन्हें एक जगह रखकर कुछ मंत्रोच्चारण किया और स्वाहाः कहकर उनमें से एक-एक लकड़ी प्रत्येक व्यापारी के हाथ में दे दी। उसने उन्हें देते समय साथ ही साथ यह भी कह दिया कि देखो! इन लकड़ियों को अपने-अपने घर ले जाओ और कल फिर इन लकड़ियों को लेकर इसी समय मेरे पास आना। उसने अपनी बुद्धिमता से उन्हें यह भी कहा कि मैंने ये लकड़िएं तुम लोगों को इसलिए दी हैं ताकि मुझे यह पता चल जाय कि तुममें से कौन चोर है? देखो! जो चोर होगा उसकी

लकड़ी कल तक चार अंगुल वढ़ जायेगी। ऐसा कहकर उस दीवान ने उन सब व्यापारियों को जाने की आज्ञा दे दी। वे सब लोग इन लकड़ियों को लेकर अपने अपने घर चले गए। अब जिसने चोरी नहीं की थी उसके हृदय मे तो किसी प्रकार का तूफान खड़ा नहीं हुआ। परन्तु जो वास्तव मे चोर था और जिसने गाठे चुराई थीं उसके पेट मे तो लकडी लेते ही उथल-पुथल मचनी शुरु होगई। उस चोर व्यापारी ने घर आकर अपने मन मे विचार किया कि दीवान सा० ने जो यह जादू भरी लकड़ी दी है तो यह कल तक चार अगुल अवश्य वढ जायगी क्योंकि मैंने ही गांठे चुराई है। अतःएव मुझे अभी से इसे चार अगुल काटकर कम कर देना चाहिए ताकि कल तक यह चार अगुल वढकर भी वरावर हो जायेगी। ऐसा निश्चय करके उस चोर ने उस लकडी को चार अंगुल काटकर कम कर दी।

जब दूसरे दिन पुनः सब व्यापारी अपनी २ लकड़िए लेकर दीवान सा० को इजलास में हाजिर हुए तो दीवान सा० ने सबसे लकडिएं लेनी शुरु कर दीं। जब वे सबसे लकड़िएं लेते लेते उस चोर व्यापारी के पास पहुँचे और ज्योंही उसकी लकड़ी हाथ मे ली तो वह लकड़ी सबसे छोटी निकली। क्योंकि वह लकड़ी चार अंगुल पहिले ही काट दी गई थी। उस लकड़ी को देखते ही उन्होंने उक्त व्यक्ति से कहा कि तूने ही गाठे चुराई हैं। यह सुनते ही वह व्यक्ति अवाक् रह गया। उसने फिर भी हिम्मत करके दीवान सा० से पूछा कि हुजूर ! आपने तो यह कहते हुए लकडी दी थी कि यह चार अंगुल वढ़ जायेगी। परन्तु इसे चार अगुल काट देने पर भी यह वढ न सकी। यह सुनकर दीवान ने उसका समाधान करते हुए कहा कि भाई ! यदि मैं ऐसा नहीं

कहता तो तू इसे चार अंगुल काटने की हिम्मत ही कैसे करता। तूने तो इसे अपने आपको ईमानदार और साहूकार घोपित करने के लिए ही काट दी। अरे! तूने अपनी बुद्धि से यह नहीं विचार किया कि कहीं कटी हुई लकडी भी बढ सकती है। और इस चीज को नहीं समझने के ही कारण तूने लकडी काट दी और चोर साबित होगया। तो कहने का मतलब यह है कि किसी किसी मे ऐसी कुशाग्र बुद्धि होती है कि वह जटिल से जटिल प्रश्न को भी अपनी बुद्धि से सुलझा लेता है।

इसी प्रकार से भगवान ऋषभदेव की आज्ञा में विचरण करने वाले चार हजार साढ़े सात सौ वादी थे जिनके सामने प्रश्नोत्तर मे कोई भी ठहर नहीं सकता था और अपना सा मुंह लेकर वापिस जाना पड़ता था। तो ऐसे ऐसे ज्ञानी, ध्यानी और वादी मुनिराज भगवान के शिष्य रुप में थे। और भी कैसे-कैसे मुनिराज हो गए हैं उनके सम्बन्ध में आगे सुनने से ज्ञात होगा।

इस प्रकार शास्त्रीय अधिकार सुनाने का यही उद्देश्य है कि श्रोताजन उक्त कथानकों को सुनकर पाप कर्म से अपनी आत्मा को बचाते हुए धर्म कार्य मे प्रवृत्ति कर सकें। क्योंकि सुनते रहने से मानव को अपने हिताहित का भान हो जाता है। उसे फिर दुष्कृत्यों से डर लगने लगता है। वह सोचता है कि यदि मैं भी इस प्रकार से अन्याय, अत्याचार और दुष्कर्म करूंगा तो भविष्य मे मुझे भी महान कष्टों को भोगना पडेगा। अतएव मानव अपनी आत्मा को उत्तरोत्तर उन्नत बनाने के लिए शुभकर्मों में प्रवृत्ति करने लगता है।

तो जो भव्यात्मा अपनी आत्मा को भविष्य मे सुखी बनाना चाहता है उसे सदैव भगवान को अपने हृदय में धारण करना चाहिए। इस प्रकार जो मानव भगवान का स्मरण करेगा और पाप कर्मों से डरेगा वह इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेगा।

बैंगलोर (केन्टोनमेंट)
ता० १२-८-५६
गुरुवार

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

विनय ही धर्म का मूल है

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्त्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितला मल भूषणाय ।
तुभ्य नमस्त्रि जगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ॥

卐卐

भाई ! शास्त्रकारों ने "विणय जिण शासन मूलम्" अर्थात् विनय को जैन धर्म का मूल बतलाया है। वास्तव में यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हम भी इसी निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि विनय ही धर्म का मूल है। विनयशील व्यक्ति का सर्वत्र सत्कार एव सम्मान किया जाता है। वह विनयवान व्यक्ति यदि शिष्य रुप में है तो अपने गुरु का कृपा-पात्र बन जाता है। और यदि वह पुत्र या पुत्री रुप में है तो अपने माता पिता की दृष्टि में प्रेम पात्र बन जाता है। गर्ज यह है कि विनय करने से मानव जाति, समाज, राष्ट्र और मित्र वर्ग में प्रशसा का पात्र बन जाता है।

जो व्यक्ति अपने से बड़े या छोटे का आदर सत्कार करता है आज्ञा का पालन करता है अथवा मीठे शब्दों से शिष्टाचार का व्यवहार करता है वही विनयवान कहलाता है। एक विनयवान व्यक्ति किसी के भी हृदय के गूढ़ रहस्य को जानने मे सफलता प्राप्त कर लेता है। उसके विनय गुण के कारण प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रभावित हो जाता है। वह चाहता है उसी मुश्किल से मुश्किल कार्य को आसान बना लेता है। तो मानव मे अपनी जीवनोन्नति के लिए विनयसपन्नता का गुण अवश्यमेव आना ही चाहिए। क्योंकि जिस व्यक्ति मे विनय नहीं, नम्रता नहीं और वाणी मे मधुरता नहीं वह कहीं और किसी के द्वारा भी आदर प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक स्थान से उसका तिरस्कार किया जाता है। उसे स्वय का अभिमान ही सब जगह से धक्के दिलवाकर निकलवाता है। उसे ससार मे सुख शान्ति पूर्वक जीवनयापन करना भी दूभर हो जाता है। एक अभिमानी शिष्य अपने ज्ञानी गुरु से भी कोई ज्ञान प्राप्त नहीं करने के कारण निरक्षर रह जाता है। एक अविनीत पुत्र या पुत्री भी अपने माता पिता से शुभाशीष के बदले दुराशीष ही ले पाता है।

तो मनुष्य को अपने प्रारम्भिक जीवन से ही विनीत बनने का प्रयत्न करना चाहिए। एक अविनीत व्यक्ति को तीर्थङ्कर भगवान ने अशांति मय जीवन का पोषक बताया है। वह अपने अविनय के कारण इस लोक तथा परलोक मे भी दु ख को प्राप्त करता है। तो कहने का आशय यह है कि प्रत्येक भव्यात्मा को अपनी बाल्यावस्था से ही विनय गुण का सबक अवश्य सीखना चाहिए। यदि आपके जीवन मे विनय गुण कूट कूट कर भरा हुआ है तो समझलो आपके जीवन में प्रत्येक गुण समाविष्ट

हो जाएगा। इसके विपरीत यदि जीवन में एकमात्र अविनय का दुर्गुण आगया है तो आपके सभी अन्य गुण फीके पड़ जायेंगे। उन सब गुणों की कीमत केवल विनय से हो सकती है। इसलिए अपने जीवन मे विनीत भाव लाने का भरसक प्रयत्न करते रहना चाहिए। सुज्ञेषु किं बहुना !

सज्जनो! उक्त भक्तामर स्तोत्र के छब्बीसवें श्लोक में विनयगुण सम्पन्न आचार्य श्री मानतुङ्ग भक्तिवशात् भगवान-ऋषभदेव की महत्महिमस्तुति करते हुए कह रहे हैं कि हे भगवन्! आपको मैं नमस्कार इसीलिए करता हूँ क्योंकि आप तीनों लोक के प्राणियों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पीड़ा को हरण करने वाले हैं। दूसरे आप ही इस पृथ्वीतल के ऊपर निर्मल अलकार स्वरुप है अतएव आपको मेरा नमस्कार है। तीसरे-आप ही तीनों जगत के साक्षात् ईश्वर हैं इसलिए भी आपको ही नमस्कार है। और चौथे आप ससार रुपी समुद्र का शोषण करने वाले हैं अतएव आपको ही मेरा नमस्कार है।

उक्त श्लोक में आचार्य महाराज के कहने का यही आशय है कि भगवान मे एक नहीं परन्तु अनन्त गुण विद्यमान हैं। और उन गुणों के कारण ही प्रत्येक का सहजभाव मे भगवान के प्रति नतमस्तक हो जाता है। यहा भगवान ऋषभदेव को चार रुप में नमस्कार किया गया है। भाई! ससार में जितने भी प्राणी हैं वे सब प्रथम तो जन्म और मरण के दुःख से पीड़ित हो रहे हैं। दूसरे उनमे से किसी को शारीरिक, किसी को मानसिक और किसी को आध्यात्मिक वेदना सता रही है। परन्तु उपरोक्त समस्त दुःखों से छूटने के लिए तीर्थंकर भगवान रुपी वैद्य का आश्रय

लिया जाता है। उक्त रोगों से विमुक्त होने के लिए भगवत् नाम-स्मरण रुपी औषधि का सेवन किया जाता है। भगवान को पुनः पुनः याद करने से मानव तमाम दुःखों से छूटकर सुख-शान्ति का अनुभव करने लगता है। उसकी अशातावेदनीय शातावेदनीय में परिणत हो जाती है और परमसुख की प्राप्ति कर लेता है। तो भगवान को प्रथम नमस्कार इसलिए किया गया है कि भगवान तीनों लोक के प्राणियों की पीड़ा का विध्वसन करने वाले हैं—हरने वाले हैं।

फिर दूसरी बार भगवान को इसलिए नमस्कार किया गया है कि जिस प्रकार से शरीर पर विविध प्रकार के रत्न जटित स्वर्णमय आभूषण धारण करने से शरीर की शोभा द्विगुणित हो जाती है उसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान के इस पृथ्वी तलपर विराजने से यह पृथ्वी भी सुशोभित होने लगती है। वह तीर्थंकर भगवान जैसे भूमिके भार को हल्का करने वाले महापुरुष को अपनी गोद मे देखकर धन्य-धन्य हो जाती है। तो इस कारण से भी भगवान् को नमस्कार किया गया है।

तीसरी बार भगवान को नमस्कार इसलिए किया गया है कि जिस प्रकार घर का स्वामी अपने आधीनस्थ कुटुम्ब का प्रतिपालन करते हुए घर के सभी सदस्यों को साधन जुटाकर सुख पहुँचाता है उसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान भी तीनों जगत के जीवों की प्रतिपालना करने वाले हैं, सुखशांति पहुंचाने वाले और मोक्ष मार्ग का दर्शन करने वाले है। अतःएव उन्हें इस गुण के कारण नमस्कार किया गया है।

तीर्थंकर भगवान के ऊपर संसार के प्राणियों के संरक्षण

की जिम्मेवरी है और वे ही तीनों लोक के सरक्षक होने के नाते संसार के परमेश्वर है और इसलिए भी भगवान को नमस्कार किया गया है।

और चौथी-बार भगवान को इसलिए नमस्कार किया गया है कि तीर्थ कर भगवान ससार के समस्त चराचर प्राणियों को जो ससार सागर के अथाह जन्म-मरण रूपी पानी में अनन्त काल से गोते लगा रहे हैं-तो वे डूबते हुए प्राणियों को सहारा देकर पार लगाने वाले हैं। वे उन जीवों को मोक्ष मार्ग पर अग्रसर करके अपने समान बनाने वाले हैं। और संसार रुपी समुद्र का शोषण करने वाले हैं। अतएव तीर्थंकर भगवान को बार-बार नमस्कार किया गया है।

भाई! नमस्कार करने में, झुकने में, विनय करने मे बड़ा भारी गुण रहा हुआ है। जो व्यक्ति जितना नमता है उतना ही वह आगे बढ़ जाता है। नमस्कार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सबका सिरमौर बन जाता है। देखो! नमस्कार-मत्र में भी पच पदों को नमस्कार करते हुए प्रथम 'नमो' पद दिया गया है। उसमें बताया गया है कि नमस्कार है अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सभी साधुओं को। अब आपके मन में शका उपस्थित हो सकती है कि उक्त पंच पदों को नमस्कार करने से हमको क्या लाभ की प्राप्ति हो सकती है? और हमें पंच पदों को किसलिए नमस्कार करना चाहिए।

तो उक्त प्रश्न के उत्तर में यही समाधान किया जा सकता है कि उक्त नमस्कार मन्त्र में पंच पदों को इसीलिए नमस्कार

किया गया है कि उक्त अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को श्रद्धा सहित नमस्कार करने से और विनयभाव सहित बहुमान देने से हमारी आत्मा में भी उनके गुण आ जाते है और हमारे समस्त कार्यो की सिद्धि हो जाती है।

हमारे नीतिकारों ने भी ससार के जीवो की उन्नत दशा देखने के लिए एक सिद्धान्त वतला दिया है। और वह सिद्धान्त है:—"कम खाना, गम खाना, और नम जाना।" उक्त सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति अपने जीवन मे उक्त तीनों वातों को अक्षरश: उतार लेता है वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्याधियों से विमुक्त होजाता है। वह अपने जीवन में एक अलौकिक सुख-शान्ति का झरना झरते हुए देख लेता है।

तो इस प्रकार से अपनी भक्ति भावना के वशीभूत होकर आचार्य महाराज भी तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव को वार-वार नमस्कार कर रहे हैं।

भाई! इसी विनय गुण के सम्बन्ध मे और नमस्कार करने के सम्बन्ध मे विश्लेषणात्मक ढङ्ग से विवेचन करते हुए श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन मे तीर्थङ्कर भगवान ने वताया है कि:—

'वन्दणएण भंते! जीवे किं जणयइ?
वन्दणएणं नीया गोय कम्म खवेइ। उच्चागोय कम्मं निवन्धइ। सोहग्गं च णं अपडिहय आणाफल निव्वत्तेइ। दाहिणभाव च णं जणयइ॥ १०॥

उक्त प्रश्नोत्तर में भगवान गौतम स्वामी ने अपने गुरु श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी से एक समय जिज्ञासा भाव से

पवित्र बना देती हैं। इसी प्रकार जिन महापुरुषों के दिल विशाल होते हैं-बड़े होते हैं वे अपनी शरण में आने वाले पापी जीवों को भी पवित्र बनाकर अपने समान बना लेते है। और इसी प्रकार हम भगवान को दीनदयालु, करुणा के सागर भक्तवत्सल या पावन के नाम से सम्बोधन करते हैं। तो अर्जुनमाली ही भगवान को नमस्कार करके मुक्तगामी नहीं बना परन्तु उसके जैसे अनेकों ही पापी जीव भगवान की शरण मे आकर विनयभाव करते हुए केवलज्ञान प्राप्त करके अक्षय सुख मे विलीन हो गए। और आज वर्तमान काल में भी उन्हीं भगवान के बताए हुए मोक्ष मार्ग पर चलने वाले हजारों की सख्या में साधु-साध्विए गुरु रुप में हैं और वे भी जिस विनीत शिष्य पर प्रसन्न हो जाते हैं तो वे उसे अपने ज्ञान का खजाना खोलकर दिखा देते हैं और शिवमार्ग की ओर हाथ पकड़कर अग्रसर कर देते हैं। तो वन्दन नमस्कार करने से जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तो उक्त श्लोक में भी आचार्य महाराज के भगवान ऋषभदेव को बार-बार नमस्कार करने का यही प्रयोजन हैं कि नमस्कार करने से आत्मा निर्मल बन जायेगी। और आत्मा जितनी निर्मल बनेगी उतनी ही हल्की होगी। जो चीज हल्की होती है वह ऊपर की ओर उठती है। तो यह आत्मा भी कर्मों से हल्की होकर ऊर्द्ध गामी बन जायेगी और एक दिन सिद्ध गति की ओर जाते जाते सिद्धस्थल पर पहुंचकर अनन्त सुख में विराजमान हो जायेगी। चूंकि भगवान ऋषभदेव अनन्त सुख में विराजमान है अतःएव उन्हीं को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

दुख-विपाक-सूत्र

तीर्थङ्कर भगवान ने जगज्जीवों के कल्याण के लिए धर्मोपदेश दिया। उसी उपदेश को गणधरों ने सूत्र रूप में गूंथ लिया। वही समहीत खजाना आज वर्तमान मे वत्तीस सूत्रों के रूप में मौजूद है। आज भी भव्यात्माएं उस उपदेश को सुन-सुन कर अपनी आत्मा का कल्याण कर रही है।

मैं कल आपके समक्ष दुःख विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन के विषय मे जिक्र कर रहा था। भगवान सुधर्मा स्वामी अपने सुशिष्य जंबू स्वामी के सामने तीसरे अध्ययन के भाव फर्मा रहे हैं। उन्होंने फर्माया कि हे जंबू! वह अडवाणियां तीसरी नरक के दस सागरोपम पर्यन्त कष्ट सहन करके वहा से उवद्दित होकर शाला नाम की अटवी में विजयसेन चोर सेनापति के यहां उसकी खंध श्री नाम की भार्या की कुक्षिका मे आकर उत्पन्न हुआ। जब खध श्री को गर्भ रहे हुए केवल तीन माह ही व्यतीत हुए थे तब उसे दोहला उत्पन्न हुआ। वह अपने गर्भस्थ पापी जीव के कारण विचारने लगी कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने कुटुम्ब की स्त्रियों के साथ, दास-दासियों के साथ शृंगार करके चार प्रकार का आहार सेवन करती हुई भोग भोगती है। और फिर पुरुष वेष धारण करके शस्त्रों से लेस होकर तथा अनेक प्रकार के वाद्यन्त्रों के बीच समुद्र की तरह गर्जना करती हुई गमन करती है। इसी प्रकार मे जब मैं भी अपने गोत्र की स्त्रियों के साथ चार प्रकार का आहार करके भोग भोगूंगी और पुरुष वेष धारण करके, शस्त्रों से लेस होकर तथा सिंह गर्जना करती हुई अटवी में विचरण करूंगी तो मैं भी अपने आपको

धन्य मानती हुई दोहला पूर्ण करूंगी। वह इसी आर्तध्यान में अपना समय व्यतीत करने लगी। परन्तु जब उसे अपने दोहद की पूर्ति के आसार नजर नहीं आये तो वह इसी चिंता ही चिंता में क्षीण काय हो गई।

एक समय जब रुध श्री इसी आर्तध्यान में बैठी हुई विचार कर रही थी तो उसका पति विजयसेन उसके पास आगया उसने उसे इस प्रकार से चिंतित हालत में देखा तो उसने उससे इसका कारण पूछा। पति के वारवार पूछने पर उसने अपने आर्तध्यान का कारण कह सुनाया। उसने उसे यह भी कहा कि जब मेरा दोहला पूर्ण होगा तभी मेरी चिंताजनक हालत मिट सकती है-अन्यथा नहीं। परन्तु विजयसेन चोर सेनापति ने अपनी स्त्री को सान्त्वना देते हुए मनभावने शब्दों मे कहा कि प्रिय ! तुम्हें सुख उपजे वैसा करो। मुझे इसमे किसी प्रकार का एतराज नहीं है। तुम खुशी खुशी अपने विचारों के अनुरूप अपना मनोरथ पूर्ण कर सकती हो। जब रुध श्री ने अपने पति के मुंह से इच्छानुकूल मीठे और उत्साहभरे शब्द सुने तो उसके शरीर का रोम रोम प्रसन्नता के मारे खिल उठा। फिर उसने अपने विचारानुसार अपने गोत्र की स्त्रियों के साथ चार प्रकार का आहार किया और पुरुष वेष धारण करके सिंह गर्जना करते हुए अटवी से गुजर कर अपने मनोरथ को साकार रूप दिया। इस प्रकार वह अपने मनोरथ को पूर्ण करके पुनः घर को लौट आई। अब वह आनन्दपूर्वक अपने गर्भ को पोषण करती हुई विचरण करने लगी। दोहद की पूर्ति होजाने से उसका शरीर भी सुडौल बन गया और चेहरे पर चमक आगई।

जब नौ मास पूर्ण हो गए तो उसने ठीक समय पर एक बालक को जन्म दिया। पुत्र जन्म की खुशी मे विजयसेन चोर सेनापति ने बालक का दशोटन किया और बड़े ही उत्साह के साथ जन्मोत्सव मनाया। उसने अपने न्याती, गोत्री, कुटुम्बियों और मित्रों को आमन्त्रित करके सबको प्रेमसहित चार प्रकार का भोजन शराब के साथ कराया। फिर उसने अपने आमन्त्रित लोगो के सामने कहा कि देखो ! जब यह बालक अपनी माता के गर्भ मे था तो इसकी माता को उक्त दोहला उत्पन्न हुआ था अतएव उक्त दोहले के अनुसार इसका नाम अभगसेनकुमार रखा जाना चाहिए। सभी उपस्थित लोगों ने विजयसेन सेनापति के प्रस्ताव का समर्थन किया। बच्चे का नामसस्कार हो जाने के पश्चात उसने सब लोगों को सम्मान पूर्वक विदा किया।

उस अभगसेन कुमार के पालन-पोषण के लिए उसके माता-पिता ने पाच धाए नियुक्त कर दी। वे उसकी भलि प्रकार सेवा सुश्रूषा करने लगीं। इस प्रकार अभगसेन कुमार पाच धाय माताओं के सरक्षण में आनन्द पूर्वक द्वितीया के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

जब वह बाल्यावस्था को लांघ कर युवावस्था मे प्रविष्ट हुआ तो उसके पिता ने उसका आठ सुन्दर और समानवयस्क कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। अब वह अभंगसेन कुमार अपनी आठ स्त्रियों के साथ मनमाने भोग भोगता हुआ आनन्द पूर्वक विचरण करने लगा।

कालान्तर मे वह विजयसेन चोर सेनापति कालधर्म को प्राप्त हो गया। अपने पिता की मृत्यु हो जाने से अभंगसेन को

प्रश्न करते हुए पूछा कि हे भगवन् ! वन्दन करने से किस फल की प्राप्ति होती है ? तब भगवान महावीर ने अपने परम शिष्य भगवान गौतम स्वामी से प्रश्न के उत्तर में कहा कि हे गौतम ! जो विनयसपन्न व्यक्ति अपने से बड़े सन्त महापुरुष अथवा गुणी पुरुष को नमस्कार करता है उसके नीच गौत्र के इकट्ठे किए हुए दलित नष्ट होजाते है। वह नमस्कार करते हुए उच्च गौत्र को बाध लेता है। यही वन्दन नमस्कार करने का शुभ-फल है। वह विनयवान व्यक्ति नमस्कार करने से सौभाग्य को प्राप्त करता है, आज्ञा का सफल सामर्थ्य प्राप्त करता है और दाक्षिण्य भाव अर्थात् विश्ववल्लभता को प्राप्त कर लेता है।

तो उस प्रश्नोत्तर से आपको भलिभांति विदित होगया होगा कि नमस्कार करने से मनुष्य ससार मे सबका पूज्य बनकर एक दिन नर से नारायण भी बन जाता है। इसलिए हम लोग भी उपदेश सुनाकर इसी बात पर जोर देते हैं कि भाई ! आप से जितना झुका जाय उतना ही झुक जाओ। आप जितना झुकेंगे और जितनी बार नतमस्तक होंगे उतनी ही आपकी आत्मा हल्की होकर ऊपर उठ जायेगी। भाई ! वन्दन-नमस्कार करना, आदर-सत्कार करना और मिष्ट भाषण करना वगैरह सब विनय गुण के अङ्ग है। तो नमस्कार वाली आत्मा को इस लोक तथा परलोक में भी सुख की प्राप्ति होती है।

आप गृहस्थ जीवन में रह रहे है और आपका ससारी जीवों के साथ गठबन्धन है। अतएव ससार के व्यवहार मे भी यदि देखा जाय तो वहां भी नमने की—झुकने की और विनय भाव लाने की नितान्त आवश्यकता है। उस सांसारिक क्षेत्र मे भी

विनय गुण की प्रधानता बतलाई गई हैं। वहां भी नमे विना काम नहीं चल सकता। तो वहां भी आप जितना नमेंगे उतना ही सामने वाले व्यक्ति को अपनी ओर प्रभावित कर लेंगे। उसे अपनी ओर आकर्षित करके अपना मुश्किल से मुश्किल काम भी आसान कर लेंगे। क्योंकि नमने से विनयभाव दर्शाने से सबकी आत्मा मे प्रसन्नता की अनुभूति होने लगती है और वे अपने बन जाते हैं।

भाई ! स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने भी अपनी कविता में विनयभाव के-नमने के गुण बताते हुए कहा है कि:—

राजा जो प्रसन्न होय, गामादि बख्शीश करे,
सेठजी प्रसन्न होय, नौकरी बढाय दे।
मा पितु प्रसन्न होय, बतावे गुपत वित्त,
पति जो प्रसन्न होय, जेवर घड़ाय दे॥
देवता प्रसन्न होय, पुत्र और धन देय,
उस्ताद प्रसन्न होय, इलम पढाय दे।
"खूबचन्द" कहे गुरुदेव जो प्रसन्न होय,
जनम मरण भव, दुःख से छुडाय दे॥

देखो ! उपरोक्त कविता मे विनय गुण के कारण-नमने के कारण कौन कौन प्रसन्न होकर क्या-क्या चीजें बख्शीश कर देते हैं इसी को दर्शाते हुए स्व० पूज्य खूबचन्दजी मा० बता-रहे हैं कि यदि तुम राजा-महाराजा को नमस्कार करोगे तो वह प्रसन्न होकर तुम्हें कोई गाव या हाथी, घोड़ा सवारी अथवा

पैरों में सोना वख्शीश करके तुम्हारी इज्जत वढा देगा। फिर तुम्हें ससार भी इज्जत की दृष्टि से देखने लगेगा। यदि तुम किसी सेठ के यहा मुनीम या गुमाश्ते के रुप मे कार्य कर रहे हो और तुम उसे नित्य नमस्कार करोगे तो वह भी प्रसन्न हो जाएगा और तुम्हें समय-समय पर इनाम देगा तथा तुम्हारा वेतन वढा देगा। इसी प्रकार माता-पिता भी अपने पुत्र-पुत्रियों पर विनय के कारण प्रसन्न होकर उन्हें प्रच्छन्न-गुप्त रूप मे रखी हुई सपत्ति को बता देते हैं। यदि किसी स्त्री की पतिव्रता भक्ति को देखकर उसका पतिदेव प्रसन्न हो जाता है तो वह उसकी फरमाइश के मुताबिक जेवर घडवा देता है और कीमती साडिए ला देता है। इसी तरह जिस भक्त पर देव प्रसन्न हो जाता है तो वह उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनकी मनो-कामना पूर्ण कर देता है। वह उसे पुत्र और धन प्रसन्न होकर दे देता है। यदि कोई विद्यार्थी अपने गुरुजनों को नित्यप्रति नमस्कार करता है-विनय भाव दर्शाता है तो वह उससे प्रसन्न होकर उसे चित्त लगाकर पढ़ाता है, छः माह का कोर्स दो माह मे पूर्ण करा देता है और परीक्षा मे भी अच्छे नम्बरों में उत्तीर्ण करा देता है। परन्तु सबसे श्रेष्ठ फल के विषय में स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० बताते हुए कहते हैं कि जिस विनीत शिष्य से गुरु महाराज प्रसन्न हो जाते हैं तो वे अपनी शरण में आए हुए पापी से पापी और अधम से अधम जीव को भी संसार-सागर से पार कर देते हैं। अर्थात् उस शिष्य को वे जन्म-मरण के चक्र से छूटने का सीधा और सरल उपाय बता देते हैं। तो नमस्कार करने से मनुष्य को अत्यधिक लाभ की प्राप्ति होती है।

भाई! अर्जुन माली जैसा महापातकी जो प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री की निर्मम हत्या कर डालता था परन्तु जब वही सेठ सुदर्शन का निमित्त पाकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की शरण में गया और भगवान को नमस्कार किया तो उस पर भगवान की महरबानी हो गई। चूंकि भगवान तो पतितपावन कहलाते हैं अतएव उन्होंने उस अर्जुनमाली को अपने चरणों मे आश्रय दे दिया। वह साधु बनकर भगवान के द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करने लगा। इस प्रकार एक हत्यारे का जीवन साधुता मे तबदील हो गया। वह उसी जीवन मे चारित्र धर्म का पालन करते हुए केवल छः माह मे ही समस्त कर्मों को काटकर मोक्ष मे चला गया। तो इस प्रकार उसके जीवन में एकदम परिवर्तन कैसे आ गया? इस प्रश्न के समाधान में कहा जा सकता है कि वह परमदयालु भगवान महावीर के चरणों मे नतमस्तक हो गया और नमस्कार के फलस्वरुप उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गई। क्योंकि भगवान के हृदय में बड़ी अनुकंपा रहती है। वे पतित से पतित आत्मा पर भी घृणाभाव नहीं लाते। वे पापी जीवों को भी पवित्र बनाने की भावना रखते हैं। जिस प्रकार से गङ्गा यमुना आदि पवित्र कहलाने वाली नदिएं अपने उद्गमस्थान से निकल कर पवित्र जल के साथ शहरों के किनारे किनारे होकर बहती हुई चली जाती है। परन्तु उनमे शहर से आने वाले कितने ही गंदे पानी के नाले अपनी पापभावना लेकर मिल जाते है। वे सोचते है कि हम उन नदियों के पवित्र जल को गंदा बना देंगे परन्तु होता क्या है कि उन पवित्र नदियों के विशाल पाट मे गिरकर वे भी पवित्र जल के रूप में बदल जाते हैं। तो उक्त नदिएं अपने हृदय की विशालता के कारण उन गंदे नालों के पानी को भी अपने रुप में बदल कर

बड़ा रंज हुआ। परन्तु फिर भी उसने अपने कुटुम्बियों के साथ रोते हुए अपने पिता की विधि पूर्वक सम्पूर्ण अन्त्येष्ठि क्रिया-कर्म किया। इस प्रकार सारे लोक व्यवहार सम्बन्धी कार्य से निवृत्त होकर आनन्द पूर्वक रहने लगा। अब वह अपने पिता के स्थान पर उन पांच सौ चोरों का सेनापति बन चुका था। परन्तु वह भी अपने पिता के समान बड़ा अधर्मी था। वह भी अधर्म कार्य से अपनी आजीविका उपार्जन करता था। वह भी लोगों के साथ अन्याय, अत्याचार, जुल्म, लूट खसोट करता हुआ और उन्हें प्राणों से विमुक्त करता हुआ विचरण करने लगा। वह महा-बल राजा से भी उसकी आय में से हिस्सा लेने लगा। इस प्रकार चारों तरफ उसका आतक छा गया। उसकी क्रूरता और वेरहमी से तमाम गावों के लोग परेशान हो चुके थे। उन लोगों को एक गाव से दूसरे गांव जाना भी दूभर हो गया। वे लोग दुखित होकर एक दिन आपस मे संगठित होकर परामर्श करने लगे कि इस असह्य दुःख से मुक्त होने के लिए और अपने जान माल तथा बहु-बेटियों के सतीत्व की सुरक्षा के लिए हमे महाबल राजा के पास जाकर नम्रनिवेदन करना चाहिए और इसके लिए आव-श्यक प्रबन्ध करवाना चाहिए। जब सब लोगों का एकमत हो गया तो उनमे से कुछ प्रतिनिधि राजा की सेवा में उपस्थित हुए और उनके श्री चरणों मे अमूल्य भेंट रखकर बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! हम सब आपकी प्रजा हैं और अभी तक हम लोग आपकी छत्र-छाया मे निर्विघ्नता पूर्वक रहते आए हैं। ऐसे तो विजयसेन चोर सेनापति ने भी हम लोगों को बहुत दु.ख दिया है, धन लूटा है और कइयों को मौत के घाट भी उतार दिए हैं। परन्तु उसके मर जाने के बाद उसका पुत्र अभगसेन चोर सेनापति भी अपने पिता

की तरह ही जोर जुल्म कर रहा है, और लूट खसौट करते हुए लोगों को प्राणों से भी विमुक्त कर रहा है। हम लोगों को रात-दिन उसके आतंक से चिंता ही चिंता सवार रहती है। रात्रि में नींद लेना भी हराम हो गया है। हम लोग इधर-उधर आजादी के साथ आ-जा भी नहीं सकते हैं। वह अभगसेन चोर सेनापति इतना शक्तिशाली है कि हमसे पकड़ा भी नहीं जा सकता। अत एव हे महाराज! हम गरीब प्रजा को राहत मिल सके वैसा उचित प्रबन्ध कर हमें अनुग्रहीत करें।

अपने जनपद-देश के लोगों के मुंह से अभगसेन चोर सेनापति के बढ़ते हुए जुल्मों की शिकायत सुनकर महाबल राजा बड़ा कोपायमान हुआ। उसने उसी समय क्रोधित होते हुए अपने दण्ड सेनापति को बुलाया और उसे शाला पल्ली अटवी को लूटने तथा अभङ्गसेन चोर सेनापति को जिन्दा ही पकड़ लाने की आज्ञा दी। इस प्रकार राजा के मुह से सन्तोषजनक प्रत्युत्तर सुनकर वे सब लोग अपने स्थान को लौट गए। उसने अपनी प्यारी प्रजा से कहा कि तुम लोग अब आराम से नींद लो। वह दण्ड सेनापति राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके अपने साथ बहुतसे शस्त्रों से सुसज्जित सिपाहियों को लेकर रवाना हो गया। वह अपने सुभटों के साथ महान् गर्जना करते हुए, रणभेरी से आकाश को गुञ्जाते हुए और वीरतापूर्ण कदम बढाते हुए शाला अटवी की तरफ बढता हुआ जारहा था। साथ ही वे वीर सैनिक जोशपूर्ण नारे लगाते हुए जा रहे थे कि हम उस चोर सेनापति को अवश्यमेव पकड़कर लायेंगे।

भाई! उस अभङ्गसेन चोर सेनापति के जासूस भी चारों

तरफ फैले हुए थे। अतएव उसके जासूस ने अटवी में आकर अपने चोर सेनापति को सूचित किया कि हे अन्नदाता ! आज गाव के लोगों ने मिलकर राजा से आपके विषय में जोरदार शिकायत करदी है। अतएव राजा ने क्रोधित होकर दण्ड सेनापति को अटवी लूटने तथा आपको जिन्दा पकड लाने की आज्ञा देदी है वह सेनापति भी राजा की आज्ञानुसार अपने सैनिकों को लेकर इस ओर प्रस्थान कर चुका है और बहुत शीघ्र अटवी की तरफ आने ही वाला है।

ज्योंही अभङ्गसेन चोर सेनापति ने अपने जासूस के मुह से उक्त समाचार सुने त्योंही उसने अपने पाचसौ चोर साथियों को बुलाया और क्रोध मे लाल लाल नेत्र करते हुए आज्ञा दी कि प्यारे साथियों ! आज गाव के लोगों की शिकायत सुन कर राजा महाबल ने अपने दण्ड सेनापति को अटवी लूटने तथा मुझे जिन्दा पकडने की आज्ञा देदी है। अब वह सेनापति सैनिकों के साथ अटवी की तरफ कूच कर चुका है। अतएव आज तुम लोगों को अपनी शक्ति का परिचय देने का मौका आचुका है। तुम्हे सेनापति और उसके सिपाहियों को यहां तक पहुँचने से पहले ही बीच रास्ते में मुकाबला करके मार देना चाहिये। यदि वे बीच ही में मार दिए गए या खदेड दिए गए तो उनमें से कोई भी यहा तक नहीं पहुच पाएगा। और इस प्रकार अपनी शाला अटवी भी लुटने से बच जायेगी और नहीं वह मुझे पकडने में समर्थ हो सकेगा।

अभंगसेन चोर सेनापति के मुंह से निकले हुए शब्दों का उसके पाच सौ ही चोर साथियों ने समर्थन किया। इसके

बाद उस चोर सेनापति ने चार प्रकार का भोजन तैयार करवाया और उसे अपने साथियों के बीच बैठकर शराब के साथ खाया। जब सब लोग भोजन कर चुके तब सबने विविध प्रकार के हथियार धारण किए और अपने सेनापति की आज्ञा होते ही बाजा बजाते हुए और नारे लगाते हुए शाला अटवी से प्रस्थान किया। इस प्रकार अभगसेन चोर सेनापति भी अपने साथियों के साथ जोशीले शब्द बोलता हुआ उस दुर्गम पर्वत की झाडियों के निकट आ पहुंचा। अब उसने सुरक्षित स्थान देखकर वहां सबको झाडियों में छिपने की आज्ञा दे दी। वे पाच सौ ही चोर झाडियों में छिप गए।

थोड़ी ही देर बाद दड सेनापति अपने सैनिकों के साथ ज्यों ही उक्त निश्चित स्थान पर आया त्योंही वहां छिपे हुए पाच सौ ही चोर अपने सेनापति का इशारा पाते ही उन सैनिकों पर टूट पड़े दोनों दलों मे जमकर लडाई शुरु हो गई। भाई! लड़ाई भी दो प्रकार से होती है-एकतो लड़ाई बातों से होती है और दूसरी हाथों से होती है। तो यहां जो लडाई हुई वह बातों से नहीं परन्तु हाथों से हुए। दोनों दल के सैनिकों ने खुल कर लडाई की। परन्तु फिर भी अभंगसेन चोर सेनापति के साथियों ने वह पराक्रम दिखाया कि दंड सेनापति और उसके सैनिक भाग खडे हुए। इस प्रकार अभगसेन चोर सेनापति ने उन सबको दही की तरह मंथन करके पीछे खदेड दिया। दड सेनापति अपने सैनिकों के साथ हारकर पुन. नगर को लौट गया।

भाई! मैंने उक्त प्रकार की एक घटना जावरे में कुछ

वर्षों पहिले देखी थी। घटना इस प्रकार घटी कि वहां स्थानक के पड़ौस मे श्री केसरीमलजी का मकान आ गया है। उनका घर और दुकान दोनों एक ही जगह आ गए हैं। वे तिजोरी की चाबी एक जगह रख देते थे। एक समय किसी चोर ने उन्हें चाबिएं रखते हुए देख लिया। वह रात्रि मे मौका पाकर घर में घुस गया और चाबिए निकाल कर उसने तिजोरी में से बहुत-सा धन निकाल लिया। इस प्रकार वह उस धन की गाठ बाध कर भाग गया।

जब उक्त चोरी का पता सेठजी को हुआ तो उन्होंने शोर गुल मचाना शुरू कर दिया। उक्त शोर गुल को सुनकर आस-पास के लोग इकट्ठे हो गए। इस मामले मे सब लोगों ने यही राय दी कि उक्त चोरी की शिकायत आपको यहां के नवाब सा० के पास जाकर करनी चाहिए। इसके सिवाय सेठजी के पास दूसरा चारा भी नहीं था। अतएव उन्होंने नवाब सा० के पास जाकर उक्त चोरी के सम्बन्ध मे सारी घटना कह सुनायी। नवाब सा० ने सेठजी की शिकायत सुनकर उसी वक्त अपने कोतवाल को बुलाया और उसे चोरी का माल बरामद करने की आज्ञा दी यद्यपि उक्त चोर ने सारा धन नवाब सा० के लड़के को दे दिया था फिर भी कोतवाल ने पूरी कोशिश करके चोर का पता लगा लिया। जब वह उस चोर को पकड़ने के लिए निश्चित स्थान पर पहुँचा तो उसने कोतवाल को जोर से मुक्का मारा और उसके चंगुल से भाग निकला। इस पकड़ा धकड़ी में एक आदमी भी मारा गया। परन्तु कोतवाल ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और उसको सहास के साथ पकड़ लिया। वह चोर तो पकड़ा गया परन्तु उक्त चोरी का माल बरामद नहीं हो सका।

तो उस अभगसेन चोर सेनापति ने भी दृढ सेनापति को अपनी होशियारी से सैन्यबल, कायिकबल और पराक्रम से भी रहित कर दिया। वह सेनापति अभगसेन के शौर्य के सामने ठहर नहीं सका और अपने सिपाहियों को लेकर नगर को लौट आया।

जब दृढ सेनापति राजा के पास पहुंचा तो राजाने उससे पूछा कि क्या वह अभगसेन पकड़ लिया गया है? यह प्रश्न सुनते ही दृढ सेनापति ने कांपते हुए नीची गर्दन करके कहा कि महाराज! मैं अपने सिपाहियों को विविध प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित करके लेगया था और मौके पर पहुंच कर हमारा उसके चोर साथियों के साथ डटकर मुकाबला भी हुआ। परन्तु बात दरसल यह है महाराज! कि वह अभंगसेन अपने साथियों के साथ एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर रहता है और उसके पास ऐसे-ऐसे साधन हैं कि उसके सामने ठहरना और उसे जीतकर लाना नितान्त मुश्किल है। उसने इस प्रकार से मोरचा बना रखा था कि वहां पर उसके साथ लड़ने मे हमारा भी अधिक नुकसान होता। इसलिए मैंने अपने सिपाहियों को व्यर्थ ही मौत के मुह मे भेजना उचित नहीं समझा। परन्तु अब तो उसे तथा उसके सारे साथियों को पकड़ने का एकमात्र सुगम उपाय मेरे दिमाग मे यही आ रहा है कि उसे विश्वासजनक वचनादिक से धोखा देकर ही पकड़ने की कोशिश की जानी चाहिए। महाराज! उसके साथ मुकाबला करने से तो वह किसी भी प्रकार हाथ नहीं आ सकता। परन्तु उसके दिल मे विश्वास जमाकर तथा उसके कुटुम्बियों, दास, दासियों को बहुत सा धन देकर और उस चोर सेनापति के पास बहुमूल्य भेटें भेजकर यहां बुलाया जा सकता है। जब वह

निश्शङ्कित होकर यहां आ जाएगा तो फिर आसानी से पकड़ लिया जा सकता है। अन्यथा वह किसी भी तरह हाथ आने वाला नहीं है। और उसे पकड़े बिना प्रजा को कभी भी राहत मिलने वाली नहीं है। इसलिए कड़वी गोली देने के बजाय उसे मीठी गोली सेवन करा कर ही वशमे करना चाहिए। क्योंकि नीतिकारों ने कहा है कि साम, दाम, दण्ड और भेद नीति से काम लेने से अपने कार्य में सफलता जल्दी मिल जाती है। तो सबसे अच्छा उपाय तो यही है कि उसके हृदय में अच्छी तरह विश्वास जमा लिया जाय।

भाई! दूसरे के हृदय में विश्वास जमाकर चाहे जो काम कराया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति विश्वास के भरोसे अपने आपको अन्धेरे कुए में भी धकेलने को तैयार होजाता है। आज का मानव प्रथम तो दूसरे व्यक्ति के हृदय मे विश्वास पैदा करता है और जब अपना स्वार्थ पूर्ण हो जाता है तो वह उसके साथ विश्वासघात कर बैठता है। इस प्रकार की घटनाएँ आज ही नहीं परन्तु प्राचीन काल में भी होती रही हैं। मैं इसी प्रसङ्ग पर एक पुरानी घटना आपके सामने रख देना उचित समझता हूँ। इससे आपको बहुतसी शिक्षाएँ मिलने की सम्भावना है।

देखो! आज से सातसौ वर्ष पहिले इसी भारतवर्ष में दिल्ली के तख्त पर अलाउद्दीन बादशाह हुकूमत कर रहा था। वह बड़ा अन्यायी और अत्याचारी शासक था। एक दफा दरबार में बैठे हुए उसने चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह की रानी पद्मनी की अवर्णनीय सुन्दरता के विषय मे किसी विश्वस्त व्यक्ति के मुंह से तारीफ सुनी। उसकी तारीफ सुनते ही बादशाह के

नस-नस में बिजली दौड़ गई और वह उसे प्राप्त करने के लिए विह्वल हो उठा। उसने विचार किया कि पद्मनी चितौड के किले पर शोभा नहीं देती। वह तो सुन्दरी मेरे आलीशान महलों में ही सुशोभित हो सकती है। इस प्रकार का दृढ संकल्प करके उस कामातुर बादशाह अलाउद्दीन ने अपना सन्देशा लिखकर राजदूत के साथ चितौड के राणा रत्नसिंह के पास भेजा।

उक्त ऐतिहासिक घटना को स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने अपनी कविता में आद्योपान्त वर्णित करदी है उसी कविता को हम प्रसङ्गवशात् आपके सामने पेश कर रहे हैं:—

रानी पद्मनी का जौहर व्रत

(तर्ज—ख्याल की)

यह गढ़ चितौड की. कथा अजब है प्यारी।
हुई सती पद्मनी, वीर धर्म की धारी ॥ टेक ॥

श्री रत्नसिंह महाराणा नूर नूरानी,
ये सिंहल द्वीप की व्याहे पद्मनी रानी।
जिनके स्वरूप की फैली घर घर कहानी,
सुन अलाउद्दीन खिलजी की नियत पलटानी ॥
कब बैगम मेरी, बने पद्मनी रानी ॥ हुई ॥ १ ॥

ले विकट फौज चितौड पै करी चढाई,
दोनों नदियों के बीच फौज ठहराई।

किल्ले को घेर कर वहीं छावनी छाई,
छः महीने मे भी नहीं पद्मनी पाई ॥
तव विवश होयकर, एक अनीति विचारी ॥ हुई ॥२॥

कर कपट वात यह राणा को कहलाई,
मैं नहीं चाहता हूँ वैर विरोध लड़ाई।
पद्मनी की महिमा दिल्ली मे सुन पाई,
तब से दर्शन करने की मन में आई ॥
यह इच्छा पूरण कीजे मित्र हमारी ॥ हुई ॥३॥

महाराणा सरल स्वभाव उसे बुलवाया,
शीशे मे महारानी का मुंह दिखलाया।
महमान समझ कर नीचे तक पहुंचाया
छिपी हुई फौज से राणा को पकड़ाया ॥
हुआ दग़ा राजपूतों ने लिया विचारी ॥ हुई ॥४॥

कर सलाह बादशाह पै यह खबर भिजवावे,
पद्मनी प्रेमवश पास तुम्हारे आवे।
सात सौ बांदिया डोलों में सग आवे,
सुन अलाउद्दीन की तबियत अति हर्षावे ॥
एक डोले पर दुशाला जरी का दीना डारी ॥ हुई ॥५॥

डोले मे एक सरदार, चार उठावे,
शस्त्रों से डोले सजे सैन्य में आवे।
पद्मनी पति से अंतिम मिलना चहावे,
यह शाह सुनी राणा के पास पठावे ॥
मिलने के बहाने, राणा को लिया निकारी ॥ हुई ॥६॥

डोले में बिठा फौरन राणाजी तांई,
और गढ़ चित्तौड़ पर दीना तुरत पठाई।
फिर राजपूतों ने ऐसी खडग बजाई,
खा हार बादशाह दिल्ली कूच मनाई॥
पद्मनी को चित्त से, किन्तु नहीं बिसारी॥ हुई ॥७॥

एक बार बादशाह फिर चित्तौड़गढ़ आया,
क्षत्रियों ने उसको खूब ही हाथ दिखाया।
रणवास में राणा अंत मे आ जतलाया,
रहे धर्म तुम्हारा शरण अनल की जाया॥
अग्नि का कुण्ड एक, रचा सामने जारी॥ हुई ॥८॥

तीन सौ रानियां अनुक्रम से चल आवे,
राणा को नमनकर अग्नि में जल जावे।
पद्मनी अंत मे पति को शीश नमावे,
अग्नि मे स्नान कर अपना धर्म बचावे॥
दिये राजकुंवर को, गुप्त मार्ग से कारी॥ हुई ॥९॥

फिर वीरों ने केशरिया वेष सजाया,
कई यवनों के हर प्राण, प्राण गंवाया।
आ गढ़ में बादशाह खाक देख पछताया,
फूलों के बदले खार हाथ में आया॥
ले सेना वापिस, दिल्ली गया सिधारी॥ हुई ॥१०॥

संवत् सोलह सौ साठ का जिक्र बनाया,
दृढ रहो धर्म पर सब ही बायां भायां।

गुरु हीरालालप्रसादे चौथमल गाया,
ये दो हजार के साल चौमासा ठाया ॥
यह गढ़ चित्तौड़ पर, कीनी लावनी प्यारी ॥ हुई ॥११॥

हां, तो मैं कह रहा था कि बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने अपने राजदूत के साथ चित्तौड के महाराणा के पास यह सन्देश भेजा कि "हे राणाजी ! या तो खुशी-खुशी तुम रानी पद्मनी को हमारे हवाले करदो अन्यथा लडाई करने को तैयार हो जाओ।" जब उक्त समाचार राणा रत्नसिंह ने पढ़े तो उन्होंने क्रोधित होकर दूत को कहा कि—जाओ ! और अपने बादशाह को कह दो कि मेवाड के राणा लडाई करके युद्ध भूमि मे अपने प्राण गवाना धर्म समझते हैं परन्तु अपनी पद्मनी को तुम्हारे हवाले करने मे महान पाप समझते हैं।" वह राजदूत राणाजी के उक्त जोश भरे प्रत्युत्तर को लेकर जब दिल्ली पहुँचा और बादशाह को प्रत्युत्तर पढ़ाया तो वह उक्त निराशाजनक समाचार पढ़कर अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने तत्काल एक बड़ी फौज लेकर चित्तौड की ओर प्रस्थान कर दिया। उसने वहां पहुँच कर चित्तौड के किले के चारों तरफ घेरा डाल दिया। कई दिनों तक तो इसी प्रकार राजपूत लोग किले के अन्दर रहते रहे परन्तु आखिरकार उन्हें बाहर निकलना ही पड़ा। क्यों कि अंदर रहते हुए उन्हे रसद का मुहैय्या होना कठिन हो गया था। अत.एव राजपूत वीर केसरिया बाना धारण करके शेर की तरह किले के बाहर आए और अलाउद्दीन खिलजी की सेना पर टूट पड़े। राजपूत वीरों ने बड़ी बहादुरी से लडाई की। मुगल सेना के छक्के छुडवा दिए। इस प्रकार छः महिने तक राजपूतों

और मुगल सेना में युद्ध होता रहा परन्तु बादशाह को अपने मनोरथ पूर्ण होने में सफलता प्राप्त नहीं हुई ।

जब बादशाह अलाउद्दीन सब तरह से निराश हो चुका तो उसने विचार किया कि इस तरह तो मैं राजपूतों के सामने नहीं ठहर सकता और मुझे नुकसान भी काफी उठाना पड़ेगा। परन्तु यदि तरकीब से काम लिया जाय तो सभव है मैं अपने उद्देश्य में कामयाब हो सकूं । और वह तरकीब यह है कि मुझे राजपूतों और राणा रतनसिंह के दिल मे विश्वास जमाना चाहिए। इस प्रकार जब राणा के दिल मे मेरे प्रति अविश्वास नहीं रहेगा तो वह मुझे अपना मित्र समझने लगेगा। मैं नकली मित्रता के नाते उसके साथ विश्वासघात करके उसे कैद कर लूंगा। जब वह मेरी कैद में आ जाएगा तो फिर पदमनी को वश में करने में कोई देर न लगेगी। इस प्रकार दृढ सकल्प करके अलाउद्दीन ने विनम्र शब्दों मे राणा रत्नसिंह को एक पत्र लिखा। उस पत्र में यह लिखा गया कि मैं अब लड़ाई से तंग आचुका हूँ और वापिस दिल्ली जाना चाहता हूँ। परन्तु जाने से पहिले मेरी एकमात्र यही तमन्ना है कि मैं एक बार रानी पदमनी के दर्शन करना चाहता हूं। यदि आप मेरी छोटी सी तमन्ना पूरी कर देंगे तो मैं रानी के दर्शन कर तुरन्त ही दिल्ली को लौट जाऊंगा। मैंने जो कुछ भी लिखा है उस पर आप गौर फर्माएंगे और मेरी अभिलाषा पूर्ण करने का शीघ्र प्रवन्ध करेंगे।

जब उक्त पत्र राणा रत्नसिंह ने पढा तो उनके हृदय में कुछ विश्वास के अकुर उत्पन्न हो गए। फिर भी उन्होंने अपने

वीर राजपूत सरदारों को बुलाया और उनके सामने बादशाह के द्वारा भेजा गया पत्र अक्षरशः पढकर सुना दिया। बादशाह के प्रस्ताव को पढे जाने के पश्चात् सबने मंत्रणा की और आखिर यह निर्णय किया गया कि यदि बादशाह केवल महारानी साहिबा के दर्शन ही करना चाहता है तो उसे अकेला बुलाकर शीशे में महारानीजी का प्रति-बिम्ब दिखला दिया जाय। इससे खूंरेजी होने से बच जायेगी और बादशाह भी संतुष्ट होकर अपने वायदे के मुताबिक दिल्ली लौट जाएगा।

आखिर निर्णय होजाने पर राणा रत्नसिंह की तरफ से बादशाह अलाउद्दीन को उसके प्रत्युत्तर मे लिखा गया कि हम आपका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करते हैं और आप स्वय ही महारानी को देखने के लिए आ सकते हैं।

जब बादशाह ने राणा की तरफ से भेजे हुए पत्र को पढा तो पढते ही उसका दिल बाग-बाग होगया। उसे अपनी तरकीब के जरिए अपने काम में सफल होने का निश्चय होगया। वह खुशी-खुशी अकेला ही किले पर पहुँच गया। क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास हो चुका था कि राजपूत वीर अपनी जबान के धनी होते हैं और उनसे धोखे की आशा करना कतई नामुमकिन है। ज्योंही बादशाह महलों में पहुचे तो राणा रत्नसिंह और उनके सरदारों ने उनका भावभीना स्वागत किया। इसके बाद उन्होंने बादशाह को रानी पद्मनी के शीशे में दर्शन करवा दिए।

महारानी पद्मनी की अद्वितीय सुन्दरता को देखकर बादशाह बडा प्रसन्न हुआ और मीठे शब्दों मे कहने लगा कि महाराज ! आज मैं बडा भाग्यशाली हूँ कि मैंने महारानीजी के

दर्शन कर लिए। अब मुझे कोई तमन्ना नहीं रही। साथ ही आपने भी बडी दूरदर्शिता से काम लिया और मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करके अनेक निरपराध व्यक्तियों को मौत के चगुल से छुडा लिए।

उक्त मीठे प्रशसात्मक वचनों को सुनकर राणा रत्नसिंह ने अपने सरल हृदय मे प्रसन्नता की अनुभूति की। उन्होने विचार किया कि आखिर इन्सानियत रखता है और इन्सानियत ही नहीं परन्तु दिल्ली के तख्तताऊस पर बैठकर हिन्दुस्तान की बादशाहत करता है तो इस नाते मेरा भी परम कर्तव्य होजाता है कि जिस प्रकार से मैने हिन्दुस्तान के बादशाह की अगवानी की उसी प्रकार इज्जत के साथ उन्हें किले के नीचे तक ही पहुँचा आऊँ। भाई! जिसका हृदय सरल होता है वह दूसरे को भी सरल और निष्कपटता के भाव वाला समझता है। उसके मन मे शकाशीलता नहीं होती। अतएव महाराणा रत्नसिंह अपने आदरणीय महमान को शिष्टता के नाते नीचे तक पहुंचाने के लिये आए' परन्तु ज्योंही वे बादशाह से हाथ मिलाकर जाने लगे त्योंही आस-पास छिपे हुये सिपाहियों ने राणा को पकड लिया और वन्दी बनाकर तम्बू मे बिठा दिया और सन्तरी पहरे पर खड़े करवा दिए।

भाई! जिस राणा ने बादशाह अलाउद्दीन और उसकी फौज को छ. महिने पर्यन्त वन्दर की तरह नाच नचवाए वही आज दिल में विश्वास पैदा करके वन्दी बना लिए गए। अब वे परवशता के कारण अपनी जबान भी नहीं खोल सकते थे। परन्तु मन मे वे जरूर सोचने लगे कि इस दुष्ट ने मेरे साथ

विश्वासघात करके मुझे बन्दी बना लिया। परन्तु ऐसा सोचने से तो कुछ बनने वाला नहीं था।

आखिर जब राणा रत्नसिंह के बन्दी बनाए जाने के समाचार किले मे पहुँचे तो तमाम रानियों व राजपूतों में घबराहट पैदा होगई। वे सब किंकर्तव्य विमूढ से होगये। परन्तु महारानी पद्मनी ने धैर्य से काम लिया। उसने अपने वीर सरदारों को बुलवाए और उनके सामने जोशभरे शब्दों में कहा कि मेरे वीर सरदारों! जो कुछ होने वाला था वह तो होचुका परन्तु अब हमे किसी भी प्रकार से महाराणा को छुडवाने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। हम जानते हैं कि हमारे साथ उस दगाबाज बादशाह ने बडा भारी विश्वासघात किया है परन्तु अब महाराणा को आजाद कराने में यदि दगाबाज के साथ दगा भी किया जाय तो इसमे कोई पाप नहीं होगा। यद्यपि हम नहीं चाहते कि दगाबाज के साथ दगा किया जाय परन्तु इसके बिना हम अपने उद्देश्य में सफल भी नहीं हो सकते। इसलिए दगा करने वाले के साथ दगा करके ही कामयाबी हासिल की जा सकती है।

उसी समय वीर सेनानी गोरा और बादल ने महारानी पद्मनी के सामने निवेदन किया कि महारानीजी! अब हमें इस युक्ति से काम लेना चाहिए जिससे हम महाराणाजी को कैद से मुक्त भी करा सकें और उस धोखेबाज बादशाह को हमेशा के लिए सबक भी सिखा सकें। और उसके लिए इस प्रकार करना चाहिए कि अपनी ओर से अलाउद्दीन को एक पत्र भेजा जाय जिसमें यह लिखा जाय कि महारानी पद्मनी अब खुशी-खुशी आपकी सेवा मे आना चाहती है। परन्तु सात सौ बांदियों के

साथ डोले में बैठकर आयेगी। यदि आप इसमें कोई ऐतराज नहीं समझे तो वह आ सकती है। उक्त प्रस्ताव का सभी राजपूत सरदारों ने एकमत से समर्थन किया। इस प्रकार सब की अनुमति से उक्त आशय का पत्र बादशाह अलाउद्दीन की सेवा में भेज दिया गया।

जब दूत ने उक्त पत्र बादशाह सलामत की सेवा में पेश किया तो वह उसे पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस कामान्ध बादशाह ने फोरन प्रत्युत्तर मे लिखवा भेजा कि मैं महारानी पद्मनी को जी जान से प्यार करता हूँ और वे अपने प्रस्ताव के अनुसार सातसौ डोलों के साथ आ सकती है।

बादशाह अलाउद्दीन का अनुमति-पत्र लेकर दूत वापिस किले पर आया और उस पत्र को सभी सरदारों के समक्ष पढ़कर सुना दिया गया। अपनी सफलता को प्रथम सीढ़ी पर चढ़ते ही सबको हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसी समय सात सौ डोले तैयार कराए गए। उनमे से प्रत्येक मे एक एक वीर राजपूत सरदार स्त्री वेष में शस्त्रों से सुसज्जित होकर बैठ गया। और एक डोले पर जरी का पर्दा डाल दिया गया जिससे बादशाह को मालूम हो जाय कि इसमे पद्मनी बैठी हुई है। उस डोले मे वीर गोरा और बादल स्त्री वेष मे बैठ गए। इस प्रकार पूर्ण रूप से तैयारी करके प्रत्येक डोले को चार-चार राजपूतों ने उठाया और वे सब किले से रवाना होकर बादशाह अलाउद्दीन के तम्बुओं की तरफ आए। ज्योंही बादशाह ने अपनी आखों से डोलों को आते हुए देखा त्योंही वसे अपनी धोखेबाजी पर फक्र होने लगा। उसने मनमे विचार किया कि जिस उद्देश्य से मैं यहा तक आया हूं और छः

महीने से राजपूतों के साथ लड़ाई करते हुए किले को घेरे हुए बैठा हूँ परन्तु आज मुझे आशातीत सफलता प्राप्त हो गई है। यदि मैं राणा के दिल में विश्वास नहीं जमाता तो किसी प्रकार भी मुझे राणा और पद्मनी प्राप्त नहीं हो सकते थे। इस प्रकार वह मन ही मन खुश हो ही रहा था कि इतने मे उक्त सात सौ डोले उसके नजदीक आ पहुँचे। वे सब डोले वहां आकर रुक गए। इतने ही में एक राजपूत सरदार ने वादशाह के पास जाकर अर्ज की कि वादशाह सलामत ! महारानी साहिबा की अंतिम इच्छा यह है कि वे एक वार अपने पति से मिलना चाहती है। यह सुनते ही उस कामातुर वादशाह ने सोचा कि अब रानी पद्मनी मेरे चगुल मे है। यह यहा से भागकर जाने में असमर्थ है। अतएव उसकी अंतिम इच्छा को भी पूर्ण कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उसने महारानी को अपने पति से मिलने की इजाजत दे दी।

वादशाह की तरफ से इजाजत मिल जाने पर वे सात सौ ही डोले उस तरफ लेजाए गए जहा कि राणा रत्नसिंह तंबू में कैदी के रूप मे ठहराए गए थे। वह जरी के पर्दे वाला डोला उक्त तवू के पास लेजाया गया। वहा के तमाम पहरेदारों को हटा दिया गया। उसमे गोरा और वादल स्त्री वेष में घूंघट निकाले हुए राणाजी के पास गए और उन्होंने इस प्रकार से राणा को कैद से मुक्त कराने का सारा षड्यन्त्र कह सुनाया। राणा जी के वधन खोल दिए गए और तुरन्त ही उन्हें उस डोले में बैठाकर किले की तरफ रवाना कर दिया गया। वात दरअसल यह हुई कि वादशाह के सिपाही वेखवर होकर अपने-अपने काम में लगे हुए थे और इतने ही में उक्त सात सौ डोलों में से सात सौ

वीर सरदार निकल पड़े और अचानक उन्होंने उन वेखवर मुगल सिपाहियों पर हमला कर दिया। उनमे से कितने ही मुगल सैनिक मारे गए और वाकी के सारे भाग खडे हुए। इस प्रकार वादशाह का मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका और उसे वहा से बुरी तरह हार कर दिल्ली लौट जाना पड़ा। उसने भी मन मे विचार किया कि देखो ' राजपूत वीर भी एक धोखेबाज के साथ धोखा करने की बुद्धिमत्ता रखते हैं। इस प्रकार वह वादशाह दिल्ली तो लौट गया परन्तु इस वेकरार दिल से रानी पद्मनी को नहीं भुला सका। उसे रात-दिन पद्मनी को प्राप्त करने की लगन लगी रही।

आखिर वह कुछ दिन वाद पुनः इसी तमन्ना से एक विशाल सुसगठित सेना लेकर दिल्ली से चित्तौड की ओर रवाना हुआ। इस वार वह दृढ़ सकल्प के साथ रवाना हुआ कि पहिले तो मैं धोखे से हार कर लौट आया परन्तु इस वार अवश्यमेव पद्मनी को लेकर आऊँगा।

जव महाराणा रत्नसिंह को सूचना मिली कि वादशाह अलाउद्दीन खिलजी फिर चित्तौडगढ़ पर चढ़ाई करने को सदल-वल सहित आ रहा है तो राणा ने भी अपनी राजपूत सेना को मोर्चे पर मुकावला करने को खडी कर दी। दोनों फौजों मे पुनः डटकर मुकावला हुआ। परन्तु राणा की सेना के वहुत से वीर सिपाही लडाई मे लडते हुए मारे गए। अव उनकी सेना में वहुत कम सैनिक रह गए। जव राणा को ज्ञात हुआ कि अव इतने थोड़े से सैनिकों के द्वारा वादशाह पर विजय प्राप्त करना मुश्किल है और इज्जत वचाना भी मुश्किल है तो वे

पशो पेश में पड़ गए। वे विचार मे पड गए कि अब हमें क्या करना चाहिए ?

आखिर ! उन्होने किले पर सभी वीरों और वीरागनाओं को एकत्रित करके कहा कि मेरे प्यारे सरदारों ! आज तक मेवाड़ की रक्षा करते हुए यवनों के हाथ से हमारे बहुत से वीर राजपूत मारे जा चुके हैं। उन वीर राजपूतों ने मातृ-भूमि की रक्षा करते-करते अपने प्राण गवा दिए हैं। और युद्ध की इस खूरेजी से किले पर विधवाओं का ढेर हो गया है। क्योंकि किसी का पति, किसी का भाई किसी का बाप और किसी का पुत्र मारा जा चुका है। इसी कारण ये विधवाए निराश्रित हो चुकी हैं। और अब मैं भी इस लायक नहीं रह गया हूं कि तुम लोगों की रक्षा कर सकूं। इसलिए अब वीर सन्नारियों की इज्जत बचाने का एक-मात्र यही रास्ता है कि वे इस धधकते हुए अग्नि कुण्ड में जौहर व्रत करके अपने प्राण विसर्जन करदें। मैं एक बार फिर वीरागनाओं से प्रार्थना करुगा कि जिन्हें अपने प्राण प्यारे हों वे तो बादशाह की ओर चली जाय और जिन्हें अपने सतीत्व की रक्षा करनी हो—इज्जत प्यारी हो वे इस अग्नि कुण्ड की शरण मे चली जाय।

राणा के मुंह से उक्त मार्मिक शब्दों को सुन कर उन वीर क्षत्रानियों ने एक स्वर से कहा कि महाराणाजी ! आप हमें बुज-दिल और कायर न समझें। हम भी वीरागनाएं हैं और अपने धर्म तथा इज्जत की रक्षा के लिए हम हंसते-हंसते अग्नि कुण्ड में स्नान करके अपने प्राण समर्पित करने में गौरव समझती हैं न कि बेइज्जती के साथ जीने मे। आप हमारी तरफ से तनिक भी

चिंता फिक्र न करे। हम जैसा जबान से कह रही हैं वैसा ही समय आने पर करके भी दिखा देंगी।

राणा रत्नसिंह ने जब उक्त जोश भरे वचन उन वीर सन्नारियों के मुह से सुने तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उनके हृदय मे जो पीड़ा हो रही थी वह शात हो गई। उन्होंने निश्चिन्तता पूर्वक कहा कि हे वीरागनाओं ! मेरे हृदय मे जो आप लोगों की तरफ से चिंता हो रही थी उससे अब मुझे मुक्ति मिल चुकी है। मैं आज सबसे बड़ी खुशी प्राप्त कर चुका हूँ। आप लोगों ने अपने धर्म की रक्षा के लिए जो अग्नि-कुण्ड मे कूदकर प्राण विसर्जन करने का निश्चय कर लिया है यह प्रशसनीय है और भविष्य के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा। आप अपने मन में यह गांठ बाध ले कि आप यहा शरीर से तो अवश्यमेव नष्ट हो जायेंगी परन्तु आगे स्वर्ग तैयार है।

इस प्रकार राणा रत्नसिंह ने उन वीरागनाओं के हृदय में देश भक्ति तथा धर्म रक्षा की भावना पैदा कर दी। इसके बाद उन्होंने किले के दरवाजे बन्द करवा दिए और महल के सामने एक विशाल अग्नि कुण्ड की रचना करवाई। जब सब वीर सरदार और वीरांगनाए वहा उपस्थित हो गए तो राणा ने उन वीरों को सबोधन करते हुए कहा ऐ वीरों ! आज ये सीशोदिया वश की वीर क्षत्रानियां अपने धर्म की रक्षा के लिए जौहर व्रत धारण कर रही हैं। ये देखते-देखते इस अग्नि कुण्ड मे स्नान करके अमर हो जायेंगी। इसलिए इन देवियों को अग्नि कुण्ड में अपने प्राण विसर्जन करने से पहिले आशीर्वाद दो ताकि इनकी आत्माए शरीर से निकल कर परलोक मे अत्यधिक आनन्द का उपार्जन

कर सकें। और भविष्य में आने वाली पीढ़ियां इनके गौरव-इतिहास की गाथा गा सकें।

भाई! इस वंश का नाम शीसोदिया इस लिए पड़ा कि किसी समय इस वंश के पूर्वजों ने शीशा पीकर धर्म की रक्षा की थी।

इस प्रकार करीब तीन सौ रानियां और दूसरी क्षत्रानियां एक एक करके हँसती हुई राणा को नमस्कार करके अग्नि कुण्ड में कूद कर भस्म हो गई। उन सबने अग्नि माता की शरण मे जाकर अपने सतीत्व की रक्षा कर ली।

आखिर मे जब महारानी पद्मनी का नम्बर आया तो उसने भी महाराणा को नमस्कार किया। अपने हृदय के अंतिम उद्गार प्रकट करते हुए अग्नि देवता से बोली कि:—

अगन अब राखो लाज हमारी ॥ टेक ॥

हम सब बाला निपट विहाला, पति हीन परम दुखारी।
वेग चिता धकी भस्म करो प्रभु! हम सब सखा तिहारी ॥१॥

सुन रे यवन अधम चण्डालों, हृदय दियो तुम जारी।
साखी सुरप्रति फल पाओगे, भोगोगे दुख भारी ॥२॥

भाई! महारानी पद्मनी उस धधकती हुई अग्नि चिता के सामने हाथ जोड़कर अर्ज करती है कि हे अग्निदेव! तू हम सबकी रक्षा करना। हम सबके कलेजों को जलाने वाले बादशाह ने हमें आज तेरी शरण मे आने के लिए मजबूर कर दिया है। हमारे बाप, भाई, पति और पुत्रों ने अपने देश की रक्षा के लिए

यवनों से लोहा लेते हुए अपने प्राण विसर्जन कर दिए हैं। और हम भी धर्म की रक्षा करती हुई उनके पास जारही हैं। अतएव तू हमको अपनी शरण में ले ले। फिर वह अलाउद्दीन बादशाह के जुल्मों के प्रति अंतरात्मा से आहें भरती हुई कहती है कि हे अलाउद्दीन! तूने हम सबको असमय मे ही प्राण विसर्जन करने के लिए मजबूर कर दिया है तो हम तो अपने धर्म की रक्षार्थ प्राण विसर्जन कर लेंगी परन्तु याद रखना! तूने जो हम अबलाओं को दु:ख दिया है उसका फल तुझे अपने आप मिल जाएगा। तू हम अबलाओं की आहों के कारण जीवित रहते हुए भी दुख पाता रहेगा।

भाई! किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि:—

जो जलाएगा औरों को, वो भी जलाया जायेगा।
जो सताएगा औरों को, वो भी सताया जायेगा॥

तो महारानी कह रही है कि ऐ दुष्ट! तू आज हमको दुख तो दे रहा है परन्तु याद रखना! एक दिन तेरे दुष्कर्मों के फल तुझको अवश्य भोगने पड़ेंगे। इस प्रकार महारानी पद्मनी भी हसती हुई अग्निकुण्ड में कूद पडी और जलकर भस्म होगई।

देखो! उन वीर सन्नारियों ने इस प्रकार हँसते हुए धर्म की रक्षा के खातिर अग्नि कुण्ड में कूद कर अपने प्राणों की आहूति दे डाली। वे शरीर से तो भस्म होगई परन्तु आत्मा से अपने जौहर व्रत के कारण हमेशा के लिए अमर होगई। उन वीराङ्गनाओं की अमर गाथा आज भी दुनिया गौरव के साथ गाती है।

भाई ! इन वीराङ्गनाओं के अग्निकुण्ड मे जल कर समाप्त होजाने के पश्चात् किले के तमाम दरवाजे खोल दिए गए। और जो बचे हुए वीर राजपूत थे उन्होंने केशरिया वस्त्र धारण किए और शस्त्रों से सुसज्जित होकर किले से बाहर निकल पडे। वे सब एक साथ "हर हर महादेव" के नारों से आकाश को गुञ्जाते हुए मुगल सेना पर सिंह की तरह टूट पडे। उन्होंने पूरी ताकत के साथ मुगल सेना का मुकावला किया और बहुत से सैनिकों को मारकर धराशायी कर दिए। भाई! युद्ध के प्राङ्गण मे जाने वालों के हाथ लड्डू नहीं आते परन्तु मौत के साथ खेल खेलना पडता है। युद्ध के मैदान मे बीभत्स चीत्कारों के बीच खून की होली खेलनी पडती है। तो इस प्रकार वे सब राजपूत वीर भी वीरतापूर्वक लडते लडते काम आगये। उन वीरों ने भी देश रक्षा के खातिर मरकर अपने नाम को अमर कर लिया।

जब युद्ध की समाप्ति हुई तो बादशाह अलाउद्दीन अपनी प्रेमिका की तलाश मे किले पर गया परन्तु बहुत कुछ तलाश करने के बावजूद भी उसके हाथ वह फूल नहीं आ सका। भाई! जिस पद्मनी को हासिल करने के लिए उसे दिल्ली छोडकर चित्तौड़ आना पडा और इतने जङ्ग लड़ने पडे परन्तु इतनी खून खराबी करने के बाद भी उसे पद्मनी प्राप्त न हो सकी। इस प्रकार अलाउद्दीन को निराश होकर वापिस दिल्ली लौट जाना पड़ा।

इसी विषय पर टाड राजस्थान के इतिहास में एक कविता लिखी गई है। उस कविता मे बादशाह के मुह से अन्तर्हृदय से निकले हुए भाव दर्शाए गए हैं। उसमें बताया गया है कि:—

(अलाउद्दीन बादशाह के उद्गार)

आये थे गुल के वास्ते, बस खार ले चले।
हिज्रा का पद्मनी के, ये आजार ले चले ॥ टेक ॥
दिल की थी जो हविश, वो न निकली हजार हैफ।
गो जेवरो जवाहर, वेशुमार ले चले ॥ १ ॥
इस हेतु जिन्दगी के लिए, हाय ! क्या किया ?
जख्मी बनाके लाखों को, नाचार ले चले ॥ २ ॥
बस चार गज्र कफन के सिवा, गजे दहर से।
हमराह अपने कुछ भी, न जरदार ले चले ॥ ३ ॥
वस्ले पद्मनी की दिल में निहायत थी आरजू।
बदले खुशी के हसरते, दीदार ले चले ॥ ४ ॥
हसरत पुकारती है यह, कुश्तो पै फौज के।
चित्तौड की वहार यह, सरदार ले चले ॥ ५ ॥
किस जिन्दगी पै शहर, यह वीरान कर दिया।
अफसोस व्याज कत्ल का, अवार ले चले ॥ ६ ॥

कवि अपनी भाषा में बादशाह अलाउद्दीन के हृदय से निकले हुए उद्गार प्रकट कर रहा है। बादशाह उस वीभत्स और हृदयविदारक दृश्य को देख कर अपने आप कहता है कि हाय ! मेरी पद्मनी को प्राप्त करने की कितनी उत्कट इच्छा थी परन्तु वह अग्नि-कुण्ड मे कूद कर भस्म होगई। उसे प्राप्त करने के लिए मैंने दिल्ली छोडी, राणा से युद्ध किया, उसे विश्वास में लाकर बन्दी बनाया और हजारों वीर राजपूतों को मौत के घाट उतारा परन्तु इतना सब कुछ जुल्म करने के पश्चात् भी मैं उस

फूल की सुगन्धि को सूंघ नहीं सका। अरे मैं आया तो उस गुल को प्राप्त करने के लिए था परन्तु उसके बदले यहां से आज खराबी और बदनामी लेकर जा रहा हूँ। वह सती पद्मनी तो यहां से अमर यश लेकर चली गई और मै अपयश-बदनामी लेकर जारहा हूँ। हाय! मैंने इस चित्तौड शहर को वीरान बना दिया। अब मैं खुदा के सामने कयामत के दिन क्या जवाब दूंगा। मुझे अपने गुनाहों की सजा भुगतनी ही पड़ेगी।

भाई! यह ऐतिहासिक घटना संवत् १३६० में चित्तौड़ किले पर घटी है। इस घटना को इतने वर्ष व्यतीत हो चुके परन्तु फिर भी आज ज्यों की त्यों बनी हुई है। स्व० जैन दिवाकरजी म० ने जब सवत् २००० के साल चित्तौड़ किले पर चातुर्मास किया था तब उक्त ऐतिहासिक घटना को उन्होंने सर्व साधारण की जानकारी के लिए अपनी भाषा मे कविता बद्धकर दिया। तो इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि जहां बल से काम नहीं चले तो कल से काम लेना पडता है और किसी जगह अक्ल से काम लेना पडता है।

तो यहां चित्तौड़ की सती पद्मनी के इतिहास को सुनाने का यही प्रयोजन है कि देखो! किस प्रकार से बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने राणा रत्नसिंह के दिल पर विश्वास जमाकर उसे अपना बन्दी बनाया और मन-माने अत्याचार किए!

हा, तो मैं कह रहा था कि उस दृढ सेनापति ने भी महाबल राजा से निवेदन करते हुए कहा महाराज! उस अभग-

सेन चोर सेनापति को भी यदि आप सुगमता-पूर्वक पकडकर प्रजा को दु:ख से मुक्त कराना चाहते है तो आपको उसके हृदय मे पूर्ण विश्वास उत्पन्न करना होगा। वह बिना विश्वास जमाए किसी भी तरह वश मे नहीं किया जा सकता।

अब किस प्रकार महाबल राजा उस चोर सेनापति के दिल में विश्वास पैदा करते है और किस प्रकार उसे वश मे करके प्राण दन्ड दिया जाता है यह सब कुछ आगे सुनने से ज्ञात हो सकेगा।

ऋषभ-मवन्तरी

भाई! भगवान ऋषभदेव के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध मे भी कुछ प्रकाश डाल देना उचित समझता हूँ। मैं समझता हूँ कि आप लोग महापुरुष के जीवन चरित्र को ध्यान पूर्वक श्रवण कर अपने जीवन मे उन विशेपताओं को उतारने की कोशिश करेंगे।

भगवान ऋपभदेव की आज्ञा में विचरने वाले बीस हजार छ: सौ वैक्रिय लब्धिधारी मुनिराज हो गए हैं। उन मुनि राजों मे एक से अनेक रूप बनाने की शक्ति थी। इनके अलावा भगवान के बारह हजार छ' सौ पचास विपुलमति ज्ञान के धारक मुनिराज थे। भगवान के शिष्य परिवार मे से बाईस हजार नौ सौ मुनिराज तो अनुत्तर विमान मे पहुँचे और साठ हजार साधु-साध्वियों ने उसी भव मे मोक्ष प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान ऋपभदेव इस भारत भूमि पर विचरण कर धर्मोपदेश देते हुए तीसरे आरे के जब नव्यासी पक्ष शेप

रह गए थे तब अष्टापद पर्वत पर अपने दस हजार मुनिराजों के साथ पालकी आसन से बैठे हुए मह्रा वदी दशमी के दिन मोक्ष मे पधारे। भगवान ऋषभदेव का शासन काल चौथे आरे का चौथा अर्थात्–पचास लाख करोड़ सागर वर्ष का था। और जो शासन के आखिर मे पाट पर आचार्य थे उनमें से असख्य आचार्य निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

भाई! स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने भगवान ऋषभदेव के पूर्वभवों का जीवन चरित्र सवत् १९८४ की साल जब कि गुरु नन्दलालजी की आज्ञानुसार जावरा मे चातुर्मास किया था तब पूज्य लालचन्दजी म० के द्वारा बनाए हुए चरित्र के अनुसार उन्होंने भी अपनी भाषा मे पद्य बद्ध कर दिया। वे अत मे जनता से अपील करते हुए कहते हैं कि उक्त चरित्र मे यदि कहीं पाठकों को कम या अधिक पढ़ने मे आए तो वे उसे उसी प्रकार समझने की कोशिश करे। इस प्रकार उक्त भगवान ऋषभदेव का चरित्र मैं अपने श्रोताओं की अभिरुचि को ध्यान मे रखते हुए विवेचनात्मक ढङ्ग से सरल भाषा मे सुनाकर आज पूर्णकर रहा हूँ। मैं उन महापुरुषों के चरणों मे श्रद्धापूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आप लोगो से आशा करता हूँ कि आप इस चरित्र को सुनकर अपने जीवन मे भी उन अच्छाइयों को लाने का प्रयत्न करेंगे।

उक्त चरित्र को सुनकर हमको अपने जीवन मे निष्कर्ष स्वरूप यही शिक्षा लेनी चाहिए कि भगवान ऋषभदेव ने जो तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया तो उसका मूल कारण था कि उन्होने तीर्थंकर गोत्र बाधने बीस बोलो में से अपने पूर्व भव में

सुपात्र को भक्ति-भाव से दान दिया और उत्कृष्ट रसायन आने पर तीर्थङ्करगोत्र उपार्जन कर लिया। और एक दिन तीर्थंकर बन-कर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। इसलिए आप भी यदि अपने जीवन को उन्नत दशा में देखना चाहते हैं तो दातार बनिए। क्योंकि त्याग करेंगे तभी उस पद को प्राप्त कर सकेंगे। बिना दिये यहा और वहा कुछ भी मिलने वाला नहीं है। जो कुछ आप पूर्व भव मे देकर आए हैं उसके बदले मे यहां आपको सर्व कुछ प्राप्त होगया है। अब यदि यहा शुभ कर्म करोगे तो आगे भी सब कुछ मिल जायगा।

दूसरे यदि आप सत् पुरुपार्थ करेंगे तो उसके फल-स्वरूप आप भविष्य में तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और प्रति-वासुदेव वगैरह सब कुछ बन जायेंगे और फिर मोक्ष प्राप्त करने मे भी विलम्ब न होगा।

इस प्रकार यदि इस चरित्र को सुनकर आप लोग अपने जीवन मे त्यागवृत्ति लायेगे और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, विनय, नम्रता, परोपकार आदि-आदि सद्गुणों को अपनायेंगे तो इस लोक और परलोक मे सुख के झूले मे झूलते हुए एक दिन मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।

बैंगलोर (केन्टोनमेंट)
ता० १३-८-५६
गुरुवार

★★

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

पाप कर्म का फल भोगना अवश्यंभावी है
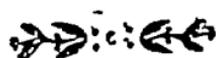
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै,
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय जात गर्वैः,
स्वप्नांतरेपि न कदाचिद पीक्षितोसि ॥

卐卐

मानव को अपने द्वारा किए हुए पापकर्मों का फल अवश्य-मेव भोगना पडता है। यद्यपि मानव इस ससार मे रहते हुए स्वार्थ एव लोभ के वशीभूत होकर न जाने कैसे कैसे अनुचित कर्म कर डालता है। वह हँस हँस कर उन पाप कर्मों को करता जाता है। परन्तु जब वे ही पापकर्म उदयकाल आने पर उसके सीने पर बदला लेने के लिए चढेगे तो रो-रो कर भी बदला चुकाना पडेगा। जिस प्रकार कोई किसी श्रीमन्त व्यक्ति से कर्ज के रुप मे किसी भी तरकीब से रुपया निकलवा लाता है और उस पैसे को किसी भी रुप मे खर्च कर डालता है। परन्तु जब अवधि

समाप्त होने पर वही सेठ अपना रुपया व्याज सहित मागने आएगा तो उसे जैसे-तैसे भी चुकाना पड़ेगा। यदि वह ननूनच भी करता है, रोता-चिल्लाता है या आरजू मिन्नतें भी करता है तब भी उसे कर्ज अदा करना ही पड़ता है। ठीक इसी प्रकार से इस आत्मा को अपने बधे हुए कर्मो का फल अवश्य ही भोगना पडता है। एक तीर्थङ्कर जैसे महापुरुष को भी जब अपने द्वारा बाधे हुए कर्मों का फल भोगे विना छुटकारा नहीं तब एक पामर प्राणी तो अपने पापकर्मों का कर्जा चुकाए विना कैसे छूट सकता है। तो कहने का तात्पर्य यह है कि पापकर्मो का फल प्रत्येक आत्मा को भोगना ही पड़ता है। कर्ज चुकाए विना मुक्तावस्था भी प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते है कि ऐ मानव! पापकर्म करते हुए रुक जा। अन्यथा तुझे इसका दुष्परिणाम किसी भी जन्म में भोगना ही पड़ेगा। यदि तू पापकर्म से डरता रहेगा और शुभ कर्म मे प्रवृत्ति करेगा तो तेरी आत्मा हल्की होकर ऊपर की ओर उठती जाएगी और एक दिन सम्पूर्ण कर्ज से मुक्त होकर अजर अमर पद को प्राप्त कर लेगी।

भाई! उक्त भक्तामर स्तोत्र के सत्ताईसवें श्लोक मे शुभाशुभ कर्म फल से रहित भगवान ऋषभदेव की महामहिम गुण स्तुति करते हुए आचार्य श्री मानतुङ्ग कह रहे हैं कि हे मुनियों के ईश! यदि सम्पूर्ण गुणो ने सघनता से आपका भले प्रकार आश्रय ले लिया और दूसरे के लिए स्थान नहीं रहा तो ऐसी परिस्थिति मे अनेक देवों के यहा आश्रय पाए हुए दोषों ने घमड के साथ विचार किया कि हमको ऐसे एक जिनदेव की क्या परवाह है। हम ऐसे जिनदेव को स्वप्न प्रतिस्वप्नावस्था मे भी देखना

पमंड नहीं करते। यदि उन्होंने ऐसा दृढ विचार कर लिया तो इसमे कौनसा आश्चर्य हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं।

यहा आचार्य श्री के कहने का अभिप्राय यही है कि तीर्थङ्कर भगवान में ससार के समस्त गुणों ने इस प्रकार से ठसाठस निवास कर लिया कि फिर कुछ भी अवकाश शेप नहीं रहा। इसलिए दोपों ने यह सोचकर घमड से आपकी ओर कभी देखा तक नहीं। क्योंकि वे ससार के बहुत से देवों में आश्रय पाये हुए है तब उन्हें एक जिनदेव की क्या परवाह हो सकती है ? यदि तीर्थङ्कर भगवान मे उन्हे स्थान नहीं मिला तो कोई बात नहीं। साराश यह है कि भगवान मे केवल गुणों का ही समावेश है। दोषो का नाम भी नहीं है।

तीर्थङ्कर भगवान देवाधिदेव होते हैं। उनमे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल अनन्त चारित्र, क्षायिक सम्यक्त्व आदि-आदि अनेक गुण होते है। ये गुण उनमे चार घनघाति कर्मो के नष्ट हो जाने पर प्रगट हो जाते है। ऐसे भगवान ऋषभदेव को हमारा सर्व प्रथम नमस्कार है।

दुख विपाक-सूत्र

उन्हीं तीर्थंकर भगवान ने जगज्जीवों के कल्याण के लिए धर्मोपदेश दिया। वही तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररूपित धर्मोपदेश आज हमारे सामने बत्तीस सूत्रों के रुप मे विद्यमान है। उन्हीं सूत्रों में से मैं आपके समक्ष दुख विपाक सूत्र के सम्बन्ध में प्रकाश डालने जा रहा हूँ। आशा है आप लोग दत्तचित्त होकर श्रवण कर जीवन को सफल बनाएगे।

मैं कल आपके सामने सुना चुका हूं कि महाबल राजा के सामने आकर दंड सेनापति ने अर्ज किया कि महाराज ! वह अभगसेन चोर सेनापति इस प्रकार से नहीं पकडा जा सकता। क्योंकि वह ऐसे सुरक्षित स्थान पर रहता है जहा पहाड है, गुफाए हैं और छिप जाने के अनेक गुप्त रास्ते है। वह शाला अटवी चारों तरफ से घनी झाड़ियों से घिरी हुई है। अतएव ऐसे विकट मार्ग से होकर जाना भी जब खतरे से खाली नहीं है तब वहां जाकर उससे मुकाबला करना और उसे पकडना तो नितान्त मुश्किल है अतएव उसे बल के द्वारा नहीं परन्तु उसके दिल मे विश्वास जमाकर ही वश में किया जा सकता है। और उसके दिल में विश्वास जमाने के लिए उसके कुटुम्बियों, दास दासियों और उसके लिए वस्त्राभूषण भेजे जाय और मौके मौके पर उन्हें आमन्त्रित किए जाय। ऐसा करने से वह और उसके अन्य साथी आसानी से वश मे किए जा सकेगे। इससे खून खराबी होने से भी बच जायेगी और वह भी वश मे हो जायेगा।

महाबल राजा ने दण्ड सेनापति के उक्त प्रस्ताव को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि तुम्हारी इस योजना के अनुसार बिना रक्त-पात के हमे उद्देश्य मे सफलता मिल सकती है। परन्तु कोई न कोई निमित्त बनाना चाहिए जिससे उसको यहा बुलाया जा सके।

इस प्रकार सोच-विचार कर राजा ने नगर के बाहर एक लम्बा चौड़ा आलीशान महल बनवाया जिसमे बहुत से स्तम्भ भी लगवाए। जब वह महल बनकर तैयार हो गया तो राजा ने अपने कुटुम्बी पुरुषों को बुलाकर कहा कि तुम जाकर जगह-जगह

उद्घोषणा कर दो कि महाराज महाबल ने नगर के बाहर एक नया आलीशान महल बनवाया है जिसका दस दिन तक उद्-घाटनोत्सव मनाया जायेगा। अत एव सभी नर-नारिगण उक्त समारोह मे भाग लेने के लिए अवश्य शरीक हों। उक्त उत्सव मे सम्मिलित होने वालों के लिए दस दिन तक टैक्स भी माफ कर दिया गया है।

फिर राजा ने अपने कोटुम्बी पुरुष 'को आज्ञा दी कि तुम शाला अटवी चोर पल्ली मे जाकर अभङ्गसेन चोर सेनापति से भी मौका पाकर कहना कि महाराज ने नगर के बाहर नया भवन निर्माण कराया है और उद्घाटन के लिए दस दिन तक आमोद-प्रमोद मनाया जायगा। अतएव उसमें शरीक होने के लिए महाराज ने तुम सबको आमन्त्रित किया है। और तुमसे किसी प्रकार का टेक्स भी नहीं लिया जायेगा। चूंकि महाराज की खुशी मे सब की खुशी है अतएव उक्त महोत्सव मे सबको शरीक होना ही चाहिए। यदि आप कहें तो चार प्रकार का भोजन यहीं भिजवा दिया जाय अथवा आप ही स्वय वहा पधारकर उत्सव की शोभा बढावें। और ये भेटें आपके तथा आपके कुटुम्बी जनो के लिए भेजी है अतः इन्हें स्वीकार करते हुए आने की स्वीकृति फरमावें।

उक्त कोटुम्बी पुरुष के द्वारा आमन्त्रण को स्वीकार करते हुए अभङ्गसेन चोर सेनापति ने विचार किया कि महाराज दस दिन के लिए उद्घाटन महोत्सव मना रहे हैं और टैक्स भी माफ कर दिया है अतएव उक्त महोत्सव में शरीक होना हमारा फर्ज है। इस प्रकार विचार कर प्रत्यक्ष में उस कौटुम्बी पुरुष से

कहा कि तुम महाराज सा० से हमारी तरफ से कहना कि आपकी खुशी में हमारी भी खुशी है। हम उक्त उद्‌घाटन महोत्सव मे अवश्यमेव शरीक होने के लिए आयेगे। और अब चार प्रकार के भोजन तथा वस्त्र, गंध, अलङ्कारादि भिजवाने की आवश्यकता नहीं है।

वह कोटुम्बी पुरुष अभङ्गसेन सेनापति की स्वीकृति लेकर तथा उसके द्वारा सम्मानित होता हुआ नगर को लौट आया। उसने महाराज के पास आकर निवेदन किया कि महाराज ! मैंने अभङ्गसेन चोर सेनापति को महोत्सव मे शरीक होने के लिए रजामन्द कर लिया है। वह कुटुम्बियों के साथ दस दिन तक यहीं ठहरेगा और आमोद प्रमोद मे भाग लेगा।

इधर महाराज महाबल का आमन्त्रण स्वीकार करके अभङ्गसेन ने अपने सभी न्याती, गोती और अपने आश्रय में रहने वाले साथियों को सूचित करा दिया कि महाराज महाबल के यहा से उद्‌घाटन समारोह में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण आया है अतएव उक्त महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए सब अमुक दिन तैयार हो जाय। उक्त सूचना प्राप्त होते ही सभी लोग वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अभङ्गसेन सेनापति के साथ चलने को तैयार होगए।

अब वह चोर सेनापति अपने कुटुम्बियों, दास दासियों और साथियों के समूह मे शोभित होता हुआ अटवी से निकल कर निश्चित तिथि को पुरिमताल नगर के बाहर महोत्सव मंडप मे पहुँच गया। एक विशाल और सजे हुए सभा-मडप में महाराज

महाबल अपने सिंहासन पर विराजमान थे। अन्य आमन्त्रित लोग भी अपने अपने स्थान पर बैठे हुए सभा के कार्यक्रम को शांतिपूर्वक देख रहे थे। ज्योंही अभङ्गसेन चोर सेनापति ने अपने परिवार के साथ सभा मण्डप में प्रवेश किया त्योंही बैठे हुए लोगों में खलबली मच गई। भाई। जालिम व्यक्ति से किसे भयभीत नहीं होना पडता। वे सब लोग आपस मे कानाफूसी करने लगे कि आज यह अभङ्गसेन यहा किस मकसद से उपस्थित हुआ है ? परन्तु उन्होंने विचार किया कि महाराज ने उचित समझा होगा तभी तो यहा बुलाया है। इस प्रकार वे लोग तरह-तरह की आशकाएँ करने लगे। अब अभङ्गसेन चोर सेनापति ने राजा के सामने दोनों हाथ जोड़कर जय-जयकार किया और अभिवादन करने के पश्चात् उसने राजा के श्री चरणों मे अपने साथ लाई हुई बहुमूल्य भेट समर्पित करदी। राजा ने अभङ्गसेन चोर सेनापति की भेट को स्वीकार करते हुए उन सबको बहुमान के साथ स्थान पर बिठवाया।

भाई ! उक्त भेंट का रिवाज प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन समय मे जब कोई राजा, महाराजा दूसरे देश के राजा महाराजा के यहां निमन्त्रण पाकर किसी समारोह में शरीक होने के लिए जाते तो वे अपने साथ बहुमूल्य भेंटे अवश्य ले जाते थे। इस शिष्टता के नाते उनके आपसी प्रेमभाव मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती थी।

आज भी हम स्वतन्त्र युग में देखते है कि भारतवर्ष के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री या अन्य मन्त्रीगण रूस, चीन, अमेरिका, जापान, जर्मन या अन्य विदेशी सरकार के

निमन्त्रण स्वीकार कर भारत सरकार की ओर से विदेश यात्रा को जाते है तो वहा जाने पर ये लोग भारत की तरफ से भेंट देते हैं और आते समय वहा की सरकार की तरफ से भारत को भेंट स्वरुप कई चीजें दी जाती हैं। तो यह ऐतिहासिक रीति रिवाज ज्यों का त्यों चला आ रहा है। भाई! हमारे प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू जब रूस सरकार का निमन्त्रण पाकर वहां गए तो वे अपने साथ यहा के वढ़िया किस्म के आम भी ले गए थे। और वे ही आम जब उपहार स्वरुप प्रीति भोज में वहां के लोगों को खिलाए गए तो वे लोग वड़े प्रसन्न हुए। क्योंकि वहां आम पैदा नहीं होते। और जब नेहरूजी वहा से वापिस लौटने लगे तो वहां की सरकार की तरफ से भारत को कई उपहार दिए गए। भाई! यह तो वात वडे वड़े देश के कर्णधारों की है कि एक देश दूसरे देश को भेंट भेजता है और लेता भी है। परन्तु आप अपनी विरादरी मे देखेंगे तो यही वात वहां भी पायेंगे। आप जब किसी रिश्तेदार या प्रेमी सज्जन के निमन्त्रण को स्वीकार कर उसके यहां विवाह शादी या जन्ममहोत्सव में शरीक होने के लिए जाते हैं तो आप भी अपनी स्थिति के अनुसार भेंट स्वरुप वेशकीमती पौशाक या अन्य चीज लेकर जाते हैं। इसी तरह आपको भी प्रसग आने पर उनकी तरफ से भेंट दी जाती है। इस पर भी यदि कोई भेंट स्वीकार नहीं करता तो इससे यह समझा जाता है कि इनके दिल मे कोई खराबी पैदा हो गई है। तो मौके-मौके पर भेंट लेना या देना यह आम रिवाज होगया है।

हां, तो उस अभंगसेन चोर सेनापति ने भी महाराज की सेवा मे कीमती भेंट अर्पण की। महावल राजा ने भी उसका

तथा उसके कुटुम्बियों का यथोचित स्वागत सत्कार किया। इसके बाद जब सभा की कार्यवाही समाप्त हो गई तो महाराज ने अभगसेन चोर सेनापति तथा उसके सारे परिवार के सदस्यों को नवनिर्मित भव्य कूडागारशाला में ठहराया और उनके लिए सभी प्रकार के भोग-विलास के साधन जुटा दिए गए। वह अभगसेन अपने परिवार सहित खुश होता हुआ और महाराज के द्वारा किए गए आतिथ्य सत्कार की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए रहने लगा। महाराज ने अपने कौटुम्बी पुरुष को बुलाकर कहा कि कूडागारशाला में चारों प्रकार का सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन ले जाओ तथा अभगसेन और उसके कुटुम्बियों को मदिरा के साथ सेवन कराओ। उसे खुश करने में किसी प्रकार की भी कमी नहीं रहनी चाहिए।

महाराज की आज्ञा प्राप्त होते ही कौटुम्बी पुरुष अभंगसेन चोर सेनापति के स्थान पर चारों प्रकार के स्वादिष्ट भोजन तथा फल-फूल, गंध, वस्त्र और अलङ्कारादि लेकर गया और वहां सब प्रकार का इन्तजाम करके लौट आया। उसने महाराज की सेवा में निवेदन किया कि महाराज ! मैंने आपकी आज्ञानुसार उस कूडा-गारशाला में सब तरह की समुचित व्यवस्था कर दी है। तब महाराज ने उससे कहा कि देखो ! इसी प्रकार का दस दिन तक इन्तजाम रहना चाहिए। उस अभगसेन चोर सेनापति या उसके कुटुम्बियों के दिल में किसी प्रकार का अविश्वास उत्पन्न नहीं होना चाहिए। तब कोटुम्बी पुरुष ने महाराज के कथनानुसार दस ही दिन तक समुचित व्यवस्था कर दी। महाराज की तरफ से किए गए इन्तजाम को देखकर उसके हृदय में महाराज के प्रति पूर्ण रुप से विश्वास पैदा हो गया। अब वह निश्चिन्त रुप से

अपने सभी कुटुम्बियों के साथ स्नान करके तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर चार प्रकार के भोजन को प्रेमपूर्वक मदिरा के साथ सेवन करता हुआ आराम से रहने लगा।

इस प्रकार अभंगसेन चोर सेनापति तथा उसके कुटुम्बी जन दस दिन पर्यन्त बडे ही आनन्द के साथ उत्सव मे भाग लेते हुए विचरण करने लगे। जब उक्त महोत्सव के समाप्ति का दिन आया तो महाबल राजा ने अपने कोटुम्बी पुरुष को बुलाकर आज्ञा दी कि आज गुप्त रुप से पुरिमताल नगर के दरवाजे बन्द कर दो। और जब वह अभगसेन अपने कुटुम्बी-जनों के साथ चार प्रकार का आहार करके मदिरा के नशे मे बेभान हो रहे हों उस समय उसे तथा उसके कुटुम्बियों को बन्धन में बाधकर जीवित ही मेरे सामने लाकर हाजिर करो। देखो! यह कार्य बिलकुल सावधानी से होना चाहिए।

राजा की उक्त आज्ञा को शिरोधार्य करके कोटुम्बी पुरुष ने नगर के सारे दरवाजे गुप्त रूप से बन्द करवा दिए। नगर के लोगों को जब यह मालूम पडा तो वे सब इस प्रकार से दरवाजों को बद होते हुए देखकर आश्चर्य मे पड़ गए। वे आपस में विचार करने लगे कि आज महाराज ने अचानक ही बिना किसी सूचना के दरवाजे बन्द क्यों करवा दिए हैं? परन्तु फिर यह सोचकर वे सब चुपचाप हो गए महाराज का भेद महाराज ही जानते हे। हम लोगों को इस विषय मे हस्तक्षेप करने की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

इस प्रकार सारे शहर के दरवाजे बन्द कर दिए जाने के पश्चात् रात्रि में जब वह अभंगसेन अपने कुटुम्बियों और

साथियों के साथ भोजन करके मदिरा के नशे में बेहोश पडा था तब महाबल राजा के सेनापतियों ने अपने सिपाहियों के साथ वहां जाकर अचानक उन सब पर हमला कर दिया। और सबको महाराज की सेवा में लाकर खडा कर दिया। इतने ही में अभगसेन तथा उसके साथियों का नशा उतर गया और वे अपने-आपको इस परिस्थिति मे देख कर छटपटाने लगे और विश्वासघात के लिए महाराज को बुरा भला भी कहने लगे। परन्तु भाई ! जब शेर पिजरे मे वन्द कर दिया जाता है तो फिर उसकी गर्जना करने तथा हाथ पैर पछाड़ने का कोई असर नहीं होता। क्योंकि किसी ने ठीक ही कहा है कि.—पराधीन सपने सुख नाहीं"।

तो वे लोग भी अब परतन्त्र हो चुके थे। अत.एव उनकी सारी बोखलाहट व्यर्थ सावित हुई। वे बलिदान के बकरे दस दिन तक अच्छे अच्छे पदार्थ खिला-पिलाकर वलिवेदी पर चढने के लिए तैयार कर लिए गए। इस प्रकार अभगसेन चोर सेनापति सहित सभी साथियों को कैदखाने मे बन्द करवा दिए गए।

तो श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी अपने पट्टधर शिष्य भगवान गौतम स्वामी से फर्मा रहे हैं कि हे गौतम ! तू जिस पुरुष को दयनीय दशा में देखकर आया है वह यही अभगसेन चोर सेनापति है जिसने अनेक निरपराध व्यक्तियों को सताया, दु:ख दिया, धन लूटा और प्राणों से विसर्जन किया था। उसके पाप कर्म इस प्रकार उदय मे आए और उसे उसके कुटुम्बियों तथा साथियों के साथ नृशसता पूर्वक मरवा दिया गया। देखो ! इसी अभगसेन ने अपने पूर्व जन्म के अडवाणिया के भव में

तरह-तरह के असंख्यात अण्डों और मछलियों को अपने नौकरों द्वारा मगवाकर तल-भूंज कर वैंचने का कार्य किया था। उस पाप कर्म के उदय से उसे विजयसेन चोर सेनापति के यहां पुत्र रूप मे जन्म लेना पड़ा और समय आने पर इस प्रकार उस पाप कर्म का फल भोगना पड़ा।

भाई! पाप कर्म कहां तक छिपे हुए रह सकते हैं। वे तो एक दिन अवश्यमेव प्रकट रूप मे आकर ज्वालामुखी की तरह विस्फोट कर ही देते हैं। जब ये पाप कर्म उदय में आते हैं तो इन्हें रो रो कर भी भोगना पड़ता है। किसी कवि ने भी ठीक ही कहा है कि:—

पाप छिपाए ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग॥

और भी आगे दूसरे शब्दों में कहा है कि:—

जब तक तेरे पुण्य का पहुँचे नहीं करार।
तब तक तुझ को माफ है, अवगुण करे हजार॥

परन्तु इसके बाद क्या होगा?

पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझे वन की लाकड़ी, प्रजले आपो आप॥

अर्थात्-जब तक पुण्य का स्रोत बहता रहता है तब तक कोई व्यक्ति दूसरों पर कितना ही जुल्म करता रहे, अन्याय-

अत्याचार करता रहे, हिंसा, झूठ, चोरी और दुराचार का सेवन करता रहे परन्तु फिर भी वह खुशी के झूले मे झूलता रहता है। वह अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म का मीठा फल चखता रहता है। और उसे किसी प्रकार का कष्ट सहन नहीं करना पडता। परन्तु जब वही पुण्य कर्म का स्रोत सूख जाता है और पाप कर्म का स्रोत उमड पड़ता है तो वे दबे हुए पाप फूट पड़ते हैं और वह पाप कर्म का विस्फोट उसे जड़ मूल से समाप्त कर देता है। जैसे जगल मे बास वृक्षों का समूह होता है और जब जोरदार हवा चलती है तो वे आपस मे ही रगड़ खाते हैं। इस प्रकार रगड़ खाकर उनमें अग्नि प्रगट हो जाती है। और वे अपने-आप जलकर समाप्त हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार ये पाप कर्म भी उदय मे आने पर अपने आप विस्फोटित होकर मनुष्य को कडवे फल चखाकर उसे समाप्त कर देते हैं। फिर उनसे छुडाने वाला उसे इस जगतीतल पर कोई सहायक रूप मे नहीं मिलता।

यहां कोई इस विषय मे प्रश्न कर सकता है कि महाराज! हम ससार में देखते और सुनते हैं कि जो व्यक्ति महान अधर्मी पापी, अत्याचारी, दुराचारी, चोर, डाकू या लुटेरा है परन्तु फिर भी वह सब प्रकार से सुखी और साधन सपन्न है। हम उसे आराम की जिंदगी बसर करते हुए देखते हैं। परन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति धर्मात्मा, सदाचारी, ईमानदार और न्यायोपार्जित कमाई से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला है दयनीय दशा में जीवन गुजार रहा है। वह सब प्रकार से साधन हीन नजर आता है। तो यह विचित्र प्रकार की दशा ससार में क्यों दृष्टिगोचर होती है? तो इसके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि जो पापी मनुष्य आज हमें सब प्रकार से सुखी

नज़र आ रहा है वह अभी अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म का फल भोग रहा है। और जो धर्मात्मा होने के बावजूद भी दो रोटियों के लिए मोहताज है वह वर्तमान में अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म का फल भोग रहा है। परन्तु अतमें अपने पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मों के फल भोग लेने के पश्चात् दूध का दूध और पानी का पानी वाला न्याय सामने आ जायेगा। अर्थात्—आज का दुखी धर्मात्मा कल अपने पुण्यकर्म का सुख रूप मे फल पाएगा और आज का सुखी दुरात्मा कल इसी विश्व के रग-मच पर एक दुखी दर्दी के पार्ट को अदा करता हुआ दिखाई देगा। तो यह निश्चित सिद्धात है कि प्रत्येक आत्मा को अपने पुण्य और पापकर्म का फल अवश्यमेव भोगना ही पड़ता है। दोनों का ही फल भोगे बिना छुटकारा मिलने वाला नहीं है। हां ! जब दोनों ही पुण्य और पाप सम्पूर्णतः नष्ट हो जायेंगे तो यही आत्मा कर्म रहित होकर मुक्तावस्था मे तब्दील हो जायेगी।

इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि भाई ! पापकर्मों का उपार्जन मत करो। यदि इस जन्म मे पाप कमाओगे तो अगले जन्म मे धार्मिक जीवन बिताने पर भी पहिले पापकर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। और जो पूर्व जन्म मे पुण्यकर्म करके आया है परन्तु इस जन्म मे वह पापकर्मो का उपार्जन कर रहा है तो उसे भी पुण्यफल भोगने के पश्चात् उसी प्रकार दुख उठाना पड़ेगा जैसे कि पू० खूबचन्दजी म० ने अपनी कविता मे एक व्यक्ति की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि:—

सेर की हांडी मे मूढ़, दो सेर घालन लागो,
ज्ञानी देख कहे भाई ! एतो न समाएगो।

दो दिन को प्यासो भूखो, नीठ कर मिली तोकूं,
भूख तो घणी छे ऐती, खीचडी न खायगो ॥
मूरख न मानी साच, लगाई अगन आच,
ढ़क्कन न ढ़क्यो छे पण, पीछे पछताएगो ॥
'खूबचन्द' कहे अणी दृष्टान्त सुजान नर,
पाप को तो घड़ो, कोई दिन फूट जायगो ॥

भाई ! स्व० पूज्य खुबचन्दजी म० उक्त दृष्टान्त देकर संसार के जीवों को प्रतिबोध दे रहे हैं कि देखो ! एक गरीब आदमी था। वह दो दिन से भूख और प्यास के मारे व्याकुल हो रहा था। उसमे चलने-फिरने की शक्ति भी नहीं रही। उसकी इस प्रकार की दयनीय दशा देख कर किसी दयालु व्यक्ति को उस पर दया आगई। उसने उसे सवा सेर चांवल और तीन पाव दाल देकर कहा भाई ! तुम इसकी खिचडी बनाकर स्वय भी खा लेना और अपने बच्चों को भी खिला देना। वह गरीब व्यक्ति उस दयालु व्यक्ति को धन्यवाद देता हुआ अपने घर आ गया। अब उसने खिचडी बनाने का विचार किया। परन्तु खिचडी बनाने के लिए उसने केवल एक सेर का ही पात्र लिया और उसमें दाल-चावल डालकर उसे चूल्हे पर चढा दिया। परन्तु उस मूर्ख ने यह विचार नहीं किया कि मैं जिस पात्र में दो सेर खिचड़ी पका रहा हूॅ उसमें उक्त खिचड़ी समा भी जायगी अथवा नहीं। चूंकि उसने नियम के विरुद्ध आचरण किया अतएव खिचड़ी खदबद करती हुई उफन कर बाहर निकलने लगी। यह हालत देखकर वह मूर्ख सोचने लगा कि हाय ! किसी दातार ने तो मुझ पर दया लाकर दाल-चांवल दिए परन्तु मैंने

सोच विचार कर कार्य नहीं किया। और उसी के परिणाम-स्वरूप सेर के पात्र में दो सेर खिचड़ी नहीं समाने के कारण बाहर निकली जा रही है। अब वह अपने किए पर बहुत पछताने लगा परन्तु अब पछताने से क्या होने वाला था।

तो उक्त दृष्टान्त को सुनकर मनुष्य को शिक्षा लेनी चाहिए जिस प्रकार सेर भर पात्र में दो सेर खिचडी नहीं समा सकने के कारण बाहर उफन कर आ गई उसी प्रकार जो मनुष्य पूर्व जन्म में भले ही पुण्य कर्म उपार्जन करके आया है परन्तु इस जन्म मे पाप कर्म कर रहा है तो पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म का फल भोग लेने के पश्चात् जब पाप कर्म फल भोगने का समय आएगा तो उस समय पुण्य रूपी बरतन तो छोटा हो जाएगा और पाप रूपी खिचडी उफन कर बाहर आने लगेगी। इस प्रकार उन पाप कर्मों के फल को भोगते हुए इस आत्मा को अपने किए पर पछताना पडेगा। तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि पाप कर्मों से अपने जीवन को बचाते रहे ताकि भविष्य में पछताना नहीं पड़े।

तो भगवान महावीर स्वामी अपने शिष्य गौतम स्वामी से कह रहे हैं कि यह अभगसेन अपने किए हुए पाप कर्मों का इस प्रकार फल भोग रहा है। भगवान महावीर के मुखारविन्द मे उक्त प्रश्न का समाधान हो जाने पर भगवान गौतम स्वामी को पुनः जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होंने पूछा कि हे भगवान्! यह अभगसेन चोर सेनापति यहा से काल धर्म को प्राप्त होकर भविष्य में कहां उत्पन्न होगा?

भगवान गौतम स्वामी के मुह से उक्त प्रश्न को सुनकर

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फर्माया कि हे गौतम! यह अभगसेन यहां से सत्ताईस वर्ष का उत्कृष्ट आयुष्य भोगकर और यथा समय काल करके पहली नरक मे जाकर उत्पन्न होगा। फिर प्रथम नरक की स्थिति भोगकर यह वहा से निकल कर पशु बनेगा। इसके बाद पशुयोनि के आयुष्य को पूर्ण करके यह पाचवीं नरक मे दुख भोगने के लिए जायेगा। वहा के नारकीय दुखों को भोग लेने के पश्चात् इसकी आत्मा मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति काय की योनियों में अनन्त काल तक दुख भोगती हुई परिभ्रमण करती रहेगी। उक्त योनियों मे अनन्तकाल तक दुख भोग लेने के बाद इसकी आत्मा बनारसी शहर में सुअर रुप में उत्पन्न होगी। और वहा इसकी मृत्यु सुअर पालने वाले कसाई के हाथ से हो जायेगी। फिर यह वहा से मृत्यु को प्राप्त कर बनारसी नगर में एक सेठ के यहा पुत्र रूप में उत्पन्न होगा। चूंकि अब इसके पाप क्षीण होकर पुण्य का उदय हो जायेगा अतएव वहा जन्म लेने पर इसके पालन-पोषण के लिए पाच धाऐं रखी जायेगी और उनके सरक्षण में यह वृद्धि को प्राप्त करता जायेगा। जब यह शैशवकाल को पूर्ण करके कुमारावस्था को प्राप्त करेगा तो कलाचार्य के पास विद्या प्राप्त करने के लिए भेजा जाएगा। वहा रहते हुए यह बहोत्तर कलाओं में प्रवीण हो जायेगा। युवावस्था को प्राप्त कर लेने पर इसका सुन्दर-सुशील और चौंसठ कलाओं में प्रवीण कन्या के साथ लग्न होगा। इस प्रकार यह मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करेगा। फिर इसे किसी समय तथागत मुनिराजों के दर्शन करने तथा वाणी-श्रवण करने का परम सौभाग्य प्राप्त होगा। उनकी वाणी सुनकर इसे परम वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा

और यह साधु बन जायेगा। साधु अवस्था में रहते हुए यह उच्च करनी करेगा और अन्त समय में समाधि मरण करके प्रथम देवलोक में जाकर देवपणे उत्पन्न होगा।

प्रथम देवलोक के सुख भोगकर और यथा समय वहां से च्यव कर यह फिर मनुष्य रूप में उत्पन्न होगा। यहां भी यह सुख भोगेगा और साधुओं का योग मिलने पर साधु बन जायेगा। उक्त अवस्था में भी उच्च करनी करके यह समाधि मरण के साथ दूसरे देवलोक में जाकर उत्पन्न होगा। इसी प्रकार वहां से च्यव-कर यह पुनः मनुष्य योनि मे उत्पन्न होगा। मनुष्य जन्म को सार्थक कर यह फिर तीसरे देवलोक में जाकर उत्पन्न होगा। इस प्रकार से मनुष्य और देवगति मे उत्पन्न होते हुए यह अतमें सर्वार्थ सिद्ध विमान मे जाकर एक साधन सम्पन्न घर में पुत्र रुप मे उत्पन्न होगा। इसके जन्म से पहिले उसके माता-पिता जो धर्म करनी करने में शिथिल हो रहे थे वे धर्म में दृढ़ हो जायेंगे। अतएव इसका नाम वहां दृढ़पइण्णा रखा जायेगा। यह बाल्या-वस्था को पार कर जब युवावस्था को प्राप्त करेगा तब इसे तथागत मुनिराजों के दर्शन एवं वाणी श्रवण करने का योग मिलेगा। उनकी वाणी श्रवण कर इसे संसार से विरक्ति हो जायगी और यह मुनिधर्म को धारण कर लेगा। साधु अवस्था धारण कर यह ऐसी उत्कृष्ट करनी करेगा कि उसी जन्म मे समस्त कर्मों को काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

इस प्रकार भगवान आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जबू स्वामी को दुख विपाक-सूत्र का तीसरा अध्ययन कह सुनाया।

उक्त अध्ययन को सुनकर आप भाई-बहिनों को इससे यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि यदि हम भी पाप कर्म करके खुश होंगे तो हमे भी अभगसेन चोर सेनापति की तरह अनन्त जन्म-मरण करते हुए अनेक योनियों में लम्बे समय तक दुःख भोगते हुए विचरण करना पड़ेगा। और जिस प्रकार उसे धर्म कार्य करने से अंत में मोक्ष प्राप्त हुआ उसी प्रकार यदि हम भी शुभ करनी करेंगे तो हम भी निर्वाण पद की प्राप्ति कर लेंगे। इसलिए हमको पाप कर्म करने से डरते रहना चाहिए और धर्म करनी करते हुए अपनी आत्मा को शुद्ध एवं पवित्र बना लेना चाहिए ताकि भविष्य में सुख उठाते हुए मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

यह निश्चित सिद्धान्त है कि मनुष्य पाप कर्म से तभी बाज आता है जबकि वह पाप कर्म के कड़वे फल भोग लेता है। जब वह भुक्त-भोगी बन जाता है तब उसे अनुभव हो जाता है कि मुझे पाप कर्म करने से दुख उठाना पड़ेगा और शुभ कर्म से अमर सुख की प्राप्ति होगी। इसलिए दूसरे के जीवन वृतान्त को सुनकर अपने जीवन में से व्याप्त बुराइयों को हटाकर आत्मा के निज गुणों को धारण करना चाहिए। ऐसा करने से आत्मा हल्की होकर ऊपर उठती जायेगी और एक दिन मोक्ष की अधिकारिणी बन जायेगी।

अचम्भे का बच्चा

उपस्थित सज्जनों ! आज मैं आपके समक्ष कुछ समय के लिए एक नये चरित्र को सुनाने जारहा हूँ जिसे शायद आप लोगों ने आज तक नहीं सुना होगा। उस चरित्र का नाम है "अचम्भे का बच्चा"। उक्त चरित्र के विषय मे सुनकर आपको ज्ञात होगा कि जब तक किसी मनुष्य के ऊपर बीतती नहीं है तब तक वह अपनी बुराइयो को छोडने को आमादा नहीं होता। परन्तु जब उसे अपने दुष्कर्मो की भली प्रकार सजा मिल जाती है तब वह सहज भाव मे उस पाप कर्म से मुक्त हो जाता है। तो उक्त चरित्र मे भी आपको यह जानने को मिलेगा कि किस प्रकार से एक आदमी कुशील के रास्ते पर जाने से पददलित हो जाता है और किस प्रकार वही व्यक्ति जब एक सती, शीलवती स्त्री के द्वारा अपने दुष्कर्मों की सजा भोग लेता है तो हैवान से इन्सान और राक्षस से देवता बन जाता है ?

भाई ! उक्त चरित्र को प्रारम्भ करने से पूर्व चरित्र निर्माता अपनी निर्विघ्नता के लिए अपने इष्टदेव को याद करते हुए कहता है कि:—

प्रथम नमूं गुरुदेव को, गुरू ज्ञान दातार।
गुरु चिंतामणि सारखा आपे सुख श्री कार ॥ १ ॥
शील वरत मोटो वरत, भाख्यो गुरू दयाल।
सब गुण की रक्षा करे, ज्यूं सरवर जल पाल ॥ २ ॥

तो उक्त चरित्र की रचना प्रारम्भ करने से पहिले कवि अपने इष्टदेव को मनाता है ताकि उसके द्वारा रचित चरित्र निर्वि-घ्नता पूर्वक सपूर्ण हो जाय। भाई! जिस प्रकार से विवाह कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व गणेशजी की स्थापना विवाह कार्य निर्विघ्नता-पूर्वक समाप्ति उद्देश्य से की जाती है उसी प्रकार कवि भी चरित्र का निर्माण करने से पहिले अपने इष्टदेव को नमस्कार करते हुए कहता है कि हे गुरुदेव! मैं आपको ही सर्वप्रथम नमस्कार करता हूँ। क्योंकि आप श्री के चरणकमलों में आश्रय पाते हुए मैंने ज्ञान उपार्जन किया है। आप ही मेरे ज्ञान-दान के दाता हैं।

भाई! संसारी जीवों के लिए ज्ञानी पुरुषों ने चार प्रकार के दान का निरूपण किया है। उन चार प्रकार के दानों में प्रथम अन्नदान, दूसरा औषधि दान, तीसरा अभयदान और चौथा ज्ञान-दान बताया है। इन चारों प्रकार के दान देने वालों को पुण्य का उपार्जन होता है क्योंकि किसी भी जरुरतमन्द को समय पर भोजन, औषधि, अभय और ज्ञान दान देने से उसकी आत्मा में परम सुख, शान्ति और सतोष की प्राप्ति होती है। और किसी भी आत्मा को सुख-शान्ति पहुँचाना पुण्य का काम है।

तो किसी भी भूख से व्याकुल मनुष्य को भोजन दे देना भोजन दान कहलाता है। जब वह क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति भोजन प्राप्त कर लेता है तो उसकी आत्मा में नव चेतना प्रस्फुटित हो जाती है। वह अपने अन्त.करण से उस दातार के प्रति सद्-भावना प्रकट करते हुए आशीर्वाद देता है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति रुग्णावस्था मे रहते हुए अपार वेदना का अनुभव कर रहा हो और उसे यदि उस परिस्थिति में

कोई दयालु व्यक्ति औषधि-दान देकर निरोग बना देता है और उस कष्ट से मुक्त करा देता है तो उसे भी आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। वह भी तह दिल से अपने उपकारी के प्रति शुक्रगुजार होता है। तो इस प्रकार से किसी बीमार को औषधि का दान देना औषधि-दान कहलाता है।

तीसरा अभय दान बतलाया है। अर्थात् किसी भी मरते हुए प्राणी की रक्षा करना, पुनः जीवन-दान देना अभयदान कहलाता है। पुनरुज्जीवन मिल जाने से भी प्राणी को आत्मिक शांति प्राप्त होती है। अतएव इससे भी पुण्य का बंध होता है।

और चौथा दान है ज्ञान-दान। अर्थात् जो भी बालक, युवक या प्रौढ़ व्यक्ति देश जाति या समाज में अशिक्षित हैं; जो शिक्षा के साधन उपलब्ध नहीं होने के कारण निरक्षर, मूर्ख रह जाते हैं; उन्हें यथायोग्य सामग्री प्रदान करके ज्ञानवान बना देना ही ज्ञान-दान कहलाता है। इससे भी पुण्य का उपार्जन होता है क्योंकि वे व्यक्ति ज्ञानवान बनकर अपने तथा दूसरों के जीवन को भी पवित्र बना सकेंगे। वे भी स्वयं दुराचरणों से बच जायेंगे और दूसरों को भी कल्याण का मार्ग दिखा सकेंगे।

तो उक्त चार प्रकार के ज्ञानी पुरुषों ने ज्ञान-दान बताए हैं। परन्तु उक्त चरित्र में अपने गुरुदेव को नमस्कार करते हुए कवि महोदय ने ज्ञान दान को श्रेष्ठ बताया है। क्योंकि गुरुदेव ही सच्चे ज्ञान के दाता है। वैसे तो इस जीवन मे जहां-जहां जिस-जिस दान की आवश्यकता हो वहां उक्त चारों प्रकार के दानों में किसी भी दान को दिया जा सकता है जैसे अभी-अभी कुछ

दिनों पहिले काश्मीर, कच्छ और बिहार आदि प्रान्तों में रेले अर्थात् बाढ़ें आ जाने से लाखों-करोड़ों रुपयों का नुकसान हुआ और हजारों आदमी वे घर बार हो गए। उस समय उन भूख से मरते हुए प्राणियों को बचाने के लिए जो आपने उदारता पूर्वक दान दिया वह भी आवश्यक था। और यथा शक्ति दान देकर आप पुण्य के भागी बनें हैं। परन्तु बाद मे उन्हें ज्ञान सिखाया और अपनी आजीविका प्राप्त करने के योग्य बना देना यह ज्ञान दान है। और इस ज्ञान दान को ज्ञानियों ने श्रेष्ठ दान माना है। यदि आप अशिक्षित है परन्तु धनवान हैं तो आप अपने धन के द्वारा उन असमर्थ व्यक्तियों को पुस्तकों, स्कूल फीस, स्कालरशिप, और खाने-पीने, रहने वगैरह के साधन जुटा कर पुण्य लाभ ले सकते हैं। इस प्रकार से आप उन विद्यार्थियों के जीवन बना देते हैं। तो ज्ञान दान देना ही अपने आपको भविष्य में ज्ञानी बनने का एक मात्र सरल उपाय है।

तो यहां कवि महोदय भी अपने गुरुदेव को नमस्कार करते हुए कह रहे हैं कि गुरुजी मुझे ज्ञान-दान देने वाले हैं और वे ही मेरे लिए चितामणि रत्न के समान हैं। वैसे तो गुरु के लिए चार विशेषण दिये जाते हैं। अर्थात् गुरुजी कल्पवृक्ष, काम-धेनु, कामकुभ और चिंतामणि के समान होते हैं। परन्तु यहां इन चारों में से गुरु को चिंतामणि की उपमा से उपमित किया गया है। कारण यह है कि उक्त तीन उपमा वाले पदार्थों से तो कोई वस्तु मागने पर प्राप्त होती है परन्तु चिंतामणि से कोई वस्तु मांगने की भी आवश्यकता नहीं रहती। उससे तो इच्छा करते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाती है। तो जिसको सहज मात्र

में ज्ञान रूपी चिंतामणि प्राप्त हो गई उसे फिर चिंता का क्या काम है। उस चिंतामणि के प्रभाव से उसकी सारी चिंताएं नष्ट हो जाती हैं। तो कवि भी कह रहे हैं कि गुरुजी ने मुझे ऐसा सद्ज्ञान दिया है कि मानो मेरे हाथ में चिंतामणि ही आ गया है। इसे प्राप्त करके मैं अक्षय सुख को प्राप्त कर सकता हूँ। और उन्हीं पंच महाव्रत धारी गुरुदेव ने असीम कृपा करके मुझे भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी पंच महाव्रत प्रदान कर दिये हैं। इन पंचामृतों को पीकर मैं भी अमर बन सकता हूं।

भाई ! उक्त पंचमहाव्रतों में से जैन धर्म ने सत्य महाव्रत को विशेष महत्व दिया है। और श्रीमद् व्यवहार-सूत्र में तो यहां तक शास्त्रकारों ने बताया है कि श्रमण संघ में उसी ज्ञानवान साधु को आचार्य पदवी से विभूषित किया जा सकता है जिसने जीवन मे सत्य महाव्रत को पूर्ण रूप से पालन किया हो। यदि कोई साधु जीवन में तीन वार भी असत्य भाषण कर चुका हो तो उसे आचार्य पदवी से अलंकृत नहीं किया जा सकता। क्योंकि असत्य भाषण करने वाला आचार्य पदवी को नहीं निभा सकता। इसलिए जीवन में सत्य महाव्रत का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

परन्तु उक्त चरित्र का निर्माण ब्रह्मचर्य व्रत रूपी भित्ती पर किया गया है अतएव यहां ब्रह्मचर्य अर्थात् शीलधर्म को श्रेष्ठ माना है। क्योंकि यह ब्रह्मचर्य व्रत सभी व्रतों की रक्षा करने वाला है। यदि किसी साधक के जीवन में ब्रह्मचर्य की प्रधानता नहीं है तो उसके बाकी के चार महाव्रत भी कमजोर पड़ जाते

हैं। वह अपनी साधना में कभी भी कामयाब नहीं हो सकता। अतएव प्रत्येक साधक को अपने साधना रूपी सरोवर को मजबूत बनाए रखने के लिए ब्रह्मचर्य रूपी पाल को मजबूती से बांधना चाहिए। जैसे सरकार बडे बडे सरोवरों या बांधों का निर्माण करती है जल को एकत्रित करने के लिए तो वह सबसे पहले उस बांध के चारों तरफ पत्थर, सीमेन्ट, चूना और शीशे की मजबूत दीवार बनवाती है। उक्त मजबूत पाल तैयार होजाने के बाद ही पहाड़ या नदी से आने वाले पानी को उस सरोवर मे जमा किया जा सकता है। यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो उससे एक दिन गांवों के बह जाने की सम्भावना रहती है। अतएव सबके जान-माल की हिफाजत के लिए और पानी को कई वर्ष तक जमा रखने के लिए मजबूत पाल का होना आवश्यक है। इसी प्रकार देशविरति और सर्वविरति रूपी बांध का निर्माण करने से पहिले ब्रह्मचर्य रूपी पाल का मजबूती से बांधा जाना जरूरी है। इसलिए इसकी मजबूती के लिए एकदेश अथवा सर्वदेश से कुशील का त्याग किया जाता है। भाई! पांचों इन्द्रियों को सम्पूर्ण रूप से कब्जे में रखकर जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता है उसे सर्वविरति रूप धर्म कहा जाता है। और इस प्रकार का नियम साधु-साध्वियों के लिए बताया गया है। परन्तु जो साधक सर्वविरति धर्म का पालन करने मे असमर्थ है तो उसके लिए तीर्थङ्कर भगवान के देशविरति रूप धर्म का निर्देश कर दिया है। अर्थात् वह साधक केवल अपनी परिणीता स्त्री में सन्तोष रखते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकता है। तो उक्त दोनों ही रास्तों पर चलते हुए साधक अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है। उक्त प्रकार से इस ब्रह्मचर्य

व्रत का पालन करते हुए दोनों ही प्रकार के साधकों की इज्जत बनी रहती है। परन्तु जो साधक इन दोनों नियमों के विपरीत आचरण करने लगता है वह इस संसार मे भी अपयश का भागी बन जाता है और परलोक में भी उसे दुख उठाना पड़ता है। तो जिस प्रकार उस पाल के टूट जाने पर सैंकड़ों गांव बह जाते हैं, हजारों जानें चली जाती हैं और लाखों का नुकसान उठाना पडता है—ठीक इसी प्रकार इस ब्रह्मचर्य रूपी पाल के टूट जाने पर वह साधक तो अपने जीवन को नष्ट कर ही लेता है परन्तु उसके द्वारा सैंकडों व्यक्तियों के जीवन पथ भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव शास्त्रकार कहते हैं कि हे साधक! यदि तूने अपने ब्रह्मचर्य की शुद्धता और सतर्कता से रक्षा करली तो तेरे बाकी के सभी व्रतों की यथाविधि रक्षा हो जायगी।

हां, तो मैं कह रहा था कि इस चरित्र का निर्माण भी शील की भित्ती पर किया गया है। आपको उक्त चरित्र मे शील और कुशील के विषय मे यह दिग्दर्शन कराया जायेगा कि जो अपने शीलधर्म पर पूर्णरूप से अडिग रहता है उसकी संसार में किस प्रकार इज्जत बढती है और जो व्यक्ति कुशील के रास्ते पर जाता है उसका किस प्रकार और कहा तक अधःपतन होता है।

तो कवि महोदय उक्त चरित्र का प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र मे किसी समय श्रीपुर नाम का एक नगर था। उस नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। वह आनन्द पूर्वक प्रजा पर शासन करता हुआ समय व्यतीत कर रहा था। उसमे एक राजा के अनुकूल सभी सद्गुण विद्यमान थे। इसलिए उसकी दूर दूर तक प्रतिष्ठा फैली हुई थी। वह एक

न्यायी राजा था। क्योंकि जो राजा न्यायशील होता है उसकी प्रशंसा प्रजा भी किए बिना नहीं रहती। वह राजा नेक चाल-चलन वाला था। अपनी प्रजा की बहु-बेटियों को माता तथा पुत्री की दृष्टि से देखता था। इसलिए भी प्रजा उसकी प्रशसा करती थी। यदि कोई राजा दुराचारी होता है तो पीठ पीछे प्रजा भी उसकी बुराई करती है। तो वह जितशत्रु राजा अपने अभी तक के जीवन मे सब प्रकार से निष्कलक था। चारों तरफ लोगों के मुंह से यही निकलता था कि श्रीपुर का राजा बड़ा ही नेकनीयत से जीवन व्यतीत कर रहा है।

भाई! जो राजा न्याय प्रिय और सदाचारी होता है उसकी शोहरत चारों तरफ फैल जाती है। मुझे एक घटना उदय-पुर के महाराणा शंभूसिहजी के जीवन की याद आ रही है। घटना इस प्रकार से घटी कि वे एक समय उदयपुर में राज्य कर रहे थे। उनका काफी लबा चौड़ा राज्य था। इतने बड़े राज्य का सचालन करने के लिए बड़े-बड़े महकमें खुले हुए थे। इस प्रकार की सुन्दर व्यवस्था होने पर भी वे स्वय इस विषय में सतर्कता से काम लेते थे। वे अपने हृदय में समझते थे कि एक राजा का दर्जा अपनी प्रजा के लिए मा बाप के समान होता है। यदि एक बाप होकर भी अपने पुत्र-पुत्रियों के सुख दुख की व्यवस्था का ध्यान नहीं रखता है तो वह वास्तव मे पिता कहलाने का अधि-कारी नहीं है। इसी प्रकार यदि एक राजा अपने कर्तव्य से पद-च्युत हो जाता है तो वह भी सच्चे मायने में राजा कहलाने का अधिकारी नहीं है। परन्तु महाराणा शभूसिंहजी ने इस सिद्धान्त को अपने जीवन में अच्छी तरह उतार लिया था। वे अपनी प्रजा के सुख-दुख का विशेष रूप से ध्यान रखते थे। उन्होंने अपने

महल के बाहर एक घडियाल लगवा दी थी। जब किसी व्यक्ति को महाराणा को कोई फरियाद करनी होती तो वह उक्त घड़ियाल को निस्संकोचभाव से बजा देता था। उस घड़ियाल की आवाज को सुनते ही महाराणा अपने आवश्यक कार्य को भी बालाएताक रखकर सबसे पहिले उस फरियादी की शिकायत सुनते और यथाशक्य उसके दुख को मिटाने की कोशिश करते थे।

एक समय की बात है कि महलों में पानी भरने वाला एक भिश्ती अपने बैल पर पानी से भरी हुई मशक महल में ले जा रहा था। वह ज्यों ही ड्योढी में से गुजरने लगा तो वहा के पहरेदार ने उसे बातों में रोक लिया। वह बैल को दरवाजे के बीच में खड़ा करके उक्त पहरेदार से बातें करने मे मशगूल हो गया। इतने ही में उस बैल ने मक्खियां काटने से अपना सिर हिलाया। ज्योंही उसने सिर हिलाया तो उसके सींग ऊपर लटकी हुई घटियाल के ऊपर जा लगी। उन सींगों के लगते ही वह घड़ियाल बज उठी। जब उस घडियाल की आवाज महाराणा के कानों तक पहुँची तो वे अपने आवश्यक कार्य को छोडकर फोरन वहा आए और नीचे की ओर झांककर पूछने लगे कि कौन फरियादी पुकार कर रहा है? महाराणा की आवाज सुनते ही वह भिश्ती और पहरेदार दोनों ही भयभीत होकर दबती हुई आवाज से कहने लगे कि अन्नदाता! यहां फरियादी तो कोई नहीं है। यह घड़ियाल तो दरवाजे में खड़े हुए बैल के द्वारा सींग ऊपर करने से बज उठी है। कृपया आप क्षमा करें। यह सुनते ही महाराणा ने कहा कि देखो! फरियाद करने वाला यह बैल है। इसने आज तक घडियाल बजाकर मुझे आह्वाहन नहीं

किया। परन्तु आज इसने फरियाद करने के लिए ही घड़ियाल बजाई है। अब मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इसकी तकलीफ को मिटाऊँ। और इसकी फरीयाद यही है कि इसकी पीठ पर अधिक पानी लादा जाता है। अतएव आज से इसकी पीठ पर डेढ़ मन से अधिक पानी न लादा जाये। तो कहने का यही आशय है कि जो राजा परमदयालु और न्यायप्रिय होते हैं वे एक बेजबान बैल पर भी महरबान होकर उसे भी आराम पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं।

तो वह जितशत्रु राजा भी अपनी न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। उसकी घर घर मे तारीफ हो रही थी। उस राजा के सुबुद्धि नाम का महामन्त्री था। वह भी यथा नाम तथा गुणवाला था। उसमे निर्लोभता थी और इस कारण वह किसी भी मुकदमे का फैसला "दूध का दूध और पानी का पानी" जैसा कर डालता था। परन्तु जो हाकिम लोभी होता है उससे न्याय होना कठिन हो जाता है। उसका फैसला तो उसी के हक में ठीक होता है जो कि उसे यथोचित रूप से रिश्वत देकर उसे अपने कब्जे में कर लेता है। तो इसी विषय के अन्तर्गत आपने एक दृष्टान्त कई दफ़ा सुन भी लिया होगा परन्तु प्रसगवशात् उसे पुनः दोहरा देना उपयुक्त समझता हूँ।

भाई! किसी गांव मे एक किसान रहता था। उसका शहर में रहने वाले किसी महाजन के साथ लेन-देन था। वह समय-समय पर सेठ के पास से कर्ज के रूप मे रुपया लाता और फसल आने पर ब्याज सहित उसका रुपया अदा कर देता था। इस प्रकार लेन-देन चलते हुए काफी अर्सा हो गया। परन्तु आप

तो जानते हैं कि मिट्टी मे से सोना निकालने वालों को कभी तो अपार धनराशि हाथ लग जाती है और कभी कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि या फसल मे रोग लग जाने के कारण एक दाना भी हाथ नहीं लगने पाता। इस प्रकार उन्हें दुर्भाग्यवश कभी कभी काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। उन्हें इस मिट्टी में बीज, रुपया, मेहनत और समय सब कुछ बलिदान कर देने पर भी कुछ नहीं मिल पाता। वे बोहरे के कर्ज के भार से भी दब जाते हैं। तो यही हाल उस किसान का भी हुआ। उस पर भी एक महाजन का कर्जा बहुत हो गया। जब वह सेठ के बार-बार तकाजा करने पर भी अपना कर्ज अदा नहीं कर सका तो उस सेठ ने उस किसान पर दावा कर दिया। उस किसान ने सेठ को बहुत समझाया और कहा कि आपस मे ही समझौता कर लो ताकि दोनों ही बर्बाद होने से बच जायेंगे। परन्तु वह सेठ उस गरीब किसान की पुकार को कब सुनने वाला था। वह तो उसके घर-बार और मवेशी को नीलाम कराने के विचार में था। जब वह किसी भी प्रकार रजामन्द नहीं हुआ तो किसान ने भी उसे कह दिया कि—"अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही कर सकते हो। मैं भी देख लूंगा कि तुम किस प्रकार मेरा घर और मवेशी को नीलाम कराते हो।" यह कह कर वह अपने घर आ गया।

जब दावे का सम्मन उस किसान को मिला तो वह उक्त पेशी पर हाजिर हो गया और जो कुछ भी हाकिम ने उससे पूछा, उसका जवाब उसने साफ साफ दे दिया। इस प्रकार कई पेशियों पर उसे गांव से बार-बार शहर में आना पडा। जब उसे आखरी फैसले की तारीख सुना दी गई तो उसने सोचा कि

अब मुझे भी पैशी से पहिले हाकिम से मिलना चाहिए। इधर वह सेठ भी उक्त मुकदमे का फैसला अपने हक मे करवाने की दृष्टि से हाकिम के घर पहुँचा और उसे रिश्वत देकर कहने लगा कि हाकिम सा० ! इस पगडी की लाज रखना आपके ही हाथ मे है। इस प्रकार वह रिश्वत देकर चला आया। परन्तु वह किसान भी होशियार था। उसने मन मे विचार किया कि वह सेठ अवश्य ही हाकिम सा० को रिश्वत देकर आया होगा। अतएव मुझे भी चलकर हाकिम सा० को प्रसन्न कर लेना चाहिए। यह विचार कर वह अपने साथ एक दूध देने वाली भैंस लेकर हाकिम के घर पहुचा। उसने हाकिम सा० से कहा कि हुजूर ! यह भैंस मैं आपके बच्चों के दूध पीने के लिए लाया हूँ। आप कृपा करके उक्त पैशी पर मुझ गरीब का भी ध्यान रखें। यह कहकर और भैंस को वहीं बाधकर घर पर आ गया।

जब उक्त मुकदमे के फैसले की तारीख आई तो वह किसान उक्त पैशी पर हाजिर हो गया। सेठ भी मन में खुश होता हुआ अदालत मे हाजिर हुआ। जब दोनों मुद्दई-मुदायले हाकिम के सामने पैश किए गए तो हाकिम ने सेठ से कई प्रश्न किए जिनका जवाब सेठ ठीक तरह नहीं दे सका। जब मुकदमा उस किसान के फेवर मे जाने लगा तो सेठ ने बड़ी चतुराई से सकेत करते हुए हाकिम सा० से कहा कि हुजूर ! मेरी पगड़ी की लाज रखना अब तो सिर्फ आपके ही हाथ में है ! सेठ के उक्त शब्दों को सुनकर हाकिम ने भी उसी रूप मे जवाव देते हुए कहा कि भाई ! पगड़ी की लाज रखने वाली बात तो ठीक है परन्तु पगडी को तो भैंस खा गई। अब मैं तुम्हारे फेवर मे कुछ नहीं कर सकता। आखिरकार मुकदमे का फैसला उस किसान

के फेवर में सुनाया गया। फैसला सुनकर सेठ निराश होकर घर चल दिया और किसान खुश होता हुआ अपने घर गया।

तो उक्त दृष्टान्त के द्वारा मैं आप लोगों को यही शिक्षा देना चाहता हूं कि जब ऐसे-ऐसे रिश्वतखोर हाकिम या उच्चाधिकारी हो जाते हैं तो उनसे न्याय की आशा करना किसी भी हालत मे जायज नहीं है। परन्तु यह निश्चित रूप से समझो कि रिश्वतखोरी से कमाया हुआ पैसा बहुत दिनों तक टिकने वाला नहीं है। वह तो किसी न किसी रूप में चला ही जाने वाला है। और ऐसे रिश्वतखोर हाकिम बहुत दिनों तक अपने पद पर भी नहीं रह सकते। उनकी दुनियां मे अपकीर्ति फैल जाती है और पैसा भी बर्बाद हो जाता है। तो न्याय की कुर्सी पर बैठकर प्रत्येक उच्चाधिकारी को निर्लोभी बन कर न्याय करना चाहिए। जो अफसर रिश्वत दिए जाने पर भी उसे भिष्ठा समझकर ठुकरा देते हैं वे ससार मे यशस्वी होते हुए अपनी ईमानदारी के कारण आगे से आगे तरक्की प्राप्त करते जाते हैं।

तो उक्त सुबुद्धि नाम का महामन्त्री भी अपनी प्रजा के साथ न्याय का बरताव करता था। वह निर्लोभी होते हुए चार प्रकार की बुद्धियों से भी युक्त था। भाई! चार प्रकार की बुद्धियों के विषय मे दिग्दर्शन कराते हुए एक संस्कृत कवि कह रहा है कि —

चतुर्बुद्धि निधानाय, राजभार धुरधरा।
निर्लोभी, न्याय कर्तव्य, एते प्रतिज्ञा मन्त्रीणाम्॥

तो जो शासन का अधिकारी उक्त चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त होता है वही मन्त्री दूध और पानी जैसा न्याय करने में समर्थ होता है।

परन्तु आज हम स्वतन्त्र भारत के शासन काल में देख रहे हैं कि कई केन्द्रिय मन्त्री तो अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करते हुए रिश्वत को छूते भी नहीं और उन रिश्वत देने वालों को कानून के शिकंजे में लेकर कारागार मे डलवा देते हैं। जब कि कई मन्त्रीगण रिश्वत लेने के कारण स्वय दण्डित होकर प्रजा की नजरों से बदनाम होजाते हैं। पे लोभी और रिश्वतखोर मन्त्री अपने मन मे यह विचार करते हैं कि बडी मुश्किलात का सामना करने के पश्चात् सौभाग्य से यह सीट मिली है तो फिर तीन साल के अन्दर-अन्दर जिस तरह भी हो सके अपना घर अच्छी तरह भर लेना चाहिए। क्योंकि पुनः भविष्य में यह सीट मिलने वाली नहीं है। अतएव वे लोभ के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य से च्युत् हो जाते हैं और रिश्वत लेकर अपनी बदनामी करवा लेते हैं।

परन्तु इसके विपरीत वह सुबुद्धि नाम का महामन्त्री निर्लोभी और न्यायी था। वह अपने जीवन में रिश्वत लेना महान पाप समझता था। इस प्रकार अपनी न्याय प्रियता और सदाचारिता के साथ वह महाराज जितशत्रु का दाहिना हाथ बनकर राज्य का सञ्चालन कर रहा था। उसी नगर में सागर नाम का एक सेठ भी रहता था। वह भी अनेक गुणों से युक्त होने के कारण दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो चुका था।

भाई! आज सेठ नाम धराना तो आसान है परन्तु सेठ के गुणों को धारण करना बहुत मुश्किल है। देखो! आज सेठ शब्द की परिभाषा उसके गुणों से नहीं परन्तु उसके पैसे पर की जाती है। अर्थात्-जिसके पास विपुल मात्रा मे चांदी के टुकडे होते हैं वही आज के धनवान जगत मे या अर्थवाद की दुनिया मे सेठ कहलाने का अधिकारी है। वह चाहे अक्ल से निर्धन हो परन्तु लक्ष्मी की छनछनाहट होती हो तो उसे प्रत्येक व्यक्ति सेठ कहने को तैयार हो जाता है। परन्तु प्राचीन युग में सेठ का मापतौल चांदी के टुकडों से नहीं परन्तु उस व्यक्ति के व्यक्तित्व और गुणों से किया जाता था। उस युग मे सोना और चांदी के ढेरों पर बैठने वाले बहुत से धनवान व्यक्ति विद्यमान थे परन्तु सेठ की पदवी से वही व्यक्ति विभूषित किया जाता था जो अपने व्यक्तित्व और असाधारण गुणों के ज़रीए ऊँचा चढ जाता था। तो इसका अर्थ यह हुआ कि सेठ पैसे के बल पर नहीं परन्तु गुणों के जरिए बन जाता है। और बड़े मजे की बात तो यह है कि मारवाड प्रान्त में सेठ सा० शब्द का उच्चारण हेठ सा० के रूप मे किया जाता है यानि 'स' को 'ह' बोला जाता है। यदि हम उक्त शब्द की गहराई में जाय तो हमे मालूम होगा कि जब तक पुण्यार्थी है तब तक तो सबके मुह से सेठ सा०! सेठ सा०! शब्द निकलता हुआ सुनाई देता है परन्तु जब पाप का उदय होने लगता है और वही सेठ अपनी श्रेष्ठता को विसार कर मर्यादा से बाहर चला जाता है तो हेठ सा० कहलाने लगते हैं। अर्थात् वह अपने श्रेष्ठ गुणों से नीचे उतर जाता है। तो आप लोग भी अपने-अपने दिल पर हाथ रखकर तलाश करें कि कहीं हम सेठ सा० से हेठ सा० के दर्जे पर तो नहीं आते

जा रहे हैं। यदि आपको इसका पता लग जाय तो आप पुनः श्रेष्ठि मार्ग पर पैर रखते हुए अपने सेठ नाम को कायम रखने की कोशिश करें। और पंजाब प्रान्त मे सेठ को 'भावडा' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। यह शब्द 'भावबढा' का अपभ्रंश है। परन्तु जब भाव बढने से रूक गए तो 'भावपडा' बन गया। तो भाई! सेठ नाम तो हर कोई रखना चाहता है परन्तु सेठ के गुणों को धारण करना और सेठ नाम की सार्थकता को समझना कोई नहीं चाहता।

एक कवि अपनी कविता में संक्षिप्ततः सेठ के गुणों को बतलाते हुए कह रहा है कि:—

सकल नगर सुखदाय, न्याय मारग नहीं मूके,
देखी यश को दाव, चाव अवसर नहीं चूके।
न करे मुख नकार, अग अहकार न आणे,
अपने दे विश्वास, गुण अपनो न बखाने॥

गुण ग्राही गहरो रहे,
आया को आदर करे।
माने बात दरबार,
सेठ सोही जग में सिरे॥

भाई! उक्त कविता में कवि अपनी भाषा में एक सेठ के गुण दर्शाता हुआ कह रहा है कि इस मानव जगत में वही श्रेष्ठि अर्थात् सेठ शब्द से संबोधन करने लायक है जो नगर की जनता को सुख देने वाला, न्याय मार्ग पर क़दम रखने वाला, यश प्राप्ति

के कार्य में फौरन भाग लेने वाला, घर पर याचक के रूप में आए हुए को नकारात्मक शब्द नहीं कहने वाला, देश, जाति, धर्म और समाज की उलझी हुई गुत्थी को सुलझाकर अभिमान नहीं लाने वाला अर्थात् किसी के बिगड़े हुए कार्य को सुधार कर इस प्रकार अभिमान भरे वचन नहीं बोले कि "अरे ! मेरे सिवाय यह काम कर भी कौन सकता था।" तो भाई ! यह अभिमान तो इसी प्रकार का हुआ जैसे कि कोई कुत्ता बैलगाडी के नीचे चलता हुआ अपने मन में अभिमान लाता हुआ विचारता है कि यह गाडी मेरे ऊपर यानि मेरे बल पर चल रही है। और इस प्रकार वह अभिमान के साथ गाड़ी के नीचे चलता रहता है। परन्तु कोई समझदार व्यक्ति उसे इस प्रकार अभिमान में फूला हुआ नहीं समाते देखकर कहने लगा कि अरे ! नादान कुत्ते ! तू घमंड क्यों मार रहा है ? याद रखना ! अगर बैल की एक टाग भी तेरे ऊपर पड़ गई तो तेरा कचूमर ही निकल जाएगा और सारा घमण्ड तेरा काफूर हो जायेगा। इसलिए हमेशा याद रखो ! कि कोई भी शुभ काम करके घमण्ड नहीं करना चाहिए।

भाई ! श्रीमद् ठाणागजी सूत्र में चार प्रकार के मनुष्य बताए हैं। एक वह व्यक्ति होता है जो काम तो करता है परन्तु घमण्ड नहीं करता, दूसरा वह है जो मान तो करता है परन्तु काम नहीं करता, तीसरा वह व्यक्ति है जो काम भी नहीं करता और अभिमान भी नहीं करता और चौथा वह व्यक्ति है जो काम भी करता है और घमण्ड भी करता है। अब आपको यह निश्चय करना है कि उक्त चार प्रकार के व्यक्तियों में से किस नम्बर में रह कर अपना जीवन गुजारना है ? तो मैं यही आशा

करता हूँ कि आप लोग यदि 'काम भी करना और मान भी करना' इस नम्बर मे भी आ जायेंगे तब भी कोई हर्ज नहीं। परन्तु 'काम भी नहीं करना और बातें भी बनाना' इस नम्बर मे तो मत रहना। इस प्रकार का तो आप अपने जीवन मे आचरण मत करना कि "कोई कहे लाख तो आप कहें लो सवा लाख" और देना-करना कुछ नहीं। ऐसा करने से आप यश के भागी नहीं हो सकेंगे। परन्तु कोई व्यक्ति आपको कुछ समझकर यदि किसी आशा को लेकर आए तो उसे मीठे शब्दों से आश्वासन दो और कहो कि भाई! घबराओ मत! सब काम ठीक ढङ्ग से होजायेगा। और इसी प्रकार से यदि कोई अपने स्त्री पुत्र या धन के वियोग से व्यथित होकर तुम्हारी शरण में आ जाय तो उसे झिडको मत; निराश मत करो अथवा उसके घावों पर नमक छिड़कने का कार्य मत करो। परन्तु उसे ढांढस देते हुए उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करो और मीठे शब्दों मे कहो कि भाई! चिन्ता-फ़िक्र मत करो, हिम्मत से काम लो, ये दुख के दिन भी चले जायेंगे और कल तुम्हारा बच्चा होशियार होकर कमाने लग जायेगा। तो इस प्रकार उसके दुख में शामिल होते हुए उसे दुख से मुक्त कराने का भरसक प्रयत्न करो। परन्तु कोई शुभ कार्य करके दुनिया भर मे ढिंढोरा पीटते मत फिरो कि मैंने उसके साथ ऐसा किया और वैसा किया। तुम्हें तो किसी के प्रति उपकार करके यही विचारना चाहिए कि मैं किसी लायक था और मानवता के नाते मैंने अपना फ़र्ज़ अदा किया है। दूसरे अपने घर पर आए हुए अतिथि का सत्कार सन्मान करके उसके हृदय मे विश्वास पैदा करो। ऐसा व्यवहार करने से तुम्हारा दुश्मन भी तुम से प्रसन्न हो जायेगा और वह हमेशा के लिए अपने पूर्व वैर-भाव को भूलकर तुम्हारा

मित्र बन जायेगा। वह तुम्हारी बुराई करने के बदले दूसरों के सामने तारीफ करने लगेगा।

इसीलिए किसी नीतिकार ने कहा है कि:—

आता ने आदर करे, जाता ने जीकार।
मिलिया हंस कर बोलबो, ये उत्तम कुल-आचार॥

अर्थात् अपने घर पर आए हुए व्यक्ति को सम्मान दो, जब जाने लगे तो कहो कि फिर कभी पधारने की कृपा करना और जब तक वह तुम्हारे घर पर ठहरे तब तक उसके साथ मीठे शब्दों से वार्तालाप करो। इस प्रकार का मिष्ट व्यवहार करने से उस आगन्तुक व्यक्ति के हृदय पर तुम्हारे शिष्ट व्यवहार की अमिट छाप पड़ जायेगी। और वक्त पड़ने पर वह तुम्हारे काम आ सकेगा।

हां, तो मैं कह रहा था कि सेठ अभिमान भरे वचन नहीं बोलता दूसरे को वचन देकर विश्वासघात नहीं करता, अपने मुंह से अपने गुणों को प्रकट नहीं करता, दूसरों के गुणों को ग्रहण करता, अपने घर पर आए हुए व्यक्ति का यथोचित स्वागत-सत्कार करता और उसकी बात राजा भी मानता है। तो उक्त गुणों से युक्त जो व्यक्ति होता है वही श्रेष्ठि पद का वास्तव में अधिकारी होता है।

तो वह सागर सेठ भी अपने नाम के मुताबिक सेठ के तमाम गुणों को धारण करने वाला था। वह राजा तथा प्रजा के दरम्यान का विश्वासपात्र व्यक्ति था। या यों कहिए कि राजा

तथा प्रजा के बीच मीठे सम्बन्ध कायम बनाए रखने वाली बीच की कड़ी था। वह अपनी प्रखर बुद्धि के कारण राजा और प्रजा दोनों को प्रिय था इसी कारण उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी। क्योंकि-"गुणवान सर्वत्र पूज्यन्ते" अर्थात्-गुणवान पुरुप की सब जगह पूजा-प्रतिष्ठा होती है। भाई ! किसी की इज्जत उसके धन से नहीं अपितु उसके गुणों के कारण की जाती है। तो वह सेठ धनवान होने के साथ-साथ गुणवान भी था। उसकी श्रीमन्ताई लोगों की दृष्टि मे आती थी। क्योंकि उसके पास कोठी, बगला, दूकान, बाग, बग्घी, गाय, भैंस, नौकर-चाकर वगैरह सभी बाह्य साधन मौजूद थे। वह अच्छा खाता-पीता और शुभ कार्य मे लक्ष्मी का सदुपयोग भी करता था। और ससार व्यवहार में भी देखा जाता है कि जो स्वयमेव अच्छा खाता पीता है और दूसरों को भी मुक्त-हस्त से देता है-खिलाता है तो सब लोग उसकी तारीफ करते हैं। और उसकी सारे लोग बात मानते हैं। तो वह सेठ स्वय भी खाता पीता और दूसरों को भी उदारता पूर्वक देता था। इसलिए उसकी सारे शहर में तारीफ हो रही थी। उस सागर सेठ की धर्मपत्नि का नाम श्रीमती था। वह भी बड़ी पतिव्रता, बुद्धिमान और सुशील थी। अपने पति की तरह वह भी बड़ी उदार थी और अपने घर पर आए हुए अतिथि की प्रेम पूर्वक खातिर करती थी। इसलिए उसकी भी शहर मे शोहरत फैल चुकी थी। वह जिस प्रकार आत्मिक गुणों से सुन्दर थी वैसे ही शरीराकृति से भी अतीव सुन्दरी थी। इस प्रकार वह बाह्याकृति और अतरंग दोनों ही गुणों में सुन्दर थी।

भाई ! कई जगह देखा गया है कि कोई,स्त्री शरीराकृति से तो

अत्यन्त सुन्दर होती है परन्तु मन से मलीन होती है। वह केवल अपने शरीर की पूजा करने में ही दिन रात व्यस्त रहती है परन्तु आतिथ्य सत्कार तथा दर्दमन्दों को राहत पहुँचाने की तरफ तनिक भी लक्ष्य नहीं रखती। इसलिए उसकी दुनियां बुराई किए बिना भी नहीं रहती। क्योंकि जब उसका पति अच्छी कमाई करता है और घर में किसी प्रकार की कमी नहीं है और फिर भी यदि वह अपने हाथों से दूसरों को देने मे हिचकिचाती है-सकोच लाती है तो वह अपने पतिव्रता धर्म से च्युत हो जाती है। और कभी कभी उसकी इस कृपणता को देखकर उसका पति भी उसे कहे बिना नहीं रहता कि अरी भाग्यवान! तुझे सब तरह की योगवाई पुण्य कर्म से प्राप्त हो गई है तब फिर तू इस बहती गगा मे हाथ धोने से वचित क्यों रहती है! अर्थात्-अपने हाथों से दूसरों को दान देकर लाभ क्यों नहीं लेती। परन्तु भाई! लाभ तो कोई कोई ही पुण्यात्मा ले सकते हैं।

सज्जनों! उक्त प्रसगवशात् मैं आपके सामने अपनी बीती हुई घटना ही सुना देना उपयुक्त समझता हूँ। एक समय की बात है कि मैं और स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० किसी गांव में गौचरी के लिए गए हुए थे। हम जिस व्यक्ति के यहा गौचरी को गए उसके यहां कुछ महमान भी आए हुए थे। अतएव उनके यहां उन महमानों के विशिष्ट भोजन सामग्री बनाई जा रही थी। हम जब पहुचे तो वहा पूड़ियां उतारी जा रही थीं। हम ज्योंही मकान के अन्दर पहुचे तो हमे देखते ही उस घर के मालिक ने हमारा स्वागत किया और उसने भगोने में से दोनों हाथों मे भर कर पूडिए हमे वहराने के लिए उठाई। परन्तु ज्योंही उसकी श्रीमती जी की

नजर उस तरफ पड़ी तो वह एकदम झल्लाकर बोल उठी कि अरे !
यह क्या गजब कर रहे हो ? क्या इतनी पूड़िएं बहराई जायेंगी ?
और इतना कहते ही उस श्रावक के हाथ से पूड़िए छिटक कर
भगोने में जा गिरी। अब सिर्फ उसके हाथ में दो पूडिए ही शेष
रह गई थीं। और वहीं उस बेचारे ने हमारे पात्र मे बहरा दीं।
यह नज़ारा देखकर पूज्य महाराज फर्माने लगे कि मुनिजी ! जब
हमारी किस्मत मे यहा से केवल दो ही पूड़िए मिलने का योग
था तब अधिक कहां से मिल सकती थीं। तो इस दृष्टान्त पर से
यही समझना चाहिए कि जिसकी जबर्दस्त पुण्याई होती है
उसीके हृदय में सुपात्र दान देने की भावना जागृत होती है।
अन्यथा कोई न कोई विघ्न मौके पर उपस्थित हो ही जाता है।

तो वह सेठानी भी अपने पति के अनुसार ही उदारता
पूर्वक दान देती हुई अपने नाम को सार्थक कर रही थी। इस
प्रकार दोनों सेठ सेठानी आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक समय की बात है कि वह श्रीमती सेठानी स्नान करके
तथा वस्त्रालङ्कारों से अलकृत होकर अपने मकान की छत पर गई
और वहां खड़ी होकर बाजार की रौनक देखने लगी। भाई ! इन
चर्मचक्षुओं का स्वभाव तो देखने का है। और जहा तक पर्दे का
सवाल है वह तो सिर्फ दिल के साथ सम्बन्ध रखता है। तो वह
सेठानी अपने पवित्र हृदय से बाजार की छटा देखने में मशगूल
हो रही थी। परन्तु सभी की आखें विकार रहित भी नहीं होती।
जो विकारी आखें होती हैं वे अपनी चंचलता के कारण अपनी
मनमोहक वस्तु पर आकर्षित हो जाती हैं और अनिमेष दृष्टि से
उसकी ओर निहारती ही रहती हैं। तो जब वह सेठानी भावुकता

के साथ शहर की ओर निरीक्षण कर रही थी उसी समय जितशत्रु राजा भी अपने महल के झरोखे मे बैठा हुआ शहर की तरफ दृष्टिपात कर रहा था। इस प्रकार देखते-देखते अकस्मात् उसकी चचल दृष्टि उक्त सेठानी की मुखाकृति से टकरा गई। बस! श्रीमती की अनुपम सुन्दरता को देखकर उसकी आखें उक्त सुन्दरी की सुन्दरता का रसास्वादन करने लगीं। वह उसकी ओर टक-टकी लगाकर देखता ही रहा और सौन्दर्योपासना मे इतना तल्लीन हो गया कि अपनी सुध-बुध भी खो बैठा। चू कि उसकी आखों में विकार का नशा छा गया था अतएव श्रीमती की सुन्दरता उसकी आंखों मे साकार नृत्य करने लगी। वह श्रीमती सेठानी को अपने मन की रानी बनाने का स्वप्न देखने लगा।

भाई! यह मन भी बड़ा चचल है। इस मन पर विश्वास करना निरी मूर्खता है। वह अपनी चंचलता के कारण मनुष्य को कभी देवता और कभी शैतान के सिंहासन पर बैठा देता है। यह किसी समय हैवान बन जाता है और कभी मानवता की मूर्ति बन जाता है। इस मन की चचलता के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है कि:—

कबहू मन सागर सोच पड्यो,
कबहू मन वाछित रूप अपारा।
कबहू मन दौड़त भोगों में,
कबहू मन योगी रीत संभारा॥
कबहू मन स्थिरताभूत रहे,
कबहू मन छिन में कोस हजारा।

श्रोता नर मन्न विचार करो,
इस मन की लहर का अन्त न पारा ॥

कवि कहता है कि इस चचल मन की गति का कोई पार नहीं पा सकता है। यह मन ऐसा चंचल है कि इसके सामने जैसा जैसा वातावरण होता है और आखों के सामने जो जो नजारे आते हैं यह उनके अनुरूप ही बन जाता है। यह मन कभी तो सोच-विचार के सागर मे डुबकी लगाने लगता है, कभी अनेक रूप धारण करने की इच्छा करता है, कभी काम-विकार में फँसकर नाना प्रकार के भोग भोगने मे तल्लीन हो जाता है, कभी यह मन एक योगी के आसन पर अपना आसन जमा बैठता है, कभी यह स्थिर हो जाता है और कभी क्षण मात्र मे हजारों कोसों पर सैर करने चला जाता है। तो इस मन की चचल लहरों का कोई पार नहीं पा सकता। परन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि इस चचल मन को विवेक ज्ञान द्वारा ही वश में किया जा सकता है।

हां, तो मैं कह रहा था कि वह जितशत्रु राजा भी श्रीमती सेठानी के सुन्दर स्वरूप को देखकर अपने मन को काबू में नहीं रख सका। वह मन का गुलाम बन गया। वह सिर्फ अपनी वासना की पूर्ति के लिए ही छटपटाने लगा। वह अपने होश-हवाश भी खो बैठा। उसमें इतनी भी विचार-शक्ति नहीं रही कि जिसकी ओर देखकर इन आंखों में खुमारी छा गई है वह और कोई नहीं परन्तु मेरी प्यारी प्रजा है। और एक पिता को अपनी बहु-बेटियों की ओर किस दृष्टि से देखना चाहिए। क्या

एक पिता अपनी बहु-बेटी को विकार भाव से देखता है या निर्विकार भाव से ? तो वास्तव मे देखा जाय तो एक राजा के लिए नगर की सारी बहु-बेटियें उसके लिए बहिन-बेटियों की तरह ही देखी जानी चाहिए। उसे सदैव उनके प्रति शुद्ध विचार रखने चाहिए। परन्तु यह राजा तो इस पाजी मन के चक्कर में अच्छी तरह फँस चुका था। अतएव उसे इस शिकजे में से निकलना दुश्वार होगया। चूंकि उसका पापी मन विषय विकार के दलदल मे फँस गया था अतएव वह अपने कर्तव्य को भूल कर अपनी प्यारी पुत्री को भी स्त्री की दृष्टि से देखने लगा। वह श्रीमती की सुन्दरता देख कर पागल बन गया। उसका मन विषयाशक्त होकर उसके अधरों का पान करने के लिए विह्वल हो उठा। वह अब इसी सोच-विचार मे पड़ गया कि किस प्रकार से उस सुन्दरी को प्राप्त कर उसके साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग-भोगकर अपनी कामवासना को तृप्त करूँ।

देखो ! महाराज जितशत्रु ने अभी तक के जीवन मे अपने चरित्र को समुज्जवल बना रखा था परन्तु आज वही निमित्त पाकर अपनी आज तक की संचित यश रूपी लक्ष्मी को झूठे टुकड़े को प्राप्त करने के लिए गवा देने को तैयार हो गया। भाई ! यह पापी मन भी एक चरित्रशील व्यक्ति को अपने पथ से भ्रष्ट करके रसातल की ओर पहुँचाने के लिए बाध्य कर देता है। और कभी-कभी इस मन की पवित्रता के कारण वही व्यक्ति कीचड में से निकल कर देवता के सिंहासन पर विराजमान हो जाता है। यदि मानव अपने मन को संयमित कर लेता है और निमित्त पाकर भी किसी के डिगाए नहीं डिगता है तो वही इस पृथ्वीतल पर मानव के रूप मे देवता नजर आने लगता

है। परन्तु उक्त राजा अपने मन की कमजोरी के कारण कामान्ध बन गया और उसने अपने भविष्य के अधकार के विषय में भी विचार नहीं किया। आप लोग तो जानते ही है कि यह काम विकार की बीमारी जिस किसी मनुष्य या स्त्री के शरीर मे प्रवेश कर जाती है वह उसे मूर्छित-बेभान स्थिति में डाल देती है। और उस कामान्ध पुरुप को जब तक अपनी इच्छित औषधि प्राप्त नहीं होती तब तक उसका खाना पीना, उठना बैठना और आवश्यक कार्य करना भी हराम हो जाता है। किसी नीतिकार कवि ने सस्कृत भाषा में कामान्ध पुरुष की दशा का वर्णन करते हुए कहा है कि:—

दिवो न पश्यति उलूक., काको रात्रि न पश्यति।
अर्थी दोष नैव पश्यति, कामान्धो दिवा न रात्रि पश्यति ॥

अर्थात्—दिन मे तो उल्लू को ही नहीं दिखाई देता, रात्रि में कौवे को नहीं सूझता, चाहवाला भी दोष को नहीं देखता परन्तु जो व्यक्ति कामान्ध हो जाता है उसे तो रात और दिन दोनों में ही दिखाई नहीं देता। उस कामान्ध पुरुष को हिताहित की बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। वह रात-दिन अपने काम-विकार की पूर्ति मे पागल-सा बना हुआ फिरता रहता है। तो इस प्रकार से जितशत्रु राजा भी श्रीमती सेठानी की सुन्दरता देखकर मोहित हो गया और अन्यमनस्क होकर विचारने लगा कि मेरे रणवास मे इतनी रानिया हैं परन्तु इस सेठनी जैसी सुन्दरी और मोहनी एक भी नहीं हैं। इस प्रकार विचारों ही विचारों में उक्त सेठानी को किसी भी तरह हस्तगत करने की तीव्र लालसा उत्पन्न होगई।

भाई ! जिसका मन पापी बन-जाता है वह दूसरे की हितकर सलाह को भी ठुकरा देता है और भविष्य के परिणाम को सोचे बिना ही अधम कार्य कर गुजरता है। जब राजा की बुद्धि भी इस विषय मे कुण्ठित हो गई और उसके दिमाग में उक्त सेठानी को प्राप्त करने की कोई तरकीब नहीं सूझ पड़ी तो उसकी दृष्टि अपने नीतिपरायण सुबुद्धि प्रधान पर गई। राजा ने सोचा कि मैंने महामन्त्री को इसीलिए नियुक्त किया है कि वह किसी भी तरह की उत्पन्न हुई विकट समस्या को सुगमतापूर्वक सुलझाने का प्रयत्न करे। तब मुझे इसी के द्वारा ही क्यों न अपनी गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार जब राजा ने सुबुद्धि प्रधान के द्वारा ही अपने कामविकार रूपी रोग की औषधि प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया तो उसने उसे अपने पास बुलाया। जब महामन्त्री राजा के पास गया तो उसने कहा कि प्रधानजी ! तुम्हें हमारे यहां वफादारी से मन्त्रीपद पर कार्य करते हुए काफी अर्सा हो गया है। आज तक हमने विशेष रूप से किसी भी विकट समस्या को सुलझाने के लिए तुम्हें कष्ट नहीं दिया और परामर्श नहीं लिया। परन्तु आज हमारे सामने एक ऐसी विकट समस्या उपस्थित हो गई है कि जिसके लिए तुम्हारा परामर्श लेना अनिवार्य हो गया है। और इस समस्या को सुलझाना भी तुम्हारा परम कर्तव्य है।

महाराज के मुंह से उक्त वचन सुनकर सुबुद्धि प्रधान ने हाथ जोड़ कर अर्ज की कि महाराज ! मैं आपके यहां का नमक खा रहा हूँ अतएव आपके फायदे के लिए यदि यह तुच्छ शरीर काम आजाय तब भी मुझे किसी प्रकार की हिचकिचाहट न

होगी। आप निस्सकोच भाव से अपनी हृदयगत समस्या को मेरे सामने रखें। मुझे जो भी उचित और श्रेय हल नजर में आएगा वही आपकी सेवा मे रखने का प्रयत्न करूगा।

जब राजा ने महामन्त्री के मुह से संतोषजनक प्रत्युत्तर सुना तो उसने कहा कि महामत्री ! जो सामने के मकान की छत पर खड़ी हुई सुन्दर युवती दिखाई देती है वह कौन है और किस सेठ की सेठानी है ? और वह युवती किस प्रकार से हस्तगत की जा सकती है। इस प्रकार राजा ने अपने हृदय की वेदना महामत्री के सामने जाहिर कर दी। ऐसा करने से राजा के मन की वेदना किसी अश तक शान्त हो सकी।

परन्तु राजा के मुंह से इस प्रकार के लज्जा-जनक और काम विकार से सने हुए शब्द सुनकर सुबुद्धि प्रधान भौंचक्का-सा रह गया। वह किंकर्त्तव्य विमूढ हो गया और अपने-आपको नहीं संभाल सका। वह उदासीन होकर अपने स्थान पर बैठकर विचार सागर में गोते लगाने लगा।

भाई ! जब तक कोई गुप्त रहस्य हृदय रूपी किले के अन्दर ही रहता है और दोनों होठ रूपी कोट के बाहर नहीं आता है तब तक यह किसी को ज्ञात नहीं होता। परन्तु जब वही हृदयगत विचार होठों से बाहर आजाता है तो ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन की तरह सर्वत्र प्रसारित हो जाता है। उन विचारों के प्रसारित होजाने पर दुनिया मे एक प्रकार की हलचल पैदा हो जाती है।

तो वह राजा भी अपने गुप्त भावों को हृदय में शमन

नहीं कर सका और उसने अपने काम विकार के भावों को मन्त्री के सामने प्रकट कर दिए। उसने उसके सामने उक्त भाव प्रकट ही नहीं किए परन्तु उसे उस गुत्थी को सुलझाने के लिए भी मजबूर किया। जब महामन्त्री ने अपने कानों से राजा के मलीन विचारों को सुना तो वह एक बार तो प्रस्तर की मूर्ति के समान स्तब्ध-सा रह गया परन्तु फिर भी अपने मालिक को पददलित होने से बचाने के लिए सम्भल कर अर्ज करने लगा कि महाराज! आज मैं आप जैसे नराधिप के मुँह से किस प्रकार के शब्द सुन रहा हूँ। महाराज! मैं इस राज्य का महामन्त्री हूँ और इस नाते मुझे आपको इस काम विकार के कीचड से बाहर निकालना ही चाहिए। मैं नहीं चाहता कि आप इस कामाग्नि में जलकर भस्म हो जांय और साथ ही अपने पूर्वजों के निर्मल यश पर भी कालिख पोत दें।

तो अब किस प्रकार वह महामन्त्री राजा जितशत्रु की समस्या को सुलझाता है और किस प्रकार समझ-पूर्वक उत्तर देता है यह सब कुछ आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा।

इस प्रकार जो पाप कर्म के विचारों को छोडकर धर्म-कार्य में प्रवृत्ति करेंगे उनकी आत्मा इस लोक तथा परलोक दोनों मे सुखी बनेगी।

बैंगलोर (कन्टोनमेंट)
ता० १४-८-५६
शुक्रवार

★★

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

:: अहिंसा ::

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख,-
मामाति रूपममलं भवतो नितांतम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिंब रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥

卐卐

भाई ! उक्त भक्तामर स्तोत्र के अट्ठाईसवें श्लोक में जैनाचार्य श्री मानतुङ्ग ने भगवान ऋषभदेव की महामहिम स्तुति करते हुए कहा है कि हे भगवन् ! आप जहा कहीं ग्राम, नगर, पुर, पत्तन आदि जनपदों में विचरते हैं, धर्मोपदेश देते हैं, अथवा खड़े रहते हैं तो तीर्थङ्कर नामकर्म के उदय से वहीं देवतागण आपके ऊपर अशोक वृक्ष की छाया कर देते हैं। उस अशोक वृक्ष मे से निर्मल किरणें प्रस्फुटित होती हैं। और वह अशोक वृक्ष फल, फूल तथा पत्तों से छाया हुआ होता है। और जब तीर्थङ्कर भगवान उस वृक्ष के नीचे विराजते हैं तो जैसे बादलों के निकट सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभायमान होता है उसी

प्रकार आपका निर्मल शरीर भासमान होता है। तीर्थङ्कर भगवान के आठ प्रतिहार्यों मे से 'अशोक वृक्ष की छाया' यह प्रथम प्रतिहार्य है।

उक्त अशोक वृक्ष अपनी मूक वाणी में तीर्थङ्कर भगवान के दर्शनार्थ आने वाले नर नारियों को सूचित करता है कि देखो ! जैसा मेरा नाम अशोक है वैसे ही मुझ में गुण भी हैं। अर्थात्-जो भी प्राणी शारीरिक थकावट से घबराकर मेरी छाया में प्रश्रय पा लेता है उसे कभी भी शरीर सम्बन्धी थकावट महसूस नहीं होती। वह शोक रहित हो जाता है। और इसी कारण मेरा नाम अशोक है।

भाई ! यह तो द्रव्य न्याय दिया गया है। परन्तु यदि हम उक्त न्याय के अन्तरग भाव की गहराई मे पहुँचेंगे तो हमे ज्ञात होगा कि तीर्थङ्कर भगवान की शरण रूपी छाया के नीचे जो भी ससारी प्राणी अपने अनन्त काल के जन्म-मरण के दुःख से घबराकर-आ जाता है तो उसका हमेशा के लिए उक्त शोक मिट जाता है। उसकी आत्मा मे चिरशाति व्याप्त हो जाती है। तो ऐसे भगवान ऋषभदेव प्राणिमात्र को आधि, व्याधि और उपाधि के शोक से मुक्त कराने वाले थे। और उन्हीं अहिंसा के अवतार तीर्थङ्कर भगवान को हमारा सब से पहिले नमस्कार है।

उपस्थित भाइयो ! तथा बहिनो ! मैं आज आपके स्थानीय मठ मे प्रवचन सुनाने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। मैं आप भाई-बहिनों की धर्म के प्रति उत्कट अभिरुचि को देखकर गद्गद् हो

जाता हूँ। आप लोगों की धर्म भावना अति सराहनीय है। आप अपने मारवाड़ प्रदेश से बहुत दूर रहते हुए भी इस अनार्य भूमि में भी धर्म का बीजारोपण कर रहे हैं। यहा की भूमि में सत मुनिराजों के दर्शन होना भी दुर्लभ स्वरूप हैं। परन्तु आप अपने धर्म से दृढ रहते हुए अपनी आजीविका उपार्जन करते हैं यह प्रशासनीय वस्तु है। मैं समझता हूं कि आप दिन प्रति-दिन धर्म भावना को बढाते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाते रहेंगे।

तो आज के प्रवचन का विषय 'अहिंसा' रखा गया है। मैं आज आपके समक्ष उक्त विषय पर विशद् रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा। आशा है आप शांति पूर्वक मेरे द्वारा प्रतिपादित विषय को श्रवण कर अपने जीवन में अहिंसा को पूर्ण रूप से स्थान देते हुए आत्म कल्याण करेंगे।

भाई! अहिंसा शब्द इतना व्यापक हो गया है कि यह भारतदेश मे ही नहीं अपितु विदेशों मे भी इसका महत्त्व आंका जाने लगा है। विदेशों के लोग भी अहिंसा शब्द से भलीभांति परिचित हो चुके हैं। वे लोग इसे Nonviolence अर्थात् अहिंसा कहकर पुकारते हैं। मतलब यह है कि सम्पूर्ण विश्व में अहिंसा शब्द की धूम मची हुई है।

यद्यपि अहिंसा शब्द के अर्थ से सभी परिचित होंगे तदपि प्रसगवशात् उक्त शब्द की सरल व्याख्या कर देना मैं उचित समझता हूँ। अहिंसा शब्द का सीधा अर्थ है कि जिससे किसी की हिंसा न हो उसे अहिंसा कहते हैं। आज ससार में जितने

भी धर्म हैं उन सबका मूल अहिंसा है। क्योंकि मूल के बिना जैसे किसी वृक्ष की शाखाएं नहीं होतीं उसी प्रकार अहिंसा के बिना धर्म भी कायम नहीं रह सकता। जिस धर्म के मूल में अहिंसा है वहीं सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि गुण भी रह सकते है। अहिंसा रूपी मूल के अभाव मे सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि गुण भी पनप नहीं सकते। तो एकमात्र अहिंसा मे उक्त सभी गुण सम्मिलित हो जाते है।

जैसे एक विशालकाय हाथी के पैर के नीचे सभी जानवरों के पैर समा जाते है उसी प्रकार अहिंसा के मूल मे विश्व के सभी धर्म समाविष्ट हो जाते हैं। इसीलिए धर्म का मूल अहिंसा माना गया है।

अहिंसा शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए श्रमण भगवान् महावीर ने श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन की ग्यारहवीं गाथा में फर्माया है कि.—

सव्वं जीवावि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणवहं घोर, निग्गथा वज्जयतिण ॥

अर्थात्—ससार मे जितने भी चराचर प्राणी हैं वे सब अपने-अपन शरीर मे जीने की आशा करते है। मरने की कोई भी आशा नहीं करता। इसलिए किसी भी प्राणी को प्राणों से विमुक्त करना घोर पाप कहा है और निर्ग्रंथों ने वर्जन किया है। परन्तु अहिंसा का पूर्णतया पालन करने के लिए प्रत्येक अहिंसक को उन प्राणियों के निवास स्थान को जान लेना परमावश्यक है।

क्योंकि उन जीवों के स्थानकों को जाने विना रक्षा भी कैसे कर सकेंगे ? तो तीर्थंकर भगवान ने बताया है विश्व के समस्त जीव जिनकी हमे प्राणरक्षा करनी है वे सब चार गतियों मे निवास कर रहे हैं। अर्थात्—देवगति, मनुष्य गति, तिर्यञ्चगति और नरक गति मे उन सभी जीवों का समावेश हो जाता है। इनके अतिरिक्त पचम गति मोक्ष है और वहा भी अनन्त जीव निवास करते हैं।

इन गतियों में नरक गति नीचे की ओर है जिसे पाताल लोक भी कहते हैं। और इस्लाम धर्म मे इसको दोजख के नाम से पुकारते हैं। तो नरक भी सात प्रकार के माने गए हैं। उनके नाम अनुक्रम से निम्न प्रकार है:—

> रत्न शर्करा वालुका, पङ्कधूमतमोमहातमः।
> प्रभाभूमयोघनान्बु, वाताकाश प्रतिष्ठा.॥

वैदिक तथा इस्लाम धर्म में भी इतने ही नरक माने गए हैं। उन नरकों मे रहने वाले जीवों को 'नेरिया' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। उक्त सात प्रकार के नरकों मे चौरासी लाख नरक के वासे बताए गए है। उन सब मे ही नारकी जीव निवास करते हैं।

इसके बाद दूसरी तिर्यञ्च गति बताई गई है। इस गति में पशु पक्षी निवास करते हैं। तिर्यञ्च गति के जीव भी पांच हिस्सों में विभक्त किए गए हैं। उनके नाम अनुक्रम से एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय; त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। उक्त पांच प्रकार के तिर्यञ्च जाति के जीवों में से एकेन्द्रिय जीवों के केवल एक ही

स्पर्श इन्द्रिय होती है अर्थात्—उनके सिर्फ शरीर ही होता है। और वे भी पांच प्रकार के हैं—पृथ्वीकाय, (मिट्टी) अपकाय, (पानी) तेउकाय, (अग्नि) वाउकाय, (वायु) और वनस्पतिकाय अर्थात् वनस्पति के जीव। उक्त पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों के केवल शरीर ही होता है और उसी में वे जीव निवास कर रहे हैं। इसके बाद दूसरे नम्बर मे बेइन्द्रिय जीव आते हैं जिनके दो इन्द्रियां अर्थात्—स्पर्शन और रसना यानि शरीर और मुंह ही होते हैं। जैसे—शंख, सीप वगैरह के जीव। अब तीसरे नम्बर में तेइन्द्रिय के जीव अर्थात् तीन इन्द्रियों वाले जीव बताए गए हैं। उन जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण अर्थात् शरीर, मुंह और नाक ही होते हैं। जैसे कीडी, मकोड़ा, खटमल वगैरह। उक्त तेइन्द्रिय जीवों के रहने का यही स्थान है। इसके बाद चतुरेन्द्रिय अर्थात् चार इन्द्रियों वाले जीवों का नम्बर आता है। चतुरेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, (शरीर) रसना, (मुंह) घ्राण, (नाक) और चक्षु (आंख) होते हैं। जैसे—मक्खी, मच्छर, टिड्डी, कसारी वगैरह। इस शरीर में चार इन्द्रियों वाले जीव रहते हैं। तत्पश्चात् पांच इन्द्रियों वाले जीवों का नम्बर आता है। जिन जीवों के पांच इन्द्रियां अर्थात् स्पर्शन, (शरीर) रसना, (जीभ) घ्राण, (नाक) चक्षु, (आंख) और श्रोत्र (कान) होते हैं वे पंचेन्द्रिय जीव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य, स्त्री, हाथी, घोड़ा, कौवा वगैरह। उक्त पंचेन्द्रिय जीव भी दो प्रकार के हैं—सन्नि पंचेन्द्रिय और असन्नि पंचेन्द्रिय। सन्नि पंचेन्द्रिय अर्थात् मन वाले जीव और असन्नि पंचेन्द्रिय अर्थात् बिना मन वाले जीव। इससे आगे सन्नि तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों को चार हिस्सों में विभक्त कर दिया गया है—जलचर, नभचर, भूचर और उरपर।

जलचर जीव वे कहलाते हैं जो जल में रहते हैं जैसे मच्छ कच्छ, गौ वगैरह। नभचर-आकाश में उडने वाले जीवों को कहते हैं-जैसे तोता, मैना, चील, उल्लू कौवा वगैरह। भूचर अर्थात् पृथ्वी पर चलने वाले जैसे गाय, वैल, हाथी, घोडा वगैरह। और उरपर अर्थात् जो जीव भुजा के सहारे चलते हैं जैसे साप, नेवला, छिपकली, गिलहरी दुम्बी वगैरह। एक समय की बात है कि जब मैंने सोजत रोड़ मे चातुर्मास किया था तो मैं जिस स्थानक मे ठहरा हुआ था वहां एक दुमुही निकली। उसे देखकर लोगों ने कहा कि यह तो बोगी है बोगी। उन लोगों के मुंह से उक्त बोगी का नाम सुनकर मैंने विचार किया कि इसे बोगी कहते हैं। उक्त बोगी शब्द पर किसी मसखरे कवि ने एक दोहे में कह दिया कि:—

दस बोगा दस बोगली, दस बोगा का बच्चा।
गुरूजी बैठा गप्पा मारे, चेला जानें सच्चा॥

तो इस प्रकार के पेट घसीट कर चलने वाले जीव भी पचेन्द्रिय कहलाते हैं। तो ये सब पशु जाति मे शामिल हैं।

इसके बाद बताया जाता है कि तीसरी मनुष्य गति है। वह सन्नि और असन्नि रूप से दो प्रकार की हैं। और सन्नि मनुष्य पचेन्द्रिय भी दो प्रकार के हैं। एक तो वे मनुष्य हैं जो कर्म पुरुषार्थ करके अपनी आजीविका उपार्जन करते हैं और दूसरे वे मनुष्य हैं जो कर्म किए बिना ही कल्पवृक्षों से अपनी मनोकामना पूर्ण कर लेते हैं। कर्म नहीं करने वाले जीव अन्तर्द्वीप-टापू में रहते हैं। उन मनुष्यों के रहने के तीस क्षेत्र हैं। वहां रहने वाले मनुष्यों को कर्म नहीं करना पड़ता। उनकी

आशा कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं। और समुद्र में छप्पन टापू आ गए है जिनमें भी मनुष्य रहते हैं। इस प्रकार से मनुष्य एक सौ एक तरह के मुख्य रूप से होते हैं। परन्तु वे ही प्रर्याप्त और अपर्याप्त भेद से दो सौ दो तरह के हो जाते हैं। और असन्नि अर्थात् समूर्छिम, पचेन्द्रिय मनुष्य जिनके मन नहीं होता ये भी चौदह प्रकार के स्थानों मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य हैं। इस प्रकार मनुष्य के कुल भेद तीन सौ तीन होते हैं।

इसके पश्चात् चौथी देवगति मानी गई है। देवगति ऊपर की ओर और नीचे की ओर भी है। वहा रहने वाले जीव देवता कहलाते हैं। उक्त देवता भी चार हिस्सों में विभक्त किए गए हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। उक्त चारों प्रकार के देव मुख्य रूप से एक सौ अट्ठानवें तरह के होते हैं। और उक्त चारों गतियों के कुल जीव पांच सौ त्रेसठ प्रकार के हैं। ये समस्त जीव चौरासी लाख जीव योनियों मेसमाविष्ट हो जाते हैं। अर्थात् उक्त चौरासी लाख तरह के स्थान जीवों के रहने के है। जिनमे से सात लाख स्थान पृथ्वीकाय (मिट्टी में रहने वाले) के जीवों के, सात लाख स्थान अपकाय (जल में रहने वाले) के जीवों के, सात लाख तेउकाय (अग्नि के जीवों) के जीवों के, सात लाख स्थान वायुकाय (हवा के जीवों) के जीवों के, दस लाख स्थान प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों के, चौदह लाख स्थान साधारण वनस्पतिकाय जीवों के, दो लाख स्थान बेइन्द्रिय जीवों के, दो लाख तेइन्द्रिय जीवों के रहने के स्थान, दो लाख स्थान चतुरेन्द्रिय जीवों के, चार लाख स्थान नारकी जीवों के, चार लाख देवताओं के रहने के स्थान, चार लाख स्थान

तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवों के और चौदह लाख स्थान मनुष्यों के रहने के बताए गए हैं। इस प्रकार उक्त चौरासी लाख जीव योनिएँ जीवों के रहने के स्थान हैं।

तो अहिंसा का पालन करने वाले अहिंसक मनुष्य, स्त्री को सबसे पहिले उक्त चौरासी लाख जीव योनियों को अर्थात् जीवों के रहने के स्थानों की जानकारी कर लेना आवश्यक है। उक्त चौरासी लाख जीव योनियों का भली प्रकार विज्ञान हो जाने के पश्चात् ही पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन किया जा सकता है। जब उक्त विषय का अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है तो शास्त्रकारों ने जो जीवों को तकलीफ पहुचाने के दस प्रकार के स्थान बताए हैं, उनसे उन्हें बचाया जा सकता है।

भाई! जब आप सामयिक करते हुए प्रारम्भ में, 'इच्छा-कारेणं' का पाठ बोलते हैं तो वह पाठ इसी उद्देश्य से बोला जाता है कि यदि घर से आते हुए रास्ते मे जीवों का हनन हो गया हो तो वह पाप मिथ्या हो जाय। उक्त पाठ इस प्रकार बताया गया है:—"अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओठाणं सङ्कामिया, जीवियाओ ववरोविया" अर्थात्—मैने उक्त दस प्रकार से यदि जीवों की विराधना की हो तो वह पाप मुझे मिथ्या हो।

इस प्रकार से उक्त चौरासी लाख जीव योनियों में रहने वाले जीवों को जिस परिमाण में और जैसा जैसा शरीर मिल गया है उसीमें रहते हुए वे जीने की आशा करते हैं। इसके विपरीत उन-उन योनियों में सहजभाव में कष्ट भोगते हुए भी कोई मरने की इच्छा नहीं करता।

और श्रद्धेय स्व० पूज्य माधवमुनिजी ने भी अपनी कविता में जीवों की रक्षा के लिए भव्यात्माओं को समझाते हुए कहा है कि:—

जीव को जीतव ही प्यारो, न तन से होन चहे न्यारो।
दुखी से दुखी होय भारो, मरन तोहु लागे खारो॥
सुरपति को तो स्वर्ग मे, कृमि को विष्ट मझार,
जीतव आशा मरण भय, है निश्चय इक सार।
दोउन को ये आगम वानी॥ २॥
दया पालो बुधजन प्रानी,
स्वर्ग, अपवर्ग सौख्य दानी॥ टेक॥

भाई! कवि महोदय फर्मा रहे हैं कि जिन जिन जीवों को जैसा-जैसा भी कर्मानुसार शरीर प्राप्त हो गया है तो वे जीव सारे ही अपने अपने शरीर मे जीने की आशा करते हैं। दुखी से दुखी जीव भी यही चाहता है कि मैं अपने शरीर मे ज़िंदा रहूँ। परन्तु मरने की कोई भी अभिलाषा नहीं करता। क्योंकि जीने की आशा और मरने का भय तो सभी शरीर-धारियों को होता है। अरे! एक स्वर्ग का देवता जैसे स्वर्ग के अनुपम भोग भोगते हुए उस ऐश्वर्य सुख मे ही रहने की आशा करता है वैसे ही भिष्टा मे रहने वाला एक कीड़ा भी उस स्थान पर आनन्द का अनुभव करते हुए वहा से पृथक होना नहीं चाहता। वह वहीं रहकर जीने की आशा करता है। अर्थात्—मरने की तो कोई भी अभिलाषा नहीं करता। देखो! दुनिया भर की वेशकीमती चीजें एक तरफ और जीने की आशा एक तरफ है। कोई भी प्राणधारी

अपनी शक्त्यानुसार अपने जीवन को बचाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है।

तो पूज्य माधवमुनिजी म० इस जीवन के महत्व को समझाते हुए आगे की पक्तियों में कह रहे हैं कि:—

प्रथम तो प्रिय धन सब ही को,
लगे धन से सुत अति नीको।
पुत्र से वल्लभ तन जानो,
अंग में अधिक, इन्द्रिय मानो॥
नयन आदि इन्द्रिय से, अधिक पियारे प्रान।
या कारण कोउ मत करो, पर प्राणों की हान॥
बुरी है जग में बेईमानी॥४॥
दया पालो बुधजन प्राणी।
स्वर्ग, अपवर्ग सौख्य दानी॥

भाई! विश्व में रहने वाले जितने भी मानव हैं उन्हे पैसा बहुत प्यारा लगता है। उस धन की प्राप्ति के लिए मनुष्य देश विदेश में जाकर शारीरिक तथा मानसिक कष्ट भी सहन करता है। परन्तु एक धनपति कुवेर हो जाने पर भी यदि किसी का पुत्र बीमार हो जाता है तो उस पुत्र को स्वास्थ्य लाभ देने के लिए और उसे उक्त असाध्य बीमारी से रक्षा करने के लिए वह उसके लिए अपनी चिर सचित सपत्ति को भी लुटाने के लिए तैयार हो जाता है। अर्थात् वह व्यक्ति उस धन से भी अधिक

अपने लड़के का जीवन पसद करता है। वह अपने लड़के को निरोग करने के लिए डाक्टरों से कर जोड़ निवेदन करता है कि डाक्टर सा० ! आप भले ही मेरा सारा धन ले लीजिए परन्तु मेरे लड़के को स्वस्थ बना दीजिए। क्योंकि यदि वच्चा जीवित रहता है तो धन फिर भी कमाया जा सकता है परन्तु लड़का यदि मर जायेगा तो वह पुनः नहीं लाया जा सकेगा। तो धन से भी अधिक प्रिय एक पिता को अपना पुत्र होता है और उसके जीवन को वचाने के लिए वह अपने धन को भी एक पलड़े मे रखने को तैयार हो जाता है। परन्तु इन दोनों से भी अत्यधिक एक मानव को अपना शरीर प्यारा लगता है। वह अपने शरीर की रक्षा के लिए एक दफे तो अपने स्त्री, पुत्र, भाई, माता, पिता और अपने कुटुम्ब को भी बाजी पर लगाने को तैयार हो जाता है। अरे ! आपने देखा होगा कि एक वन्दरी अपने नन्हें वच्चे को छाती से लगाए-लगाए फिरती है और उसे अपने से पृथक नहीं होने देती है। परन्तु जव वह वन्दरी अकस्मात् नदी मे वाढ आ जाने से उसमें फंस जाती है तो वह अपने वच्चे को लेकर किसी वृक्ष पर चढ़ जाती है। लेकिन जव वाढ़ का पानी और भी अधिक चढ जाता है और उस वृक्ष की चोटी को छूने लगता है तव वही वन्दरी अपने शरीर की रक्षा के लिए अपने वच्चे को नीचे रखकर उसकी पीठ पर बैठ जाती है। तो जव एक छोटे से जानवर को भी अपना जीवन प्यारा लगता है और वह उसकी रक्षा के लिए अपने वच्चे को भी प्राणों की वाजी पर लगाकर उसे वचाने का प्रयत्न करती है तव एक मानव अपने शरीर के लिए उक्त प्रयत्न क्यों नहीं करेगा ? अर्थात्-अपने शरीर की रक्षा के लिए वह सव कुछ वलिदान

देने को तैयार हो जाता है। तो जीवन सब प्राणधारियों को प्यारा लगता है।

भाई! इस शरीर में भी पांच अग माने गए हैं जिनमें सिर को उत्तमाग माना है। उक्त सिर मे पांच इन्द्रियें रही हुई हैं और समूचे शरीर में प्राण व्याप्त हो रहे हैं। इन प्राणों के आधार पर ही यह शरीर और इन्द्रिया हलचल कर रही है। तो ये प्राण जिस-जिस योनि के जीव ने जितने जितने धारण कर रखे हैं वह उक्त प्राणों की रक्षा के लिए भरसक कोशिश करता है। कोई भी प्राणों से विमुक्त होने की इच्छा नहीं करता। इसलिए हे बुद्धिशाली मानव! जिस प्रकार तू अपने प्राणों को सबसे अधिक चाहता है उसी प्रकार दूसरे प्राणधारी भी अपने-अपने शरीर में रहे हुए प्राणों को विशेष रूप से चाहते हैं। उन प्राणों से पृथक होने की कोई भी अभिलाषा नहीं करता। तो इसी सिद्धान्त के अनुसार तेरा परम कर्त्तव्य हो जाता है कि तू भी किसी के प्राणों की घात मत कर अर्थात् किसी जीव को जीवन से मुक्त मत कर। बल्कि उन ,अशक्त प्राणियों के प्राणों की रक्षा कर।

देखो! ज्ञानी पुरुषों ने प्राण भी दस प्रकार के बताए है। उनमें से प्रथम-श्रोतेन्द्रिय वल प्राण, द्वितीय-चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण, तृतीय-घ्राणेन्द्रिय वल प्राण, चतुर्थ-रसनेन्द्रिय बल प्राण, पचम-स्पर्शेन्द्रिय वल प्राण, षष्ठम-मन बल प्राण, सप्तम-वचन बल प्राण, अष्टम-काय बल प्राण, नवम-श्वासोच्छ्वास बल प्राण और दशम-आयुष्य वल प्राण हैं और उक्त दस प्रकार के प्राणों मे से एकेन्द्रिय जीवों के शरीर मे चार प्राण पाए

जाते हैं। तो एकेन्द्रिय जीवों की घात करने वाला उनके चार प्राणों को लूट लेता है। इसी प्रकार बेइन्द्रिय जीवों मे छः प्राण पाए जाते हैं और उन प्राणों को लूटने वाला व्यक्ति छः प्राणों से रहित कर देता है। फिर तेइन्द्रिय में सात प्राण पाए जाते हैं और उन्हे लूटकर वह भी अपराध का भागी बनता है। इसके बाद चतुरेन्द्रिय जीवों में आठ प्राण होते हैं और जो उन प्राणों का सहार करता है वह महान पाप कमाता है और इनके अतिरिक्त जितने भी इस ससार मे जीव हैं वे पचेन्द्रिय कहलाते हैं। उन जीवों मे नौ या दस प्राण होते हैं। जो व्यक्ति उन जीवों की घात करता है वह उनके नौ या दस प्राणों का ही विध्वसन कर डालता है। वह व्यक्ति महान पाप का अधिकारी बन कर नीचे की ओर अर्थात् नरक-निगोद मे जाकर उत्पन्न होता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हे भव्यात्माओं! सबसे पहिले चौरासी लाख जीव योनियों मे रहने वाले जीवों के स्वरूप को समझ लो और बाद में तुम अहिंसा का पूर्णतया पालन करने मे समर्थ हो सकोगे। तो इस ससार में कोई भी प्राणधारी मरने की इच्छा नहीं करता बल्कि जीने की इच्छा करता है।

परन्तु यह मानव इतना स्वार्थी हो गया है कि वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने शरीर की सुरक्षा के लिए अथवा कुटुम्ब की रक्षा के लिए उक्त जीवों की घात करते हुए भी नहीं शर्माता। वह अपने स्वार्थ पोषण के लिए मूक जीवों के प्राण हरण कर लेता है। परन्तु जब उसे अपने किए हुए पापों का प्रतिफल भोगना पड़ेगा तब उसे अपने किए पर पश्चाताप होगा। इसलिए पहिले ही उन जीवों के स्वरूप को समझकर उक्त पाप से अपने आपको बचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भाई! उक्त चौरासी लक्ष जीवयोनियों में रहने वाले जीवों की पूर्णतया रक्षा करने के लिए साधु-साध्वियों ने सर्वविरति रुप धर्म को अर्थात् पंचमहाव्रतों को धारण कर लिए हैं। यानि वे पूर्णरूप से अहिंसक बन गए हैं। उन्होंने स्वयं किसी भी जीव को मारने, दूसरों के द्वारा मरवाने और मारने वाले को अच्छा समझने अर्थात् अनुमोदन करने का सर्वथा तीन करण और तीन योग से त्याग कर दिया है। दूसरे वे पूर्णरूप से सत्यवादी भी बन गए हैं। अर्थात्—वे झूठ बोलते नहीं, दूसरों से बुलवाते नहीं और झूठ बोलने वाले को भी मन, वचन तथा काया से अच्छा नहीं समझते। इसी प्रकार वे चोरी स्वयं करते नहीं, दूसरों से करवाते नहीं और चोरी करने वाले को भी अच्छा नहीं समझते। इस तरह वे पूर्णरूप से अचौर्यवादी बन गए हैं। चौथे महाव्रत को धारण कर लेने से वे पूर्णरूप से ब्रह्मचारी बन गए हैं। यानि वे मन, वचन, काया से कुशील का सेवन करते नहीं, दूसरों से कराते नहीं और कुशील का सेवन करने वाले को अच्छा नहीं समझते। इसी प्रकार पंचमहाव्रत को अंगीकार करने से वे पूर्णरूपेण अपरिग्रही बन गए हैं। वे स्वयं परिग्रह रखते नहीं, दूसरों से रखाते नहीं और परिग्रह रखने वाले की अनुमोदना भी नहीं करते। इस प्रकार तीन करण और तीन योग से पंचमहाव्रतों का पालन करते हुए अपने जीवन को पवित्रता के साथ गुजारते हैं। जो भी व्यक्ति संसार से विरक्त होकर साधु अवस्था को ग्रहण करता है उसे तीन करण और तीन योगों से अर्थात् मन, वचन और काया से पञ्च महाव्रतों को स्वीकार करने पड़ते हैं। उक्त साधु अवस्था में अपवाद को स्थान नहीं दिया गया है। उसे पञ्च महाव्रतों को आजीवन के लिए ही धारण करने होते हैं। इस प्रकार पञ्च महाव्रतों का धारक साधु ही इस

जगतीतल पर पूर्ण अहिंसक के रूप में माना गया है।

यहां किसी भाई की तरफ से प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि महाराज ! आपने तो गृहस्थाश्रम को छोड़कर पञ्च महाव्रतों को धारण कर लिए अतएव आप तो पूर्ण रूप से अहिंसक बन गए। आपको तो किसी भी जीव की घात करने की नौबत नहीं आती। परन्तु हम तो गृहस्थ हैं और अपने शरीर को निभाने के लिए तथा अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करने के लिए हिंसा का आश्रय लेना ही पड़ता है। हमारे द्वारा तो पग-पग पर हिंसा हो ही जाती है। तो फिर हम अहिंसा का पालन करने में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं? तो भाई! प्रश्न तो उपयुक्त ही किया गया है। परन्तु गृहस्थधर्म का पालन करते हुए भी एक व्यक्ति यदि श्रावक के बारह व्रतों को धारण करके श्रावक बन जाता है तो उसका जीवन भी मर्यादित बन जाता है। वह भी अपने आपको हिंसा से बचा सकता है। क्योंकि साधु-जीवन व्यतीत करने वाले की अहिंसा बीस विस्वा होती है और श्रावक जीवन बिताने वाले की अहिंसा सवा विस्वा होती है। क्योंकि जीव के दो भेद होते हैं—सूक्ष्म और बादर। जो जीव अपनी चर्म चक्षुओं से दिखाई न दें परन्तु केवल ज्ञानियों की दृष्टि में जो स्पष्ट रूप से दिखाई देते हों उन्हे सूक्ष्म जीव कहते हैं। उपरोक्त जीव केवल ज्ञान से ही जाने जाते हैं। सूक्ष्म जीव किसी भी शस्त्र के द्वारा काटने पर कटते नहीं और अग्नि में जलाने पर जलते नहीं। इस प्रकार के सूक्ष्म जीव मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पतिकाय में रहने वाले एकेन्द्रिय जीव हैं। उक्त सूक्ष्म जीव समग्र लोक में व्याप्त हो रहे हैं। और जो जीव सबको आंखों से दिखाई देते हैं, सर्दी, गर्मी से बचने के

लिये जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करते हैं, शस्त्र प्रहार से जो कट जाते हैं और अग्नि मे जलाने से जो जीव जल भी जाते हैं वे बादर जीव कहलाते हैं। इस प्रकार के बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चतुरेन्द्रिय और पचेन्द्रिय के जीव बादर जीव कहलाते हैं। उक्त सूक्ष्म और बादर जीव भी दस-दस प्रकार के हैं। अर्थात् पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दोनों ही दस-दस प्रकार के हो जाते हैं। तो ये दस प्रकार के जीवों के रहने के स्थान हैं। उक्त दोनों ही प्रकार के जीवों को स्थावर और जगम के नाम से भी सम्बोधित किए जाते हैं। यानि जो जीव स्थिर रहने वाले हैं उन्हें स्थावर और जो जीव चलने-फिरने वाले हैं उन्हें जङ्गम जीव कहते हैं। तो जो साधु होता है वह उक्त सभी प्रकार के जीवों की रक्षा करता है। इसलिए एक साधु के तो षट मे वीस विस्वा दया होती है। जबकि एक गृहस्थ सवा विस्वा ही दया का पालन कर सकता है। एक श्रावक अपने जीवन में केवल संकल्पी हिंसा से बच सकता है। वह सकल्प करके किसी जीव की घात नहीं करता। परन्तु उसे अपने शरीर निर्वाह के लिए पाचों ही प्रकार के आरम्भ करने पड़ते हैं। क्योंकि उसे शरीर निर्वाह के लिए भोजन बनाना पड़ता है, मकान भी बनवाना पड़ता है, बच्चे, बच्चियों की शादी भी करनी पड़ती है और भी नाना प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। और उक्त सभी प्रकार के कार्य करने मे उसे हिंसा का सेवन करना ही पड़ता है। परन्तु एक श्रावक को सापराधी को छोड़कर निरपराधी की हिंसा करने का त्याग होता है। वह जानबूझकर किसी भी निरपराधी जीव की घात नहीं करता। परन्तु कभी-कभी निरपराधी जीव की उसके द्वारा घात होजाती है। जैसे तागे मे घोड़ा जुता हुआ ठीक चाल से

चल रहा है परन्तु कभी कभी निष्कारण ही उस पर चाबुक का प्रहार कर दिया जाता है। अथवा बैलगाड़ी मे जुते हुए बैलों की पूछ मरोडी जाती है और आर भी लगा दी जाती है। परन्तु जो समझदार श्रावक होता वह उक्त प्रकार का हिंसात्मक व्यवहार कभी नहीं करता। हां! जो दुष्ट, लुटेरा बदमाश या चोर व्यक्ति है और वह उसके धन, स्त्री वगैरह को लूटना चाहता है और उसकी स्त्री के साथ बलात्कार करना चाहता है तो उस अपराधी व्यक्ति से अपने आपको और अपने धन या स्त्री को बचाने के लिए वह शस्त्र प्रहार करके लड़ाई भी कर सकता है और इस प्रकार अपने धन तथा स्त्री की सुरक्षा कर लेता है। उक्त लडाई मे यदि वह दुष्ट बदमाश मनुष्य मर भी जाता है तब भी उस श्रावक का प्रथम अहिंसा व्रत नहीं टूटने पाता। इस प्रकार एक श्रावक आंशिक रूप मे अहिंसा का पालन कर लेता है।

भाई! कभी-कभी कोई मांसाहारी भी हमारा प्रवचन सुनने को आता है और जब उससे कहा जाता है कि भाई! मांसाहार करना छोड दो—तब वह कहता है कि महाराज! आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है परन्तु यह आदत छूटनी बहुत मुश्किल है। जब वह सर्वथा मांसाहार का त्याग करने को रजा-मन्द नहीं होता तब उससे इस प्रकार कहा जाता है कि अच्छा! तुम पूर्ण रूप से मांसहार का त्याग नहीं कर सकते तो अपने हाथ से जानवर मारने का तो त्याग कर लो। और इस प्रकार उसे आंशिक रूप मे ही जीव हिंसा करने का त्याग करा दिया जाता है। क्योंकि भाई! त्याग भी दो प्रकार का होता है-सापेक्ष और निरपेक्ष। सापेक्ष त्याग मर्यादा सहित होता है और निरपेक्ष मे किसी प्रकार की मर्यादा नहीं होती। तो इस प्रकार से साधु

जीवन में बीस विस्वा अहिंसा का पालन होता है और श्रावक सवा विस्वा ही अहिंसा का पालन कर सकता है।

इसी सम्बन्ध मे शास्त्रकारों ने एक गाथा में बताया है कि:—

१० १० ५ ५
जीवा सुहुमाथूला, सकप्या आरभा भवे दुविहा।
२॥ २॥ १। १।
सवराह, निरवराह, सविक्खा, चैव निरवक्खा ॥

भाई ! अब मैं आपके समक्ष अहिंसा से सम्बन्धित एक सच्ची घटना रख देना उचित समझता हूँ जिसे सुनकर आपको मालूम हो जायगा कि जब कभी किसी अहिंसक मानव के हृदय मे भगवती अहिंसा का निवास हो जाता है और दया का स्रोत उमड पडता है तो वह किसी प्रकार अपनी जान पर खेल कर भी दूसरी आत्माओं की रक्षा करने के लिए तैयार हो जाता है। इसी घटना को स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी मा० ने अपनी भाषा मे कविता बद्ध करके सर्व साधारण की जानकारी के लिए उपस्थित कर दी है। मैं निम्न कविता के आधार पर आप लोगों को विवेचनात्मक ढ ग से समझाने का प्रयत्न करु गा।

कवि अपनी निम्नलिखित कविता मे कह रहे हैं कि—

यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी।
हुए बदी छोड महाराज, बड़े उपकारी ॥ टेक ॥
प्रसिद्ध मालव देश में धारा नगरी।
मशहूर जगत में, जाने दुनिया सगरी ॥

है शासक वहां का यदुराव एक भारी ॥ १ ॥
हुए वंदी छोड़ महाराज वड़े उपकारी ।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

भाई ! इसी भारतवर्ष के मालव प्रान्त में एक धारा नाम की नगरी थी । भारतवर्ष जब अंग्रेजों की परतन्त्रता से मुक्त होकर स्वतन्त्र हुआ तब सारे प्रान्तों का विलीनीकरण भारत सरकार द्वारा किया गया । उसी कानून से समस्त मालव प्रान्त मध्य भारत के नाम से विख्यात हुआ । और वाद मे अन्यान्य शहरों को मिलाकर इसे मध्य प्रदेश के नाम से पुकारा जाने लगा । परन्तु यही प्राचीनकाल मे मालवा कहलाता था । तो उस समय धारा नाम की नगरी मालवा की राजधानी थी । उक्त नगरी मे यदु नाम का राजा राज्य करता था ।

तदन्तर बताया जाता है कि:—

हुआ नृप के तन मे रोग वड़ा दुखकारी,
कर लिए वहुत इलाज, लगी नहीं कारी ।
इक पंडित आकर वोला इस परकारी ॥ २ ॥
हुए वंदी छोड महाराज वड़े उपकारी ।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

भाई ! इस ससार में शरीर धारियों के साथ जन्म, जरा, रोग और मृत्यु तो लगे हुए ही हैं । इनसे बचा हुआ व्यक्ति कोई भी नहीं मिल सकता । जब शरीर मे असाता वेदनीय कर्म का

प्रादुर्भाव हो जाता है तो अकस्मात् नाना प्रकार के रोग शरीर
में फूट पडते हैं। तो इसी नियम के मुताबिक महाराज यदुरात्र
के शरीर मे भी महान् भयकर रोग उत्पन्न हो गया। चूकि उक्त
रोग धारा नगरी के महाराज्ञ के शरीर में व्याप्त हुआ था अतएव
उक्त असाध्य बीमारी को मिटाने के लिए उन्होंने वडे बड़े डाक्टरों
वैद्यों और हकीमों से अपार धन राशि देकर भी इलाज कराया
परन्तु दुर्भाग्य वश कीमती से कीमती दवा सेवन कराने पर भी
आरोग्य लाभ नहीं मिल सका। इस प्रकार महाराज को तरह-
तरह की दवा सेवन करते हुए काफी समय व्यतीत हो गया और
दवा लेते लेते वे भी तग आगए परन्तु रोग घटने के वजाय बढता
ही गया। भाई! एक धनवान व्यक्ति का इलाज करने के लिए
विना वुलाए भी कई डाक्टर और वैद्य पहुँच जाते हैं परन्तु एक
गरीब व्यक्ति को रोग से कराहते हुए देखकर भी बहाना वनाकर
चले जाते हैं। क्योंकि उन्हे एक धनवान का इलाज करने पर
हजारों रुपयों की प्राप्ति हो सकती है जब कि एक गरीब व्यक्ति
को मुफ्त मे दवा देनी पड़ती है। यद्यपि उक्त पैशा एकान्त परो-
पकार का है परन्तु आज कल स्वार्थ लोलुपी और लोभी डाक्टरों
तथा वैद्यों ने इसे वदनाम कर दिया है। वे केवल इस धन्धे
को अपनी आजीविका उपार्जन करने के लिए ही सीखते हैं। तो
राजा की उक्त बीमारी से फायदा उठाने के लिए एक ब्राह्मण
पण्डित भी उनकी सेवा में जा पहुंचा। उसने अपना पंचाङ्ग
निकालकर मीन-मेव-मकर-कुम्भ गिने और फिर कहने लगा कि
महाराज! आपके शरीर मे तो अमुक ग्रह का जोर है और उसकी
कुदृष्टि के प्रभाव से आपके शरीर में यह रोग व्याप्त हो गया है।
परन्तु मेरे पास बड़े-बड़े अनुभवि ज्योतीषियों द्वारा लिखित कई

साधन मौजूद हैं। यदि आप इस असाध्य बीमारी को मिटाने के लिए उक्त साधनों मे से प्रयोग करेंगे तो अवश्यमेव सफलता मिल सकती है।

राजा ने उक्त ब्राह्मण पण्डित की बात बड़े ध्यान से सुनी और चूंकि वह उक्त बीमारी से अत्यधिक परेशान हो चुका था अतएव कहने लगा कि पण्डितजी ! आप जो भी उपाय बताएंगे मैं उसी के अनुसार सब कुछ प्रयोग करने को तैयार हूँ। इस प्रकार वह पण्डित राजा को प्रोत्साहित करके कहने लगा कि महाराज ! मैं आपकी सेवा में निम्न प्रयोग रख रहा हूँ। आप कृपया ध्यान पूर्वक सुनें:—

कहे नौ सौ जोड़े, बींद-बींदणी लाओ।
घानी में पेल कर, खून से होज भराओ॥
फिर न्हाओ उसमे, शीघ्र मिटे बीमारी॥ २॥

हुए बदी छोड़ महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी॥ टेक॥

भाई ! वह ब्राह्मण पंडित जाति से तो अवश्यमेव कुलीन था परन्तु विचारों से अधमाधम बन चुका था। वह लोभ के वशीभूत होकर धर्माधर्म का भी भान नहीं रख सका और निम्न हिंसा का कार्य करवाने के लिए भी तैयार हो गया। उसने अपने मनमें विचार किया कि यदि राजा इस प्रयोग से अच्छा हो गया तो मुझे राजा की तरफ से बड़ा सन्मान और धन प्राप्त हो जाएगा। इसी लोभ से उसने राजा से निवेदन किया कि महा-

राज ! जिन स्त्री-पुरुषों के अषाढ़ शुक्ला नवमी को विवाह संस्कार हुए हों ऐसे नौसौ जोड़े एकत्रित किए जाय। इसके बाद उन अठारह सौ स्त्री-पुरुषों को घानी में पिलवाए जाय और उक्त अठारह सौ स्त्री-पुरुषों का खून एक हौज में जमा किया जाय। यदि आप उस खून से भरे हुए हौज में स्नान कर लेंगे तो आपकी उक्त असाध्य बीमारी मिट सकती है। आप फिर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जायेंगे।

भाई ! यद्यपि मानवता के नाते उसको उक्त प्रकार का प्रयोग बताते हुए लज्जा आनी चाहिए थी परन्तु वह पडित लोभ के वशीभूत होकर अपने कर्तव्याकर्तव्य का भी भान नहीं रख सका और अठारह सौ पुरुषों को बुरी तरह मरवाने का उपाय बताने को तैयार होगया। तो यह सब कुछ अमानवोचित कार्य केवल उसके लोभ के कारण ही उपस्थित हुआ। और शास्त्रकारों ने लोभ को पाप का बाप बताया है। एक मानव लोभ के वशीभूत होकर इतना क्रूर एव हिंसक बन जाता है कि अठारह सौ स्त्री-पुरुषों की हिंसा का कार्य भी करने को तैयार हो जाता है। वह लोभ के वशीभूत होकर यह भी भूल जाता है कि इस महान हिंसा के पाप के भार से भारी होकर मुझे भविष्य में कितने महान कष्ट उठाने पड़ेंगे।

जब उक्त ब्राह्मण पडित ने इस प्रकार उपाय बता दिया तो एक राजा होते हुए भी अपनी प्रजा के खून से स्नान करने को तैयार हो गया। भाई ! यह मानव अपने इस नाशवान शरीर पर इतना विमोहित हो रहा है कि वह इसकी रक्षा के लिए कितने ही पापों का सेवन करने को तैयार हो जाता है। उसे किंचित् भी

यह ख्याल नहीं आता कि इस छोटीसी जिदगी के खातिर मैं इतने भारी पाप का बोझ क्यों लादूँ। जब मेरे पाप कर्मों का उदय आयगा तब मुझे ही इसका असह्य परिणाम भोगना पड़ेगा। परन्तु उस राजा ने भी अपने शरीर को निरोग बनाने के लिए उक्त पण्डित के प्रस्ताव का तहदिल से समर्थन किया। उसने अपने दिल में यही दृढ़ निश्चय कर लिया कि अपनी जान बचाने के लिए भले ही अठारह सौ स्त्री पुरुषों की जान क्यों न चली जाय परन्तु मुझे तो निरोग होना ही चाहिए और शासन करने के लिए इस ससार मे जीवित रहना ही चाहिए। अतएव उस निर्दयी एव क्रूर शासक ने भी बीमारी से घबरा कर अपने अनुचरों को हुक्म दे दिया कि:—

हुआ जाहिर हुक्म यह आज्ञा कोय न तोड़े,
कर लिये इकट्ठे नृप ने, नौ सौ जोड़े।
दिन किया मुकर्रर नृप ने दया विसारी ॥ ४ ॥
हुए बन्दी छोड महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥टेक॥

देखो ! जो सत्ताधारी शासक होता है उसके घर में महान दया का स्रोत उमड़ते रहना चाहिये। और फिर उसकी प्रजा का एक-एक बच्चा उसके लिए अपने बच्चे बच्ची से कम नहीं होता। वह प्रजा के लिए मां-बाप की जगह होता है। परन्तु जब वही राजा अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है और निर्दयी बन जाता है तो वही राजा भविष्य में राजेश्वरी से नरकेश्वरी बन कर अपने किए हुए पाप कर्मों का फल भोगता है

और कभी कभी जब राजा कठोर बन जाता है तो उसके परिणाम-स्वरूप प्रजा को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है।

किसी नीतिकार ने भी कहा है कि:—

और कोई चूके तो नृप पास होत न्याय,
नृप ही चूके तो कहो कहा जाइए।
और कोई भूले तो पण्डित के पास होत न्याय,
पण्डित ही भूले तो कौन समझाइए॥
और कोई डूबे तो नाव से तिराई लेत,
नाव ही डूबे तो कहो कहां से तिराइए।
भवन में लगे आग, पानी से बुझाई जात,
पानी मे लगे आग तो कहा से बुझाइए॥

उक्त कविता में कवि ने अपनी अनुभवशीलता से यह बताया है कि यदि कोई मनुष्य कारणवशात् कोई अपराध कर लेता है तो वह कानून के शिकजे मे फंस जाता है। जब वही अपराधी राजा की सभा मे इन्साफ के लिए लाया जाता है तो राजा सोच-समझकर इन्साफ करता है और अपराधी को सजा भोगनी पड़ती है। परन्तु यदि राजा ही न्याय की कुर्सी पर बैठकर कोई भारी अपराध कर ले तो अब बताइए कि राजा का इन्साफ कहां और किसके पास कराया जाय। अर्थात्—राजा से ऊंची जगह नहीं है जहा कि राजा का इन्साफ कराया जाय? इसी प्रकार यदि गाव के लोग बैठकर किसी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करने लगे परन्तु वह समस्या उन लोगों से नहीं सुलझ

सकी तो वे किसी विद्वान पडित के पास जाकर अपनी समस्या को सुलझा लेते हैं। परन्तु यदि उनके पास जाकर भी समस्या का हल नहीं निकल सके और वे ही भूल कर जाय तो फिर किसके पास समस्या सुलझाई जा सकती है ? अर्थात् अन्यत्र किसी के पास वह समस्या नहीं सुलझाई जा सकती है। फिर आगे बताया गया है कि किसी नदी में डूबते हुए व्यक्ति को नाव में बिठाकर पार किया जा सकता है परन्तु यदि नाव ही डूबने लगे तो फिर उसे कैसे तिराया जा सकता है ? अर्थात् नाव को कोई नहीं तिरा सकता। और अन्तमे कहा गया है कि यदि किसी मकान में आग लग गई हो तो उसे पानी के द्वारा बुझाकर शान्त की जा सकती है। परन्तु यदि पानी मे ही वडवानल लग गया हो तो वह कैसे बुझाया जा सकता है। अर्थात उसे बुझाने का कोई साधन नहीं है। तो यहां कहने का यही प्रयोजन है कि जो राजा सबका रक्षक कहलाता है वही यदि भक्षक बन जाय और अपने शरीर की रक्षा के लिए एक नहीं परन्तु अठारह सौ स्त्री-पुरुषों को मरवाने के लिए तैयार हो जाये तो क्या वह राजा कहलाने का अधिकारी हो सकता है ? कदापि नहीं। वह रक्षक नहीं किन्तु भक्षक कहलाने का पात्र है। ओहो ! उक्त यदुराव राजा भी अपने एकमात्र शरीर को निरोग बनाने के लिए कितना स्वार्थी बन गया कि उक्त स्त्री पुरुषों की नृशसता पूर्वक हत्या करने को भी तैयार हो गया। इसने अपने जीवन को तो अनमोल समझा और दूसरों के जीवन को न्याय की कसौटी पर जांचा ही नहीं।

भाई ! आज हमारे स्वतंत्र भारत की भी यही स्थिति हो रही है। आज के मत्रीगण स्व० महात्मा गाधी के अनुयायी

कहलाकर और अहिंसा के पुजारी कहलाकर भी जो-जो हिंसाकी प्रवृत्तिएं कर रहे हैं वे किसी से छिपी हुई नहीं हैं। वे मंत्रीगण अहिंसक संविधान सभा में बैठकर भी हिंसा को प्रोत्साहन दे रहे हैं। आज जितने भी हिंसा वृद्धि के बिल पास हो रहे हैं वे केवल अधिक से अधिक पैसा पैदा करने के लिए ही बनाए जा रहे हैं। आज की सरकार केवल व्यापारी सरकार बन गई है। वह लाखों रुपया विदेशों से कमाने के लिए आज लाखों बदरों को पकड़वा कर अमेरिका, इङ्गलेंड या रूस भेज रही है। भारत की खाद्य समस्या का हल करने के बहाने यहां भी मत्स्योत्पादन, मुर्गीपालन केन्द्र और मूक पशुओं का वध करने के केन्द्र खोलती जा रही है। आज हजारों की सख्या में भारत के कारखानों में गायें काटी जा रही है जिनका मांस और चमड़ा विदेशों में भेजा जा रहा है। तो इस प्रकार कहने मे भी अतिशयोक्ति न होगी कि आज ब्रिटिश हुकूमत के समय से भी कहीं अधिक हिंसा को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार ये सारी हिंसा को प्रोत्साहन देने वाली योजनाए केवल अधिक से अधिक पैसा उपार्जन करने के लिए ही अमल में लाई जा रही हैं। तो कहने का सारांश यह है कि अपने स्वार्थ के लिए या अधिक धन कमाने के लिए मनुष्य धर्माधर्म और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान भूल कर दूसरे प्राणियों का सर्वनाश करने को भी तैयार हो जाता है। भाई! उक्त घटना तो बहुत समय पुरानी है परन्तु आज भी ऐसे-ऐसे हृदय द्रावक दृश्य जहां-तहा देखने को मिल ही जायेंगे।

तो उक्त यदुराव महाराज से जहां कि न्याय की आशा की जा रही थी परन्तु उसने अपने आपके शरीर को निरोग

वनाने के लिए निरीह प्रजा के अठारह सौ स्त्री-पुरुषों को पकड़वाने का ओर्डर दे दिया। अब कोई अपने दुख-दर्द की गाथा सुनाये तो किसे जाकर सुनाए। तो राजा ने सेनापति को बुलाकर हुक्म दे दिया कि जिन स्त्री-पुरुषों के विवाह आषाढ़ शुक्ला नवमी को हुए हों ऐसे नौ सौ जोड़े राजी खुशी से अथवा जवर्दस्ती से पकड़ कर मेरे सामने लाकर हाजिर करो।

राजा का उक्त तानाशाही आर्डर होते ही सेनापति सदल वल सहित निकल पड़ा और कुछ ही दिनों के पश्चात् वह प्रजा पर जुल्म करते हुए जवर्दस्ती अठारह सौ स्त्री-पुरुषों को वन्दी वना कर ले आया। उसने उन सव स्त्री-पुरुषों को जेलखाने में लाकर वन्द कर दिए। उस क्रूर सेनापति ने अपने मन में यह तनिक भी नहीं विचारा कि इनकी नामोजूदगी मे उनके माता-पिता, भाई-वहिन और अन्य कुटुम्बियों पर क्या वीतेगी। वह भी लोभ के वशीभूत होगया था और इसी कारण उसने दया को हृदय से निकाल कर उक्त अमानवोचित कार्य करने में ही अपने भविष्य को उज्जवल समझ लिया।

उन अठारह सौ ही स्त्री पुरुषों को जैलखाने में वन्द करके वह सेनापति महाराज के पास पहुंचा और हाथ जोड़ कर अर्ज करने लगा कि महाराज ! आपकी आज्ञानुसार नौ सौ ही जोडे एकत्रित करके जेलखाने में वन्द कर दिए गए हैं।

यह सुन कर राजा अतीव प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल उक्त व्राह्मण पंडित को वुलवाया। जव वह पण्डित महाराज की सेवामें हाजिर होगया तो राजा ने उससे कहा कि पण्डितजी ! तुम्हारे

कहने के मुताबिक नौ सौ ही स्त्री-पुरुषों के जोडे मँगवा लिए हैं। अब अपना पञ्चाङ्ग देख कर यह बताओ कि किस शुभ मुहूर्त में उनके खून से स्नान किया जाये? उस पण्डित ने भी बडी गम्भीरता से अपने पञ्चाङ्ग को देखकर और मीन मेष लगाकर प्रत्युत्तर दिया कि महाराज! अमुक दिन शुभ है और उस दिन रक्त स्नान करने से आपकी व्याधि शीघ्र ही शात हो जायेगी। राजा ने उक्त पडित को काफी धन देकर विदा कर दिया।

भाई! उक्त राजा के अनीतिपूर्ण व्यवहार की कहानी सारे शहर में बिजली की तरह फैल गई। और जब यही बात उन मरने वाले अठारह सौ ही स्त्री पुरुषों के कानों मे पहुंची कि अमुक दिन हम सब बलिदान के बकरों की तरह बलिवेदी पर चढा दिए जायेंगे तो वे सब आपस में परामर्श करने लगे कि सेनापति तो हम लोगों को कुछ और ही बात कहकर लाया है और यहा तो मामला ही दूसरा होने वाला है अतएव अब हमें क्या करना चाहिए। परन्तु उन परतन्त्र प्राणियों के भगवान से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य उपाय सोचने से भी क्या होने वाला था। वे मूक निरपराध पशुओं की तरह बेजबान हो चुके थे। और शहर के दूसरे लोग भी राजा के अन्याय की बात सुनकर आपस में तो तरह तरह की बातें करते परन्तु बिल्ली के सामने आकर उसके गले में घण्टी बांधना बहुत मुश्किल था। जैसे एक शेर भेड़ों या हिरनियों के टोले मे से किसी जानवर को बलात् उठा ले जाता है और फाड़कर खा जाता है परन्तु उसका सामना करने की ताकत किसी में नहीं होती। बल्कि वे सब अपनी जान बचाने की फिक्र से इधर-उधर तेजी से भाग जाते हैं। तो यही परिस्थिति उस शहर के लोगों की भी थी। वे अपने दिल मे तो अत्यन्त

क्रोधित हो रहे थे परन्तु एक सत्ता का मुकाबला करने की उनमें से किसी में भी ताकत न थी। अतएव वे अपने-अपने मन मसोसकर केवल भगवान के भरोसे चुप हो कर बैठ गए।

भाई! वे लोग तभी एक अन्यायी राजा से प्रतिशोध ले सकते थे जबकि उनकी संगठनशक्ति मजबूत होती। यदि वे सगठित होकर निर्भीकता के साथ अन्याय का बदला लेने जाते तब तो वे उक्त राजा को हमेशा के लिए अपने पाप का प्रायश्चित करवाने में समर्थ हो सकते थे। परन्तु जहां बिखरी हुई शक्ति हो वहां अपने कार्य मे सफलता प्राप्त होना नामुमकिन सी-चीज है। तो उक्त शहर की प्रजा का भी यही हाल था। उनमें भी अलग-अलग सोचने की शक्ति थी न कि सगठित रूप मे और इसी कारण वे अपने कार्य मे सफल न हो सके।

परन्तु ऐसा भी देखा और सुना गया है कि प्रजा में से कोई न कोई वीर पुरुष अपवाद रूप में निकल ही जाता है जो आततायी, जुल्मी, अन्यायी और दुष्ट सत्ताधीश का शेर की तरह मुकाबला करके हमेशा के लिए उसे पछाड़ कर प्रजा में अमन-चैन कायम करा देता है। तो उक्त निश्चित तिथि आने से पूर्व ही कोई न कोई माई का लाल या शेरनी का बच्चा उक्त हिंसात्मक प्रवृत्ति को रोककर अपना तथा अपने माता-पिता का नाम रोशन करने के लिए तैयार हो ही गया। उसी व्यक्ति का परिचय देते हुए कवि महोदय कह रहे हैं कि:—

रहे राजपूत इक, उसी शहर के मांही,
जेलर के नीचे था वो, खास सिपाही।
शुभ नाम शेरसिंह योद्धा, था बलकारी॥ ५॥

हुए बदी छोड महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

भाई। उसी शहर मे शेरसिंह नाम का एक राजपूत सरदार भी रहता था। उसका जैसा नाम था वैसी ही उसके अन्दर वीरता, निर्भीकता और सहृदयता भी थी। एक सच्चे क्षत्रिय का धर्म यही है कि वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने से कमजोर की रक्षा करे। परन्तु आज के जमाने में क्षत्रिय नाम धराने वाले तो बहुत से राजपूत हैं परन्तु जिनके हृदय में क्रूरता भरी हुई है। वे अपने धर्म को भूल कर आज मूक एवं निरीह पशुओं को एक झटके में या एक गोली में मार देने में ही अपनी वीरता और क्षत्रियत्व समझते हैं। परन्तु वह शेरसिंह दया की साक्षात् मूर्ति था। वह दूसरे भाइयों के साथ होने वाले अन्याय एवं अत्याचार को सहन करने मे भी पाप और बुज-दिली समझता था।

अतएव उसने उक्त वारदात को सुनकर अपने मन में विचार किया कि,—

वह सोचे नृप अन्याय करे, यह भारी।
पहरे पर मेरी आज, रात की बारी॥
मैं करूं सभी को मुक्त, दया दिल धारी॥ ६॥

हुए बदी छोड महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्ले धार की कथा, अजब है प्यारी॥ टेक ॥

देखो ! यह दया भगवती किसी एक के ठेके की चीज नहीं है। यह तो जिस किसी के अंतःकरण में मानवता का प्रवेश होते ही प्रकट हो जाती है। वह मानवता के कारण किसी भी दुखी के दुख को देखकर विह्वल हो उठता है और उसे दुख से मुक्त करके ही अपने जीवन में शांति प्राप्त करता है। तो शेरसिंह को भी जब यह रहस्य मालूम हुआ कि इस प्रकार ये अठारह सौ स्त्री पुरुष धोखा देकर महाराज की आज्ञानुसार बंदी बनाए गए हैं और अमुक दिन इन सबको कोल्हू में पिलवा दिया जायेगा तो उसका हृदय दया से पसीज गया। वह विचारने लगा कि एक मानव हृदय इतना क्रूर और कठोर कैसे बन गया! और प्रजा भी इतनी कायर और बुजदिल कैसे बन गई कि अपने प्रति किए गए अन्याय का प्रतिकार करने की भी हिम्मत नहीं हो रही है। खैर ! इनमे हिम्मत नहीं रही तो उसका कारण है कि इनमें क्षत्रियत्व नहीं है। परन्तु अरे शेरसिंह ! तू तो एक क्षत्राणी का पुत्र है और तुझे तो मानवता तकाजा कर रही है कि तेरी आंखों के सामने अमुक दिन ये अठारह सौ ही स्त्री पुरुष बेदर्दी के साथ कोल्हू मे पेल दिये जायेंगे तब तू उक्त वीभत्स दृश्य को कैसे देख सकेगा। इससे तो अच्छा यही है कि उक्त तिथि से पूर्व ही तू किसी प्रकार भी इन्हें यहां से मुक्त करादे। ताकि इन असहायों के प्राणों की रक्षा भी हो जायेगी और तेरा क्षत्रिय होना भी सार्थक हो जावेगा। यदि तू इन्हें नहीं बचाएगा तो ये बिना मौत मारे जायेंगे और तेरा क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होना तथा मानव नाम धराना भी निरर्थक साबित होगा। अतएव तेरा फर्ज यही है कि मानवता के नाते और जेलर के हाथ के नीचे होते हुए जब तेरी ड्यूटी आवे तो तू इन्हें जेल से मुक्त करदे। इस

प्रकार से तू इतनी जानों को बचाकर पुण्य का भागी बन जायेगा और अपना फर्ज भी अदा कर देगा। यदि फिर राजा तुझे अपराधी समझकर मरवाना चाहे तो खुशी-खुशी वीरता दिखाकर एक वीर की मौत मर जाना। अरे! तेरे एक के मर जाने पर भी अठारह सौ स्त्री-पुरुष तो बच जायेंगे! इससे बढ़कर और पुण्य कार्य क्या हो सकता है! मेरा जीवन यदि दूसरों की भलाई में काम आ सकता है तो अवश्य आने दे। तेरा नाम इस लोक और परलोक में भी अमर हो जायेगा।

यह विचार कर और दृढ़ निश्चय करके वह वीर-दयालु शेरसिंह अपनी माता के पास आया और माता से बड़े प्रेम और विनम्र शब्दों में कहने लगा कि:—

> अब कहे माता से आय, अर्ज सुन लीजे।
> थाली मे भोजन शीघ्र, मुझे रख दीजे॥
> मैं जाऊँ नौकरी काज, सुनो महतारी॥ ७॥
>
> हुए बन्दी छोड़ महाराज बड़े उपकारी।
> यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी॥टेक॥

भाई! शेरसिंह ने अपनी माता से विनम्र शब्दों मे कहा कि माताजी! मुझे शीघ्र भोजन परोस दो। क्योंकि मुझे अपनी ड्यूटी पर आज जल्दी जाना है। यह सुनते ही उसकी माता ने बड़े प्यार से भोजन की थाली परोस दी। वह माता के हाथ का परोसा हुआ भोजन बड़े प्रेम से जीमने लगा। भोजन करते हुए वह माता से मीठे शब्दों मे पूछने लगा कि हे माताजी!:—

एक पूछू तुमसे बात, मात हित आनी,
एक के बदले बचें, सैंकड़ों प्राणी।
कोई करे काम तो क्या, है राय तिहारी ॥ ८ ॥

हुए बंदी छोड़ महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

शेरसिंह ने पूछा कि माताजी ! यदि एक के बदले अनेक व्यक्तियों के प्राण बचते हों तो वह सत्कार्य मुझ जैसे राजपूत क्षत्रिय को करना जायज है अथवा नाजायज ? तब माता ने शेर-सिंह से प्रश्न किया कि हे बेटा ! आज जो तू क्षत्रियत्व को ललकार रहा है तो ऐसी कौन सी अजीबोगरीब बात उपस्थित हो गई है ? तब शेरसिंह ने अपनी माता के प्रश्न का खुलासा करते हुए कहा कि हे माताजी ! अपने नगर का राजा यदुराव कई दिनों से रुग्णावस्था मे शैय्या पर पड़ा हुआ है। उसने बहुत इलाज करवाया परन्तु किसी भी डाक्टर और वैद्य की दवा उसे असाध्य रोग से मुक्त न कर सकी। परन्तु अभी-अभी एक ब्राह्मण पण्डित ने अपने लोभ के वशीभूत होकर और धर्म कर्म को बिसार कर उसे एक ऐसा उपाय बताया है जो कि अमानवोचित है। उसने कहा कि हे राजन् ! यदि अषाढ़ शुक्ला नवमी के दिन विवाह संस्कारित नौ सौ जोड़े मंगाए जांय और उन्हें कोल्हू में पिलवाकर उनके रक्त से स्नान किया जाय तो आप शीघ्र ही स्वास्थ्यलाभ प्राप्त कर सकते हैं। राजा ने भी उक्त पण्डित के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और केवल अपने शरीर को निरोग बनाने की दृष्टि से उसने अपने सेनापति को आज्ञा देकर उक्त नौ सौ ही जोड़े मंगवा कर जेलखाने मे बंद करवा दिए हैं। अब राजा के

स्नान करने की तिथि भी मुकर्रर होगई है। यदि उन निरपराधी अठारह सौ स्त्री-पुरुषों को उक्त तिथि से पहिले कारागार से मुक्त नहीं कराया जायेगा तो वे सब बेदर्दी के साथ मौत के घाट उतार दिए जायेंगे। परन्तु मैं एक मानव और क्षत्रिय पुत्र होने के नाते उन्हें असमय मे ही मरते हुए नहीं देखना चाहता। बल्कि मैं अपनी अकेली जान देकर भी उनकी अठारह सौ स्त्री-पुरुषों के प्राण बचाना चाहता हूँ। और इसी शुभकर्म के लिए मैं तुम्हारी राय की याचना कर रहा हूं। हे माताजी! क्या तुम इस महान धर्म कार्य के लिए खुशी खुशी अपने प्राणप्रिय क्षत्रिय बालक को अपना फर्ज अदा करते हुए देखना गवारा कर सकोगी?

भाई! यद्यपि उक्त दर्दनाक बात को सुनकर कोई भी दूसरी माता अपने इकलौते पुत्र के मोह मे फसी हुई और मातृ-हृदय की ममता उसे प्राण विसर्जन करने से बाध्य कर सकती थी। परन्तु वह भी एक वीर क्षत्राणी थी और उसे भी अपना धर्म बाध्य कर रहा था अतएव वह सहज भाव में जोशभरे शब्दों में बोल उठी कि हे बेटा! तूने मेरा उज्जवल दूध पिया है अतएव तेरे अंतकरण मे जो दूसरे निरपराधियों को बचाने और अन्यायी को करारा सबक सिखलाने की उज्जवल भावना उत्पन्न हुई है वह सराहनीय है। मैं तेरे उन्नत विचारों की भूरि-भूरि प्रशसा करती हू। हे बेटा! यदि तू उन अठारह सौ स्त्री-पुरुषों के प्राण बचाते हुए अपने एक के प्राण विर्जन भी कर देगा तब भी कोई हर्ज नहीं। तू इस प्रकार से धर्म युद्ध में लड़ते-लड़ते मरकर भी जिंदा रहेगा और दुनियां की नजरों मे अमर हो जायगा। इस प्रकार उसकी माताने भी उसे हतोत्साहित न करके द्विगुणित प्रोत्साहन दिया। वह अपने पुत्र से कहने लगी कि हे बेटा!—

कहे माता है यह काम पुण्य का कीजे।
कुछ हरज नहीं बेटा! तू सुन लीजे॥
फिर शस्त्र धार कर चला, आप उस बारी॥ ६॥

हुए बंदी छोड़ महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्ले धार की कथा, अजब है प्यारी॥टेक॥

माता ने भी अपने वीर पुत्र की परोपकार की भावना से प्रसन्न होकर कहा कि बेटा! यह तो बडे पुण्य का कार्य है। यदि तेरे एक के प्राण विसर्जन करने पर हजारों प्राणियों को अभय-दान मिलता हो तो प्राणों की बाजी लगाने मे कभी सकोच मत कर। तुझे इस नेक काम मे अवश्यमेव सफलता प्राप्त होगी। अरे! दूसरों की रक्षा मे काम आ जाने से बढ कर और क्या पुण्य हो सकता है।

माता के मुख से उक्त आशीवचन सुनकर शेरसिंह का हौंसला और भी अधिक बढ़ गया। उसे अपने शुभ कार्य में सफलता की पूर्ण आशा हो गई। आखिर! शेरसिंह ने अपनी वर्दी पहनी और शस्त्र धारण करके अपनी मां के अन्तिम बार चरण स्पर्श किए। उसकी माता ने भी उसे अंतिम विदाई देते हुए भावपूर्ण शब्दों मे कहा कि बेटा! तू जिस पुण्य कार्य के लिए मुझ से पृथक होकर जारहा है उसमें पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर अपना मानव जीवन सफल कर। मैं तेरी जननी हूँ और मैंने तुझे बडे लाड-प्यार से अपनी आंखों का तारा मानकर इतना बड़ा किया है। परन्तु आज मैं ही तुझे अपने हाथों से अन्तिम विदाई दे रही हूँ। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि

विजयश्री तेरे चरणों को चूम लेगी और तू इस संसार में अमर नाम कर लेगा।

देखो! इस संसार मे ऐसे तो अनेक माताए हैं जो अनेकों पुत्रों को जन्म देती हैं परन्तु उसी माता का पुत्र को जन्म देना सार्थक है और वही माता इस ससार मे धन्यवाद के पात्र है जिसका वेटा दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी आहूति दे डालता है। परन्तु वही वीर पुत्र दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगाता है जिसके हृदय में कोमलता और सहृदयता होती है। एक कठोर हृदय में दया का निवास नहीं रहता। ज्ञानी पुरुषों ने बताया है कि मानव वही है जिसके हृदय मे निम्न चार बातें पाई जाती हैं अर्थात्-मानवता प्राप्त करने के लिए एक मानव के हृदय मे—भद्रिकता, विनय-संपन्नता, दयालुता और अमत्सरता का होना परमावश्यक है। श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने तो यहां तक फर्मा दिया है कि जिसके हृदय में करुणा- अनुकपा का झरना झरता रहता है वही मानव कहलाने का अधिकारी है। इसके विपरीत जिसका हृदय कठोर और दयाहीन होता है वह मानव के चौले को धारण करके भी राक्षस रूप मे है। आज का मानव ससार मानवता से बहुत पीछे चला गया है। आज की दुनियां में मानव रूप मे भी रावण के कई भाई बनते जा रहे हैं। यद्यपि रावण तीन खड का स्वामी था, सोने की लका का मालिक था और बहुतसी सिद्धियों का धारक था परन्तु फिर भी राक्षसी वृत्ति आ जाने से वह वासुदेव लक्ष्मण के हाथ से मरकर नरकगामी बना। तो आज का मानव भी स्वार्थान्ध होकर मानवता को भूलता जा रहा है। इसलिए वह

मानव होते हुए भी अपनी राक्षसी-वृत्तियों के कारण राक्षस के रूप में जीवन गुजार रहा है।

देखो ! आज भारतवर्ष की स्वतन्त्रता एकमात्र अहिंसा और सत्य के बल पर प्राप्त हुई है। परन्तु फिर भी संविधान सभा मे आज भी पाशविकता का नग्न रूप से तांडव नृत्य हो रहा है। उस अहिंसा के पुजारियों की सभा में भी हिंसा का बोल-बाला है और मेरा तो उन जैन प्रतिनिधियों से खास तौर से कहना है जो जैन नाम धराकर भी हिंसा के कार्यों का समर्थन करते हैं और हिंसा के कार्यों मे उत्साह के साथ भाग लेते हैं तो उनके जैन नाम धराने मे भी धिक्कार है। क्या वे जैन मिनिस्टर होकर भी यदि अण्डे खाने का, मत्स्योत्पादन करवाने का और अनेक प्रकार की हिंसात्मक प्रवृत्तियां कराने का आदेश देते हों तो जैन कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं ? मैं समझता हूँ कि कोई भी अहिंसक मनुष्य उन्हें जैन कहने में शर्म महसूस करता है। अरे ! एक सच्चा जैनी तो एक भी कीडी को मारने का आदेश नहीं दे सकता तब क्या अण्डे खाने और मछलियों का उत्पादन करने का कभी आदेश दे सकता है ? हर्गिज नहीं। परन्तु भाई ! यह माया का चक्कर ही ऐसा है कि इसने सबकी आंखों पर पट्टी बाध दी और मानव के हृदय से दया की भावना ही निकाल दी।

देखो ! हम प्रत्यक्ष में देखते हैं कि जब राम, कृष्ण और शिवजी के मन्दिर मे मास नहीं चढाया जाता तब उक्त देवों को मानने वाले यदि मास सेवन करते हैं तो यह कितनी बुरी बात है। अरे ! बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि तू राम, कृष्ण

और शिव का अनुयायी कहला कर भी यदि उनकी आज्ञा के विरुद्ध किसी पशु पक्षी के मास को पेट मे डालता है और मन्दिर में पहुँचकर छापे-तिलक लगाकर राम-राम कृष्ण कृष्ण और शिव-शिव बोलता है तो दे तेरी प्रार्थना कभी भी मन्जूर करने वाले नहीं हैं। हां! जैसे तू ऊपर से पवित्र बनकर राम कृष्ण बोलता है वैसे ही अगर अन्दर से अहिंसक बनकर राम राम बोलेगा तो तेरी प्रार्थना अवश्य ही मंजूर होगी। इसलिए मेरा तो प्रत्येक भाई-बहिन से यही कहना है कि राम और कृष्ण के सच्चे भक्त कहलाने के अधिकारी तभी हो सकते हो जब आप मन, वचन और कर्म से पूर्ण रूप से अहिंसक बन जायेंगे। और वही शासन चिरस्थायी रह सकता है तथा प्रजा मे अमन-चैन तभी स्थिर रूप से रह सकता है जबकि शासन के हृदय मे दया भगवती का प्रवेश हो जाय। इस प्रकार एक दयालु शासक के शासन मे मनुष्य और पशु पक्षी भी आराम के साथ जिन्दगी गुजार सकते हैं। अन्यथा एक क्रूर और हिंसक शासक के राज्य में प्रजा को भी दुख का सामना करना पड़ता है।

तो उस शेरसिंह के हृदय में दया भगवती का प्रवेश हो चुका था और मानवता उसे उन अठारह सौ ही बन्दियों को मुक्त कराने के लिए बार-बार तकाज़ा कर रही थी। अतएव वह अकेला ही अहिंसक नौजवान शस्त्र धारण करके उक्त दया के पात्र स्त्री-पुरुषों की रक्षा करने के लिए अपनी माता से अन्तिम आशीर्वाद लेकर ड्यूटी पर तैनात हो गया। वह किले के अन्दर आकर जेलखाने में पहरा देने लगा। उसने अन्य पहरेदारों से कहा कि:—

पहरे पर आ कहे पहरेदार के तांई,
तुम जाओ निज घर, ड्यूटी मेरी आई।
होगए पहरे पर खड़े, वीरता धारी ॥२०॥

हुए बंदी छोड़ महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

भाई ! शेरसिंह ने अपनी ड्यूटी पर तैनात होकर अपने अन्य साथियों से कहा कि भाई ! अब आप लोग अपने घर जा सकते हैं। मैं अकेला ही आज ड्यूटी को संभाल लूंगा। शेरसिंह के मुंह से उक्त वचन सुनकर वे सारे ही पहरेदार खुश होते हुए अपने-अपने घर चले गए। अब वह एकाकी वीर ही शस्त्र लिए हुए इधर-उधर गश्त लगाने लगा। वह कभी-कभी उन अठारह सौ ही स्त्री-पुरुषों की करुणाभरी चीत्कार सुनकर उनकी तरफ भी चला जाता परन्तु उनका करुणाजनक रुदन सुनकर पुनः दूसरी ओर लौट आता। उन लोगों की करुणाजनक स्थिति का वर्णन करते हुए कवि महोदय कह रहे हैं कि.—

किल्ले में जोड़े, रुदन करे सब भारी,
कोई करुणासिंधु, रक्षा करो हमारी।
भूलेंगे नहीं अहसान, सुनो उपकारी ॥२१॥

हुए बंदी छोड़ महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥टेक॥

उक्त अठारह सौ ही स्त्री-पुरुष जेल के अन्दर इस प्रकार से रुदन मचा रहे थे जैसे कि आज की भारत सरकार के एजेन्ट

बहुत सारा रुपिया बटोरने की दृष्टि से स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करने वाले बन्दरों को जगल से पकड़वाकर मगवाते हैं और उन्हें भेड-बकरियों की तरह ठूस ठूस कर बास की पिंचियों से बने पिंजडों में भर देते हैं। जब वे बाहर भेजे जाने के लिए दिल्ली स्टेशन पर रखे जाते हैं तो उनके अतःकरण से निकली हुई चिल्लाहट को सुनकर शायद ही कोई कठोर हृदय वाला नहीं पसीजे। तो वे लोग भी मरणभय से घबराकर इसी प्रकार से दयाभरी पुकार कर रहे थे। वे लोग भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि हे करुणासिधु! हम बेकसूरों पर यहां का राजा जुल्म कर रहा है। उसके हृदय से दया भावना निकल चुकी है और उसीके परिणाम स्वरूप हम सब मौत के घाट उतार दिए जायेंगे। अब हमारा तेरे सिवाय कोई रक्षक नहीं है। अरे! शहर के तमाम लोग भी बुजदिल हो चुके हैं। उनमे से कोई भी हमारी रक्षा करने में समर्थ नहीं रहा है। इसलिए हमारी तो तुम्हारे श्रीचरणों में ही प्रार्थना है कि तुम्हीं हमारी डूबती नैया के एकमात्र खिवैया हो। हे भगवन्! अब हमे और अधिक न तरसाओ और शीघ्र हमें बन्धन से मुक्त कराओ।

भाई! भगवत् प्रार्थना का भी बडा भारी महत्त्व है। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती। परन्तु सच्चे अन्तःकरण से तभी शुद्ध भाव प्रस्फुटित होते है जबकि इन्सान के चारों तरफ विपदाओं के काले काले बादल मडराने लगते हैं, सकटकालीन बिजलिया कड़-कडाने लगती हैं और दुख-सागर के बीच मे नैया भवर मे फस जाती है तभी दयालु भगवान को पुकारा जाता है। और उक्त परिस्थिति में जो भगवान की प्रार्थना की जाती है वह कभी खाली नहीं जाती। भाई! प्रार्थना

भी चार कारणों से की जाती है जिनमें से एक तो अति दुःख से छूटने के लिये, दूसरी अर्थार्थी धन प्राप्ति की इच्छा से प्रार्थना करता है। तीसरी जिज्ञासु जो जिज्ञासा भाव से प्रार्थना की जाती है। चौथी ज्ञानी की प्रार्थना वही श्रेष्ठ मानी गई है। तो वे लोग भी मौत की कैद मे फसे हुए भगवान से अपनी सुरक्षा के लिए अत्यन्त कारुणिक स्वर मे प्रार्थना करने लगे कि:—

श्री ऋषभदेव भगवान, करो तो मेरी पालना ॥ टेक ॥

भव-सागर में, मेरी है नौका,
हां ! मेरी है नौका।
आन पड़ी मझधार,
जल्दी से, सभालना ॥ १ ॥

हे भगवन् ! इस ससार रुपी समुद्र में हम सबकी नैया डूब रही है। हमारे ऊपर सङ्कट का पहाड़ टूटने वाला है। परन्तु हे दयालु ! तेरे सिवाय हमारा कोई रक्षक नहीं जो हमारे सकट को दूर कर सके। अतएव हमारी तेरे दर तक ही प्रार्थना है कि हे भगवन् ! हमे इस संकट से मुक्त कर दे। इस प्रकार जिज्ञासु वन कर भगवान ऋषभदेव, पच परमेष्ठि या अपने अपने धर्म के अनुसार किसी इष्ट की प्रार्थना की जाती है वह अवश्यमेव सफल होती है।

तो इस प्रकार आर्तनाद करते हुए जब शेरसिंह ने सुना तो उसके हृदय से करुणा का स्रोत उमड़ पड़ा। उस समय उसने क्या किया कि:—

खोलू बारी सुन, करुणा भरी पुकारें,
आनन्द से रहना, जाओ बन्दी सारे।
प्राणों को लेकर भगे सभी नर-नारी ॥१३॥
हुए बन्दी छोड महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥टेक॥

इस प्रकार शेरसिंह का हृदय उनके आर्तनाद से कांप उठा। उसके हृदय में भरी हुई अनुकम्पा ने उससे आग्रह किया कि ऐ शेरसिंह! तू अपने मानवोचित कर्तव्य का पालन कर! यही मौका है कि तू इन बदियों को रिहा करके पुण्य का भागी बन सकता है। अपनी आत्मा की पुरजोर पुकार को सुनकर उसने हिम्मत के साथ किले की बारी खोल दी और उन अठारह सौ ही स्त्री पुरुषों से कहा कि अरे भाई बहिनों! आप लोग रोते क्यों हैं? तुम्हारी प्रार्थना भगवान ने मजूर करली है और मुझे तुम्हारी रक्षा के लिए भेज दिया है। अतएव तुम सब यहां से विभिन्न दिशाओं में शीघ्र भाग जाओ। भाई! शेरसिंह के उक्त वचन सुनकर वे सब लोग जान की रिहाई से खुश होते हुए ऐसे भागे जैसे कि पशु पक्षी बन्धनों से मुक्त होकर भाग जाते हैं। अथवा जैसे किसी को अपना खोया हुआ धन मिल जाने से अजहद खुशी हो जाती है। तो वे सब शेरसिंह को धन्यवाद देते हुए और दया धर्म की जय बोलते हुए विभिन्न दिशाओं से रियासत से पार हो गए।

जब दूसरे सिपाहियों ने शोर गुल सुना और आकर देखा कि किले का दरवाजा खुल गया है और उक्त अठारह सौ ही बदी

रिहा कर दिए गए हैं तो यह सूचना महाराज यदुराव के कानों तक पहुंचा दी गई। जब राजा ने यह अनहोनी खबर सुनी तो वह क्रोधित होकर कहने लगा कि—

सुन खबर भूप ने, फोरन शोध कराई।
सब खाली पडा मकान, मिला कोई नांई॥
सुन बात भूप को, कोप चढ़ा अति भारी॥ १३॥
हुए बंदी छोड़ महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्ले धार की कथा, अजब है प्यारी॥ टेक॥

जब राजा के पास उक्त खबर पहुँच गई तो उसने क्रोधित होकर अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि इसका निर्णय निकालो कि किस राजद्रोही ने उन बन्दियों को रिहा कर दिया है। तब राजा की आज्ञानुसार निर्णय निकाल कर सिपाहियों ने आकर निवेदन किया कि महाराज! शेरसिंह ने अपनी ड्यूटी पर रहते हुए दुस्साहस करके सभी बन्दियों को किले की बारी खोलकर रिहा कर दिया है। यह सुनते ही राजा ने सेनापति को हुक्म दिया कि जाओ! और शेरसिंह को जिंदा या मुर्दा पकड़ कर मेरे सामने लाकर हाजिर करो। राजा की आज्ञा होते ही सेनापति अपने सिपाहियों को लेकर उसकी तलाश मे निकला परन्तु शेरसिंह किसी के हाथ नही आया। जब उक्त समाचार राजा को सुनाए गए तब राजा ने पुन. हुक्म दिया कि—

बुलवा कर सेना, दीना हुक्म लगाई,
दो शेरसिंह का, धड़ से शीश उडाई।
मजूर हुक्म कर, चले शस्त्र के धारी॥ १४॥

हुए बदी छोड महाराज वडे उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

जब शेरसिंह बन्द सिपाहियों के कब्जे में नहीं आया तो राजा ने हुक्म दिया कि उस बदमाश और नमकहराम शेरसिंह का शीश धड़ से जुदा करदो। उसने मेरी रक्षा के लिए एकत्रित किए गए अठारह सौ ही स्त्री-पुरुषों को जेल से रिहा करके राज्य-द्रोह का कार्य किया है। भाई! जब किसी के स्वार्थ पर आघात होता है तभी उसे दर्द महसूस होता है। परन्तु दूसरों के प्राण अपहरण करने पर भी किसी को कोई दुख नहीं होता। तो राजा ने भी अपने स्वार्थ पर कुठाराघात होते ही शेरसिंह को मरवाने का हुक्म दे दिया।

राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके सैनिक शेरसिंह को पकड़ने के लिए निकल पड़े। इसके पश्चात् क्या हुआ कि—

जब सुभट मारने, उमड-घुमड कर आए,
तब शेरसिंह ने, ऐसे हाथ दिखाए।
कापे सेनापति, मानो चढ़े तिजारी ॥ १५ ॥
हुए बदी छोड महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्ले धार की कथा, अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

गिरीं लाशे भूमि पै, बही खून की धारा,
कट गया शीश तो भी हिम्मत नहीं हारा।
खाली धड़ से ही, लड़ा लड़ाकू भारी ॥ १६ ॥

हुए बंदी छोड़ महाराज बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

महाराज की आज्ञानुसार एक बड़ी फौज शस्त्रों से सुसज्जि होकर सेनापतियों के साथ शेरसिंह को मारने के लिए पुनः निक पड़ी। जब शेरसिंह उन सैनिकों को दिखाई दिया तो उन्होंने उससे पूछा कि तुमने उक्त बन्दियों को निकालकर राज्यद्रोह क कार्य किया है। यह सुनते ही शेरसिंह ने सिंह गर्जना करते हु कहा कि मैंने यदि उक्त अठारह सौ निरपराध स्त्री-पुरुषों को जेल से रिहा कर दिया तो कोई गुनाह नहीं किया बल्कि मैंने उन्हें अभयदान देकर पुण्य का काम किया है। मैंने उक्त कार्य सोच विचार कर ही किया है। और इस पर भी यदि तुम लोग मुझे गुनाहगार समझते हो तो तुम्हें जो कुछ करना हो वह कर लो यह सुनते ही सेनापति क्रोध से तिलमिला गया और उस सैनिकों को हुक्म दिया कि इस मुजरिम को पकड़ लो। सेनापति की आज्ञा होते ही वे उसे पकड़ने को दौड़े। परन्तु ज्योंही सिपाही उसके सन्निकट पहुँचे तो उसने भी म्यान से तलवार निकाल ली और आपस में युद्ध शुरु हो गया। चूंकि शेरसिंह भी वीर राजपूत था अतएव उसका भी खून खोल उठा और उसने युद्ध मे वह वीरता दिखाई कि कई सैनिकों को मौत के घाट उतार दिए। परन्तु भाई ! अकेला वीर उस समूह के सामने कब तक मुकाबले में टिक सकता था। अन्तमे वीरतापूर्वक लड़ते लड़ते और शौर्य दिखाते हुए जब वह किले से बाहर निकल रहा था तो पीछे से किसी सिपाही ने तलवार से उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। परन्तु वह वीर राजपूत धड़ से शीश जुदा हो जाने पर भी वीरता-

पूर्वक लड़ता रहा। इस प्रकार जब उसके शरीर का खून ठंडा पड़ गया तो वह वहीं जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ा। इस प्रकार जब उसका धड़ वृक्ष के नीचे गिर गया तो क्या हुआ कि—

धड भी गिर गया इक, वृक्ष के नीचे जाई,
उस बहादुर ने, वीरों की शान बढ़ाई।
जा गिरा शीश, धड़, बरसे फूल हजारी ॥१७॥
हुए बदी छोड़ महाराज, बडे उपकारी।
यह किल्लेधार की, कथा अजब है प्यारी ॥टेक॥

इस प्रकार जब शेरसिंह का धड़ और सिर लड़ते लड़ते गिर गया तो दोनों स्थानों पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। देखो! दयाभगवती के प्रभाव से उसका सारा ही शरीर यश का भागी बन गया। वह हमेंशा के लिए अमर हो गया।

उस स्थान के चमत्कार के विषय में कवि महोदय आगे वर्णन कर रहे हैं कि—

हुआ चमत्कार वहां, बोले कई नर नारी,
जो आवे वहां तो, मिट जाए कष्ट बीमारी।
हुआ बदी छोड़ महाराज, नाम से जहारी ॥१८॥
कर गए अमर वो नाम, जगत में भारी,
यो कहे चौथमल, बनो सभी उपकारी।
यह सुनी बात जैसी साचे में ढारी ॥१९॥
हुए बदी छोड़ महाराज, बड़े उपकारी।
यह किल्लेधार की कथा, अजब है प्यारी ॥ टेक ॥

भाई ! उस वीर क्षत्रिय सिपाही ने उक्त अठारह सौ स्त्री-पुरुषों के प्राणों की रक्षा के लिए हसते-हसते अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया। वह शेरसिंह शरीर से तो अवश्यमेव मर गया परन्तु अहिंसा भगवती के प्रभाव से उसका उज्जवल यश दिग्-दिगन्त मे प्रसारित हो गया। उस स्थान पर जहां कि उसका मस्तक कटकर गिरा था वहां हिन्दुओं ने मन्दिर बनाकर हनुमानजी की मूर्ति स्थापित कर दी और जहां उसका धड़ गिरा था वहा मुसलमानों ने मकबरा बना दिया। तो उक्त स्थान हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के लिए पूज्यनीय बन गया। भाई! अहिंसा माता के प्रभाव से उक्त स्थानों पर चमत्कार भी नजर आने लगा। अर्थात् दूर-दूर तक चारों तरफ लोगों में यह बात प्रसारित हो गई कि जिस किसी को किसी प्रकार का भी कष्ट हो वह बंदी छोड़ बाबा के स्थान पर पहुचने से मिट जाता है। उक्त नाम इसलिए प्रसिद्ध हो गया कि शेरसिंह ने उक्त बंदियों को जेल से रिहाकर प्राण दान दिया था। और वह स्थान आज भी उक्त चमत्कार के लिए प्रसिद्ध है।

इस प्रकार उक्त अहिसा से सम्बन्ध रखने वाली घटना वास्तव मे घटी हुई है और उसी को श्रद्धेय स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने कविता बद्ध करके जनसाधारण के उपयोग के लिए रख दी है। उसी कविता के आधार पर मैंने भी आपके सामने अहिंसा का स्वरुप समझने के लिए लम्बे चौड़े रूप मे वर्णन कर दिया है। देखो! उक्त वीर पुरुष ने अपने हृदय मन्दिर में अहिंसा भगवती की मूर्ति स्थापित करके उक्त निरपराध प्राणियों की रक्षा की थी तो उस अनुकम्पा के प्रभाव से वह स्थान भी चमत्कारी बन गया। आज भी वहां जाकर मानता करने पर

दुखियों के दुख दूर होते हैं। उक्त स्थान आज तक बंदी छोड बाबा का स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी दया माता के प्रभाव से वहां धाम चल रही है और गादी भी कायम है। हर वर्ष वहां मेला लगता है और हजारों की सख्या में लोग दूर दूर से आकर अपने दुख दूर करते हैं।

भाई! ऐसी भी किंवदन्ती है कि उक्त गादी पर कोई गुरू और चेला निवास करते थे। गुरू तो पहुंचे हुए महात्मा थे परन्तु चेला बहुत भोला और अपढ़ था। एक समय की बात है कि वहा किसी सेठानी ने एक तोता पाल रखा था जोकि मनुष्य की भाषा में बात करता था। एक दिन वह चेला बस्ती में घूमता हुआ उक्त सेठानी के घर पर भी आटा मांगने चला गया। उसने ज्योंही सेठानी के दरवाजे पर पहुँच कर बंदी छोड़ बाबा की जय बोली त्योंही उक्त तोते ने मानवी भाषा में कहा कि चेलाजी! आज अपने गुरुजी से पूछना कि मेरे बंधन कब छूटेंगे? वह चेला उस तोते के प्रश्न को हृदयंगम करके और आटा लेकर अपने स्थान पर पहुँचा और गुरुजी से पूछने लगा कि गुरुजी! मैं जब उक्त सेठानी के घर पर आटा मागने गया था तो,,वहा पिंजड़े में पाले हुए तोते ने मुझ से प्रश्न किया कि तेरे गुरुजी से पूछना कि मेरे बंधन कब छूटेंगे? उक्त प्रश्न सुनते ही गुरुजी मूर्च्छित होकर गिर पडे। गुरुजी की ऐसी स्थिति देखकर चेले ने उपचार किया और कुछ देर बाद गुरुजी होश मे आ गए। परन्तु उन्होंने प्रश्न के जवाब मे फिर भी चेले से कुछ नहीं कहा और चेला भी गुरुजी के बेहोश होने का भावार्थ नहीं समझ सका। परन्तु जब दूसरे दिन चेला पुनः उक्त सेठानी के घर आटा मांगने गया तो उस तोते ने पुनः चेले से कहा कि चेलाजी! क्या तुमने अपने

गुरुजी से मेरे बन्धन से छूटने के लिए पूछा था ? यह सुनकर उस चेले ने कहा कि हां ! मैंने तेरे लिए प्रश्न किया था परन्तु वे उक्त प्रश्न सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उन्होंने अपने मुंह से इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। चेले के मुंह से उक्त समाचार सुनकर तोता अपने प्रश्न का उत्तर समझ गया। उसने प्रत्युत्तर मे कहा कि चेलाजी ! तेरे गुरुजी का भला हो। उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया। परन्तु चेला फिर भी कुछ नहीं समझ सका। वह आटा लेकर अपने स्थान को लौट आया। उक्त सेठानी प्रतिदिन उस तोते की सार-सभाल करती थी। दूसरे दिन जब उसने पिजड़े को साफ करने के लिए उतारा तो वह क्या देखती है कि तोता तो मरा हुआ पड़ा है। उसने यह देख समझ लिया कि तोता मर गया है। अतएव उसने उस तोते को घर से बाहर ले जाकर एकान्त स्थान पर पटक दिया। ज्योंही सेठानी ने तोते को बाहर पटका त्योंही वह उड़कर एक वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। यह देख सेठानी ने उससे कहा कि वाह रे उस्ताद ! तूने पिजड़े से आजाद होने के लिए बड़ी अच्छी तरकीब ढूंढ निकाली। अब वह सेठानी बार-बार उस तोते को पिंजड़ा दिखाती है और तरह-तरह की चीजें खाने को दिखाती है परन्तु वह तोता उस प्रलोभन मे नहीं आता। बल्कि वह सेठानी से कहने लगा कि भला हो बंदी छोड़ बाबा के गादीधारी गुरु का जिसने मुझे तरकीब बता कर इस परतन्त्रता से मुक्त करा दिया। सेठानी ! मैं काफी मुद्दत के बाद तुम्हारी कैद से मुक्त हुआ हू अतएव अब पुनः इस कैद मे कैसे आ सकता हूँ। अब मैं स्वतन्त्र रूप से आकाश में विचरण करूंगा। यह सुनकर सेठानी निराश होकर वापिस लौट आई।

भाई ! मैंने उक्त दृष्टान्त आपके सामने रखा है तो ऐसा हुआ हो तब भी क्या और नहीं हुआ हो तब भी क्या है ! परन्तु इस दृष्टान्त से हमको अपने जीवन मे यही शिक्षा लेनी चाहिए कि उक्त तोते की तरह यह आत्मा है। इसने कर्मों के कारण पिंजड़े रूपी मानव शरीर को धारण कर रखा है। अब यह आत्मा इस शरीर रूपी पिंजड़े मे पड़ा हुआ छटपटा रहा है। इसे स्वतन्त्र होने का कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा है। परन्तु किसी ज्ञानी गुरु के ससर्ग मे आने से उस पिंजडे से रिहा होने के लिए उपाय बता दिया कि देख ! यदि तू इस पिंजड़े से रिहा होना चाहता है तो तुझे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को अपने जीवन मे धारण करने चाहिए, और स्त्री, पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि कुटुम्ब के प्रति ममत्व को छोडना चाहिए। इस प्रकार जब कुटुम्ब से घृणा रूपी मूर्छा आ जायगी तो सहजभाव में तू कर्म-बन्धनों से छूटकर इस शरीर रूपी पिजड़े से हमेशा के लिए मुक्त हो जायगा। भाई ! जिस प्रकार उस तोते ने श्वांस को रोक कर निश्चेष्टता धारण करली और पिंजड़े से मुक्त होगया उसी प्रकार जब यह आत्मा भी पाचों इन्द्रियों के विषय और मन से निश्चेष्ट हो जायगा तो इसे भी कर्म रूपी बन्धनों से मुक्त होने में देर नहीं लगेगी। देखो ! ससार के सभी प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार अपने अपने शरीर रूपी पिंजडे में कैद पडे हुए हैं। और अपने अपने धर्म के अनुसार ज्ञानी-पुरुष इस कैद से मुक्त कराने के लिए उपाय बताते हैं परन्तु उनके बताए हुए उपाय को जीवन में लाने पर ही मुक्त हुआ जा सकता है। बिना उपाय को अमल में लाए कोई भी मुक्त नहीं हो सकता।

अतएव प्रत्येक भव्यात्मा को अपने कर्म-बन्धन से मुक्त होने के लिए जीवन में अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए। प्रथम आप सब अहिंसा के स्वरूप को समझकर और चौरासी लाख जीव योनियों को अर्थात् जीवों के रहने के स्थानों को समझकर बाद में यदि अहिंसा का पालन करेंगे तो अपनी आत्मा को यथाशीघ्र कर्म बन्धन से मुक्त करा सकेंगे।

इस प्रकार जो भाई बहिन अपने जीवन में यथावत् अहिंसा का पालन करेंगे वे इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलोर (केन्टोनमेंट)
ता० १६-८-५६
रविवार

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥

परस्त्री गमन का दुष्परिणाम
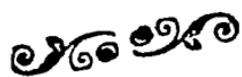
सिंहासने मणिमयूखशिखा विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिंब वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुंगोदयाद्रि शिरसिव सहस्ररश्मेः ॥

卐卐

भाई ! आज मैं आपके समक्ष परस्त्री गमन के दुष्परिणाम के सम्बन्ध मैं प्रकाश डालने जा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि उक्त विषयों पर प्रकाश डालना समयोचित है। क्योंकि आज मैं जिस तरफ दृष्टि डालता हूँ और जो बातें इस सम्बन्ध में सुनता हूँ तो मेरा हृदय क्षुभित हो जाता है। कारण कि जो सज्जन कुलीन और खानदानी कहलाते हैं परन्तु वे भी इस चक्कर मे पड़े हुए हैं। वे बड़े-बड़े सन्त मुनिराजों के प्रवचन सुनकर और विविध प्रकार की धर्म प्रवृत्तिएँ करते हुए भी यदि परस्त्री गमन के शिकार बन गए हों तो यह बड़े आश्चर्य की बात है।

भाई ! परस्त्री गमन करते हुए मनुष्य अपना सर्वनाश कर बैठता है। वह अपनी परिणीता स्त्री मे सन्तुष्टि प्राप्त नहीं करते हुए इधर-उधर पहुचकर यदि झूठे टुकड़े खाता है तो यह उसके लिए बड़े शर्म और घृणा की बात है। वह अपने द्वारा महनत से कमाई हुई सम्पत्ति का विनाश करते हुए दुनिया की नजरों में अपयश का भागी बन जाता है। उसके शरीर में नाना प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। और कभी-कभी तो उक्त भयङ्कर बीमारी से असह्य वेदना भोगते हुए प्राणान्त भी हो जाता है। तो क्षणिक सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य. तन, धन और यश को खो बैठता है।

जब कि शास्त्रकारों ने बताया है कि यदि मानव पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हो तो उसे स्वदार सन्तोष व्रत ही स्वीकार करके मर्यादित जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है। अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री के अतिरिक्त संसार की तमाम स्त्रियों को माता और बहिन की दृष्टि से देखना चाहिए यदि मानव अपने जीवन में इतना भी सन्तोष करले तब भी वह ब्रह्मचारी कहलाने का अधिकारी बन सकता है। क्योंकि ज्ञानी पुरुषों ने "एक नारी ब्रह्मचारी" का सिद्धान्त बताकर उसे भी ब्रह्मचारी की गणना मे रख दिया है। परन्तु आज तो चारों तरफ समाज मे उल्टी ही गङ्गा बह रही है। आज का मानव इतना विषय लोलुपी बन गया है कि वह प्राप्त दाल रोटी को छोड़ कर दूसरे के झूठे टुकडे को भी येन-केन प्रकारेण हड़पने का प्रयत्न कर रहा है। उसे शायद यह मालूम नहीं कि परस्त्री-गामियों को भूतकाल मे कितनी जिल्लत उठानी पड़ी और मरकर भी नरक में

दुख उठाने के लिए जाना पडा। उन परस्त्री लम्पटियों के नाम आज भी इतिहास मे काले अक्षरों में लिखे हुए हैं। उन दुराचारियों के प्रात.काल नाम लेना भी कोई पसन्द नहीं करता।

परन्तु खेद का विषय है कि उक्त परस्त्री गामियों के कलुषित जीवन गाथाओं को सुनकर भी मनुष्य अपने जीवन को कीचड़ से निकालने का साहस नहीं कर पाता। मैं तो समझता हूँ कि ऐसे मनुष्यों का जीवन भी गहन अन्धकार में विलीन होने वाला है तभी उन्हें सन्त महापुरुषों का उपदेश रुचिकर नहीं होता। परन्तु याद रखना! यदि अभी भी अपने जीवन को पवित्र नहीं बनाया और पूर्ववत् दुष्चरित्र में ही जीवन को बहने दिया तो भविष्य में इसका दुष्परिणाम भोगने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। तुम्हारा नाम भी आगामी इतिहास में इसी प्रकार से घृणा की दृष्टि से लिया जायेगा। इसलिए मेरा तो सभी भाई-बहिनों से आग्रह पूर्वक कहना है कि परस्त्री के कुदृष्टि से दर्शन करने में भी पाप समझो और अपनी स्त्री मे ही सन्तोष रख कर अपने जीवन को यशस्वी बनाओ।

भाई! प्रातःस्मरणीय भगवान ऋषभदेव ने तो सर्वथा कामदेव को वशमे कर लिया था। उन्होंने अपनी विवाहित स्त्रियों के प्रेम से भी मुख मोड़कर पूर्णरूप से ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। और तभी आज करोड़ों वर्ष बीत जाने पर भी ससार उन महापुरुषों के नाम बड़े गौरव के साथ लेकर अपने जीवन को उनके द्वारा बताए हुए सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करता है।

तो उन्हीं परम ब्रह्म परमात्मा भगवान ऋषभदेव की गुण

स्तुति करते हुए भक्तामर स्तोत्र के उन्तीसवे श्लोक में आचार्य मानतुङ्ग कह रहे हैं कि हे तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव! आप जहां भी विराजते हैं वहां आपके तीर्थङ्कर नाम कर्म के उदय से देवता-गण सिंहासन का निर्माण कर देते हैं। उक्त सिंहासन अमूल्य मणिरत्नों से जड़ा हुआ होता है। वह सिंह के मुंह के आकार वाला होता है। जब भगवान उक्त मणियों की किरणों से चित्र-विचित्र बने हुए सिंहासन पर विराजमान होकर समवसरण में धर्मोपदेश देते हैं तब उनका सुवर्ण के समान मनोज्ञ शरीर उसी प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार ऊंचे उदयाचल पर्वत के शिखर पर सूर्य बिम्ब शोभित होता है। और सिंहासन के ऊपर जो चंदोवा लगा होता है उससे सिंहासन की शोभा और भी बढ़ जाती है। यह तीर्थङ्कर भगवान का दूसरा प्रतिहार्य है।

भाई! उक्त सिंहासन भी अपनी मूक भाषा में भगवान के दर्शनार्थ आए हुए लोगों को यही शिक्षा देता है कि ऐ दुनिया के लोगो! जिस प्रकार मैं जड़ पदार्थ होते हुए भी भगवान की शरीराकृति के कारण विशेष रूप से सुशोभित हो रहा हूँ उसी प्रकार यदि आप लोग भी भगवान की शरण में आकर उनके अनन्त गुणों में से किंचिदपि गुण भी अपने जीवन में ग्रहण कर लेंगे तो आप भी आत्म गुणों के प्रकाश से प्रकाशित हो जायेंगे। आप भी एक दिन भगवान की तरह गुण प्राप्त करके संसार में प्रकाशित हो जायेंगे। चूंकि भगवान ऋषभदेव अनन्त गुणों से युक्त थे अतएव उन्हीं भगवान को हमारा सर्वप्रथम नमस्कार है।

दुख विपाक-सूत्र

उन्हीं तीर्थङ्कर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त करके जगज्जीवों के कल्याण के लिए धर्मोपदेश दिया। उनकी हितकारिणी वाणी का संग्रह निकटवर्ती गणधरों ने किया और वही वाणी आज हमारे सामने बत्तीस सूत्रों के रूप में मौजूद है।

तो मैं उसी द्वादशांगी वाणी में से ग्यारहवें अङ्ग विपाक-सूत्र के द्वितीय भाग दुख-विपाक सूत्र का वर्णन आपको सुनाने जा रहा हूँ। आशा है आप लोग उसे सुनकर जीवन मे शुभ प्रवृत्ति करने का सफल प्रयत्न करेंगे।

यद्यपि दुख की बात श्रवण करना कोई भी पामर प्राणी पसद नहीं करता परन्तु दुख की बात जाने बिना सुख प्राप्ति के मार्ग की ओर अनुगमन करने का पुरुषार्थ भी तो नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने दुख-विपाक सूत्र को सुनाने का निश्चय किया है। तो उक्त सूत्र मे शास्त्रकारों ने यही बात बताई है कि दुख किसे कहते हैं, दुखी होने का कारण क्या है और दुख को सुख रूप में किस प्रकार तबदील किया जा सकता है? प्रारम्भ मे दुखी होने के कारण सुनकर प्रत्येक श्रोता का हृदय एक क्षण के लिए अवश्य ही सिहर उठेगा और आत्मा मे एक प्रकार की घबराहट सी प्रतीत होने लगेगी परन्तु दूसरे ही क्षण जब वह समस्त दुखों से मुक्त होकर अजर-अमर पद प्राप्ति की बात सुनेगा तो उसे अपार खुशी भी महसूस होगी और उसका हृदय मयूर की तरह नाचने लगेगा। तो इसी दृष्टिकोण से मैंने दुख विपाक सूत्र को सुनाने का निश्चय किया है।

भगवान आर्य सुधर्मा स्वामी से उनके परम शिष्य जवू स्वामी ने जब जिज्ञासु बनकर विनीत भाव से यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! आपने कृपा करके मुझे दुख विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन के भाव तो फर्मा दिए हैं परन्तु अब चौथे अध्ययन के भाव भी दर्शाने की महती कृपा करें। तब भगवान सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी को कहा कि हे जम्बू! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने निर्वाण होते समय अपने ज्येष्ठ शिष्य गौतम स्वामी को जो चौथे अध्ययन के भाव फर्माए थे वही भाव मैं तेरे सामने रख रहा हूँ। हे जम्बू! उस काल और उस समय मे सोहजनी नाम की नगरी थी। वह बड़ी ऋद्धिशाली थी। उसके बाहर ईशान कोण मे देवरमण नाम का एक उद्यान था। उसी नगरी में माहचन्द नाम का राजा राज्य करता था। उसके सुसेन नाम का अमात्य (मन्त्री) था। वह साम, दाम, दण्ड और भेद रूप राजनीति के शास्त्र में कुशल था। उसी नगरी में सुदं-सणा नाम की एक गणिका भी रहती थी। वह बड़ी सुन्दर और स्त्री की चौंसठ कलाओं मे प्रवीण थी। उस नगर मे सुभद्र नाम का सार्थवाह भी रहता था। उसकी भार्या का नाम भद्रा था। भद्रा के अगजात का नाम सगडकुमार था। सगडकुमार का उक्त नाम इसलिए रखा गया था कि भद्रा के पहिले कोई पुत्र जीवित नहीं रहता था अतएव जब यह उत्पन्न हुआ तो इसे गाड़ी के नीचे डाल कर पुन. उठा लिया गया था। और इसी कारण उसका नाम सगडकुमार रख दिया गया। वह पूर्ण अंग वाला था।

कालान्तर मे उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अपने शिष्यों सहित ग्राम, नगर, पुर, पत्तन मे विचरण करते हुए और भव्य जीवों को धर्मोपदेश देकर तारते

हुए उक्त नगरी के बाहर देवरमण उद्यान में आकर विराजमान हुए। भगवान के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही उक्त नगरी की जनता और राजा सभी भगवान के दर्शनार्थ गए। वहां पहुंचकर सबने भगवान को विधिवत् वन्दन नमस्कार किया और भगवान महावीर के मुखार्विन्द से धर्मोपदेश श्रवण कर पुनः वन्दन-नमस्कार करके अपने अपने स्थान को लौट आए।

तदन्तर उस काल और उस समय में भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ शिष्य भगवान गौतम स्वामी ने अपने वेले के पारणे हेतु भगवान की सेवा मे आकर आज्ञा प्राप्त की। भगवान की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर वे उक्त उद्यान से निकलकर ईर्यासमिति का पालन करते हुए नगरी की ओर रवाना हुए। जब वे उक्त नगरी में प्रवेश कर गोचरी के निमित्त ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में घूमते हुए राज मार्ग की ओर आए तो उन्होंने वहां बहुत से हाथी, घोड़े और शस्त्रधारी सिपाहियों के बीच एक स्त्री-पुरुष के जोड़े को देखा जिनके दोनों हाथ पीछे की ओर बन्धनों से जकड़े हुए थे। उनके सामने अपमान सूचक फूटा ढोल बजाया जा रहा था और दर्शकों की अपार भीड़ उन्हें अपशब्द कहकर तिरस्कृत कर रहे थे। उन दोनों के नाक-कान छेदन करके काले मुंह कर दिए गए थे। साथ ही चौराहे चौराहे पर राजा के सिपाही उद्घोषणा कर रहे थे कि इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। ये दोनों अपने द्वारा किए हुए दुष्कर्मों का ही प्रतिफल भोग रहे हैं।

भगवान गौतम स्वामी ने जब उक्त हृदय द्रावक दृश्य देखा तो वे कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध से रह गए। उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि मैंने प्रत्यक्ष मे नरक और नरक का नेरिया नहीं

देखा परन्तु ये दोनों नरक के सदृश यातनाए भोग रहे हैं। और यह प्रत्यक्ष मे नरक के सदृश बीभत्स दृश्य नजर आ रहा है। परन्तु वे उक्त दृश्य को देखकर वहां अधिक देर नहीं ठहर सके। वे वहां से तुरन्त रवाना होकर सीधे भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान को वन्दन करके जो कुछ भी भिक्षा में अन्न पानी लाए थे उसे दिखा दिया। इसके पश्चात् भगवान गौतम स्वामी हाथ जोड़ कर भगवान महावीर से अर्ज करने लगे कि हे भगवन् ! मैंने आज गौचरी के निमित्त जाते हुए राजमार्ग पर जो हृदय विदारक दृश्य देखा उसका वर्णन करते हुए मेरे रोमांच खड़े हो जाते हैं। परन्तु मैं तो सिर्फ यही जानने की इच्छा रखता हूँ कि उक्त स्त्री पुरुष के जोड़े ने अपने पूर्व भव मे ऐसे कौन से अशुभ कर्म किए जिनकी सजा इन्हें इस भव मे इस प्रकार भोगनी पड़ रही है ? हे भगवन् ! ये दोनों पूर्व भव में कौन थे और क्या-क्या दुष्प्रवृत्तिए करके इन्होंने अपनी आत्मा को भारी बना लिया जिससे इन्हें नरक के सदृश दुख उठाना पड़ रहा है।

भगवान गौतम स्वामी के मुंह से उक्त प्रश्न को सुनकर श्रमण भगवंत महावीर स्वामी ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि हे गौतम ! निश्चय से उस काल और उस समय में इसी जबूद्वीप के भरतक्षेत्र मे छगलपुर नाम का एक नगर था। वहां सिंहगिरि नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में छन्नक नाम का एक कसाई भी रहता था। वह बड़ा ऋद्धिशाली होते हुए भी अधर्मी था। वह सदैव अधर्म की ही बातें करता, अधर्म कार्य को देखता, और अधर्म के द्वारा ही आजीविका प्राप्त करके आनन्द मनाता था। उसने अपने यहां बहुत से मेंढ़े, बकरे, रोज, बैल, ससलिए,

सुअर, हिरन, मयूर, और भैंसे वगैरह हजारों की संख्या में पशुओं को बाडे में इकट्ठे कर रखे थे। वह अपने यहा बहुत से पुरुषों को वेतन देकर उक्त पशुओं को पकड़वाने के लिए रखता था और बहुतसे आदमी उक्त पशुओं को घास चराने, पानी पिलाने, और चोरों से संरक्षण करने के लिए भी नियुक्त थे। वह बहुतसे नौकरों को वेतन तथा भोजन भी देता था जो कि उक्त पशुओं को हिफाजत से रखते और उन्हें मारकर उनके मास के टुकड़े करके उसे देते थे। वह छन्नक कसाई तब उन विविध पशुओं के मांस के टुकड़ों को कढ़ाई में तेल डालकर तलता, भूजता और मिर्च मसाला डालकर राजपथ पर वेच देता था। इस प्रकार वह मांस भी वेचता तथा स्वयं भी उस मांस को मदिरा के साथ सेवन करता और जीवन में बडा आनन्द मनाता था। इस तरह वह कसाई का कर्म करते हुए और आनन्दपूर्वक सात सौ वर्षों का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके यथा समय काल करके चौथी नरक में दस सागरोपम की स्थिति वाला नेरिया रूप में उत्पन्न हुआ।

उक्त नरक के महान दुखों को भोगकर और आयुष्य पूर्ण करके वह छन्नक नाम का कसाई वहा से निकलकर उक्त भद्रा सेठानी के यहां बालक रुप मे उत्पन्न हुआ। चूकि अभी तक भद्रा सार्थवाहिनी के कोई बच्चा जीवित नहीं रहता था अतएव उसने उक्त बालक को जन्मते ही गाड़ी के नीचे पटकवा कर पुनः मगवा लिया। वहा इसका नाम सगडकुमार रखा गया। कालान्तर में इसके माता-पिता का असमय मे ही देहावसान हो गया। अपने माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने पर सगड कुमार अकेला रह गया। यह अभी बहुत छोटी उम्र का था। इस पर

किसी का अकुश नहीं रहने के कारण यह कुसंगति में फस गया। इसमे थोडे ही समय में जुआ खेलने, चोरी करने, शिकार खेलने, मांस-मदिरा सेवन करने वैश्या गमन करने तथा पर स्त्री गमन करने की भी आदत पड गई। उक्त कुव्यसनों में फस जाने के कारण इस पर लोगों का कर्ज भी बढ गया। जब यह उक्त कर्ज अदा नहीं कर सका तो उन लोगों ने कोतवाल को रिश्वत देकर इसका मकान भी नीलाम करवा लिया और इसे मकान से धक्के देकर भी निकाल दिया।

अब वह सगडकुमार धोबी के कुत्ते की तरह न घर का ही रहा और न घाट का ही रहा। इस प्रकार वह निरकुश, निराधार और निराश्रित होकर इधर-उधर भटकने लगा और बुरे आदमियों की सोहबत मे फॅसकर स्वय भी अव्वल नम्बर का बदमाश बन गया। कुछ समय बाद वह इसी प्रकार भटकते हुए एक दिन उक्त सुदसणा नाम की गणिका के पहुँच गया और उसके साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए जीवन गुजारने लगा। वह चोरी करके बहुत-सा धन उस वैश्या को लाकर देने लगा।

कालान्तर में उक्त नगरी के प्रधान सुसेन की नजर उक्त वैश्या पर पड़ी तो वह उस पर मोहित होगया और उसने सगड़-कुमार को वहां से धक्के देकर निकलवा दिया। बाद मे उस दीवान ने उस गणिका को अपने घर में स्त्री बना कर रख लिया और उसके साथ ऐशोआराम करते हुए अपना जीवन गुजारने लगा।

वह सगड़कुमार सुदंसणा गणिका के यहां से निकाले जाने पर अन्यत्र कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सका और उसकी तलाश मे इधर-उधर पागल की तरह भटकता हुआ समय व्यतीत करने लगा। परन्तु अभी तक उसे गणिका से मिलने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका। परन्तु भाई! जिसको जिसकी उत्कृष्ट इच्छा होती है वह उसे कभी न कभी प्राप्त हो ही जाता है। तो उसी नियम के अनुसार उसे एक दिन तलाश करते हुए उक्त गणिका मिल गई। वह पुनः उसके साथ पूर्ववत् भोग-भोगते हुए वेश्या के पास परोक्ष रूप मे रहने लगा। इस प्रकार उसे वहा रहते हुए काफ़ी समय व्यतीत होगया।

परन्तु एक समय जब सुसेन प्रधान स्नान करके तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने अनुचरों के साथ उस गणिका के पास पहुचा तो उसने जाते ही अकस्मात् उस सगड़-कुमार को गणिका के साथ भोग भोगते हुए देख लिया। ज्योंही प्रधान ने उसे देखा त्योंही उसने क्रोधित होकर अपने नौकरों से कहा कि इस बदमाश की मुश्कें बाध लो और इसे अपने दुष्कर्म की अच्छी तरह सजा दो। यह सुनते ही उसके नौकरों ने उसे पकड़ लिया और लातों-घूसों से मारते हुए उसका दही की तरह मथन कर डाला। बाद में वह सुसेन प्रधान उसे मुश्कें बधवाकर सगडकुमार तथा गणिका को राजा के पास लेगया। राजा महचन्द ने उन दोनों को पकड़कर लाने का कारण पूछा। तब उस प्रधान ने कहा कि, महाराज! इस पुरुष ने मेरे अन्तःपुर मे पहुँच कर मेरी स्त्री के साथ बलात्कार किया है अतएव इन दोनों को अपने अन्याय की सजा दी जानी चाहिए।

राजा ने अपने मन्त्री के मुंह से उक्त फरियाद सुन कर उससे कहा कि मन्त्रीजी ! आप स्वय ही इन दोनों को अपने अपराध की सज़ा दे सकते हो। जब राजा की तरफ से उसे ही दण्ड देने की आज्ञा प्राप्त हो गई तो उसने उन दोनों को शूली की सजा का हुक्म दे दिया।

इस प्रकार हे गौतम ! तू जिस स्त्री-पुरुष के जोड़े को बाजार मे नरक के नेरिए के समान दु ख भोगते हुए देख कर आया है वह सगडकुमार और सुदंसणा है। चू कि सगडकुमार के जीव ने छन्नक कसाई के भव मे महान पापों का सञ्चय किया है और इस भव में भी बहुत-से पाप कर्म किए इसलिए यह उन कर्मों का फल भोग रहा है।

भगवान महावीर के मुखारविन्द से उक्त प्रश्न का समाधान हो जाने के पश्चात् भगवान गौतम स्वामी ने पुन प्रश्न किया कि हे भगवान् ! यह सगडकुमार यहां से आयुष्य पूर्ण करके कहां कहा जन्म लेगा और कब यह कर्म-बधनों से मुक्त होगा ?

तब भगवान ने गौतम स्वामी के उक्त प्रश्न का प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि हे गौतम ! यह सगडकुमार यहां दिन के तीसरे भाग में अपनी गणिका के साथ एक लोहे की गरमागरम स्त्री प्रतिमा के ऊपर चिपकाया जायेगा और इसे कहा जायगा कि दुष्ट इसका सेवन कर। बाद में वह उक्त असह्य वेदना को भोगते हुए अपने सत्ताईस वर्ष की उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण करके पहली नरक में जाकर नेरियापणे उत्पन्न होगा। उक्त गणिका भी मरकर पहली नरक मे जाकर उत्पन्न होगी। इस प्रकार वे दोनों ही

पहली नरक में अनेक प्रकार की यातनाएँ भोगते हुए यथा समय काल करके राजगृह नाम के नगर में एक चण्डाल के यहा भाई बहिन के रूप में जोड़ले उत्पन्न होंगे। वारहवें दिन अशुचि कर्म से निवृत्त होकर इनका नामकरण किया जायेगा। यहा भी इनके नाम सगड और सुदंसणा रखे जायेंगे। इस प्रकार वे दोन जब बाल्यावस्था को पार कर युवावस्था मे प्रवेश करेंगे तो दोनों के सौंदर्य फूट पड़ेंगे। परन्तु सगड अपनी सुदसणा नाम की बहिन के रूप लावण्य को देखकर मूर्छित हो जायेगा। वह कामान्ध बन कर अपनी बहिन के साथ ही अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लेगा। इस प्रकार वह उसके साथ मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगते हुए विचरण करता रहेगा।

कालान्तर में सगड़ अपनी होशियारी के कारण उक्त राजा के यहां चुगलखोर का ओहदा प्राप्त कर सी० आई० डी० पुलिस का कार्य करने लगेगा। उक्त ओहदे को प्राप्त करके भी वह अधर्म कार्य करने, सुनने और देखने वाला होगा। वह कुकर्म सेवन करके वड़ा आनन्द मानेगा। इस प्रकार इस जीवन में भी वह वहुत पापकर्म इकट्ठे कर लेगा। इससे उसकी आत्मा अत्यधिक भारी हो जायगी। भाई! जो चीज भारी होती है वह नीचे की ओर ही जाती है।

तो वह सगड़ भी अपनी आत्मा को पापकर्मों के वोझ से भारी वनाकर और यथा समय मनुष्य जीवन को पूर्ण करके पुनः पहली नरक में दुख भोगने के लिए जाकर उत्पन्न होगा।

फिर पहली नरक से निकल कर उसकी आत्मा ससार में अनेक योनियों में परिभ्रमण करती हुई दुख पाती रहेगी। इसके

बाद जब वह मर कर पशुयोनि मे उत्पन्न होगा। पशुयोनि की स्थिति को पूर्ण करके यह दूसरी नरक में उत्पन्न होगा। वहां से निकल कर यह फिर पशु बनेगा और उस योनि से निकलकर यह अनुक्रम से तीसरी, चौथी और पांचवीं नरक मे जाकर उत्पन्न होगा।

पांचवीं नरक की स्थिति को पूर्ण करके यह स्त्री रूप में उत्पन्न होगा। उक्त योनि का आयुष्य पूर्ण करके यह छठी नरक मे जाकर फिर नेरियापणे उत्पन्न होगा। इसके बाद वहां के कष्ट भोग कर यह मनुष्य बनेगा। मनुष्य के आयुष्य को समाप्त कर यह सातवीं नरक मे उत्पन्न होगा और वहां के महान कष्टों को सहन करेगा। वहां से निकलकर यह पशु योनि में उत्पन्न होगा।

भाई! इसने छन्नक कसाई के भव मे अपनी सात सौ वर्षों की उत्कृष्ट अवस्था में बहुत से मूक जानवरों को नृशंसतापूर्वक मार कर बहुत पाप कर्म इकट्ठे कर लिए थे और अन्यान्य योनियों मे भी पाप से पाप बढ़ते ही गए अतएव इसे उन पाप-कर्मों का बदला चुकाने के लिए दुख ही दुख उठाने के लिए उत्पन्न होना पड़ा। जब तक इसके पाप कर्मों का बोझ हल्का नहीं हुआ तब तक यह नीचे ही नीचे गिरता गया। परन्तु जब इसके पाप कर्मों का बोझ हल्का हुआ और पुण्य उदय में आया तो यह पशु योनि से निकलकर बनारस नगर के तालाब मे मच्छ रूप में उत्पन्न होगा। एक दिन इसे कोई मछलिए पकड़ने वाला जाल फेंककर पकड़ लेगा और इस प्रकार उसके प्राणान्त हो जायेंगे। वह अपनी मच्छ योनि को पूर्ण करके उसी नगर में एक सेठ के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न होगा। उक्त सेठ के यहां पुत्रजन्म की

खुशी में उत्सव मनाया जायेगा और इसका पालन पोषण आनन्द पूर्वक किया जायेगा। जब यह जवानी मे प्रवेश करेगा तो एक दिन इसे तथागत मुनिराजों के दर्शन होंगे। यह मुनिराजों की वैराग्यमयी वाणी सुनकर संसार से विरक्त हो जायेगा और अपने माता पिता से पूछकर साधु अवस्था धारण कर लेगा। साधु बनकर यह उत्कृष्ट करनी करेगा और अन्तिम समय में संलेषणापूर्वक समाधि मरण करके प्रथम सौधर्म देवलोक मे जाकर देवता रूप में उत्पन्न होगा। फिर उक्त देवलोक से च्यव कर यह पुनः मानव जन्म को धारण करेगा। इस प्रकार मनुष्य भव को पूर्ण करके दूसरे देवलोक में जाकर उत्पन्न होगा। अन्तमें पाच अणुत्तर विमानों में उत्पन्न होकर और वहा से च्यव कर यह महाविदेह क्षेत्र में सब प्रकार से योग्य घर में जाकर उत्पन्न होगा। जब यह वहा उत्पन्न होगा तो इसके माता-पिता जो धर्म कार्य में शिथिल हो चुके थे वे पुनः धर्माराधना मे दृढ़ हो जायेंगे। इसलिए इसका नाम दृढ़पइण्णा रखा जायेगा। जब यह बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था को प्राप्त करेगा तो इसे तथागत मुनिराजों के दर्शनों का सुयोग प्राप्त होगा। उक्त मुनिराजों की वाणी सुनकर यह वैराग्यावस्था को प्राप्त कर लेगा। फिर यह अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर भगवती दीक्षा अङ्गीकार कर लेगा। इस समय साधु अवस्था में ऐसी उच्च करनी करेगा कि उसी भव में समस्त कर्मों को काट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बन जायेगा।

भाई ! उक्त अध्ययन को श्रवण कर आप भाई-बहिनों को भी निष्कर्श स्वरूप यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि जिस प्रकार सगड़कुमार की आत्मा ने अपने छन्नक कसाई के भव मे

महान पाप कर्म करके अनेक वार नरक और तिर्यञ्च योनियों में उत्पन्न होकर नाना प्रकार के असह्य कष्टों को भोगा उसी प्रकार यदि हम भी निरपराध प्राणियों के प्राण विसर्जन करेंगे, दूसरों की आत्माओं को कष्ट पहुंचायेंगे, वैश्यागमन करेंगे और परस्त्री गमन करेंगे तो हमे भी विविध योनियों मे जन्म धारण करके महान कष्ट भोगने पड़ेंगे। तो हमको अपने जीवन मे शुभ कर्मों का ही सचय करना चाहिए क्योंकि शुभकर्म करने से पुण्य का सचय होता है और आत्मा हल्की होकर ऊपर की ओर गति करने लगती है। इस प्रकार एक दिन यह आत्मा समस्त कर्मों से हल्की होकर मोक्ष-पद प्राप्त करने की अधिकारिणी वन जाती है।

अचम्भे का बच्चा

भाई! यह आत्मा अपने जीवन मे जैसे-जैसे कर्म करती है वैसे ही फल उसे आगामी जन्म मे भोगने पड़ते हैं। तुम यदि इस जीवन मे पाप कर्मों का सचय करोगे तो तुम्हें ही उनके कड़वे फल भोगने पड़ेंगे। जो तुम पुण्य कर्म करोगे तो उसका शुभ फल भी तुम्हें ही आनन्ददायक होगा। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जो समय वीत गया उसकी चिंता नहीं करते हुए जो समय हाथ में है उसकी ही कीमत करके सफल वनालो। आपको यह मानव जीवन महान कष्टों को भोगने के पश्चात् प्राप्त हुआ है अतएव इस छोटीसी जिंदगी मे यदि सत्कर्म कर लोगे तो पूर्व जन्म के सचित पाप वन्धन भी छूट जायेंगे और भविष्य उज्जवलतर वन जायेगा। परन्तु यदि इस जीवन में भी दुष्कर्मों का सेवन किया और परस्त्री-गमन, वैश्या

गमन, चोरी, जुआ, शिकार या मांस मदिरा के सेवन में जीवन गुजार दिया तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो जितशत्रु राजा की परस्त्री में मुग्ध होने के कारण होने वाली है। इसलिए दुराचरण से बचकर अपने जीवन को शुभ कर्म मे व्यतीत करो।

हां, तो मैं अब आपके समक्ष कुछ वर्णन अचम्भे के बच्चे के सम्बध में भी सुना देना चाहता हूं। मैंने कल आपके समक्ष यह भाव सुनाया था कि श्रीपुर का राजा जितशत्रु सागर सेठ की सेठानी श्रीमती के सौंदर्य को देखकर कामान्ध बन गया। उसने उसकी प्राप्ति के लिए अपने सुबुद्धि नाम के प्रधान से निस्सकोच भाव से उपाय पूछा। उक्त मत्री राजा के मुंह से उक्त घृणास्पद बात सुनकर अवाक् रह गया। वह थोड़ी देर के लिए विचार में पड़ गया और सोचने लगा कि महाराज का आज तक का जीवन बड़ा ही निष्कलक रहा है। परन्तु आज इनकी कैसी कुत्सित भावना हो गई कि अपनी पुत्री के प्रति भी काम वासना जागृत होगई। जो राजा बस्ती का पिता कहलाता है और वही यदि अपनी बहिन-बेटियों को बुरी दृष्टि से देखने लगे तो वह राजा कहलाने का अधिकारी नहीं रह सकता। वह राजा के रूप में भी राक्षस माना जाता है। और मानव होते हुए भी दानव वृत्ति में निवास कर रहा है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि ऐसे न्यायी और धर्मात्मा राजा के दिल मे कुत्सित भावना कैसे आ गई ? चू कि मैं राजा का नमक खा रहा हूं और मन्त्री पद पर कार्य कर रहा हूं अतएव अपने मालिक को नेक सलाह देना और कीचड़ से बाहर निकालना यह मेरा परम कर्त्तव्य है। मुझे इन चादी और सोने के टुकड़ों के लालच में पड़कर महाराज को उल्टी सलाह देना अनुचित है।

इस प्रकार मन्त्री ने अपने मन मे दृढ़ निश्चय करके प्रत्यक्ष में राजा जितशत्रु से हाथ जोड़ कर कहा कि हे राजन्! आपने जो मुझ से उक्त कार्य के लिए सलाह पूछी और मुझे ही उक्त कार्य करने का आदेश दिया तो मैं उसके लिए अपने आपको अनुपयुक्त समझता हूँ। यद्यपि आपकी मर्जी के खिलाफ ननूनच करना मुझ जैसे मन्त्री को शोभा तो नहीं देता परन्तु आपके उज्ज्वल यश की सुरक्षा के लिए एक अर्ज भी कर देना चाहता हूँ। मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आप जिस उच्च पद पर आसीन है उस पद पर रहते हुए आपको परस्त्री के साथ दुराचरण सेवन करने की भावना को तिलाञ्जली दे देनी चाहिए। क्योंकि एक राजा के लिए इस प्रकार की निकृष्ट भावना का उत्पन्न होना भी महापाप है। तब एक पराई स्त्री को प्राप्त करके अपनी ख्विश पूरी करने में तो कितने खतरे का सामना करना पड़ेगा! मुझे आप जैसे समझदार राजा को सलाह देना शोभा तो नहीं देता परन्तु कहे बिना रहा भी नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कि इस क्षणिक सुख के लिए कहीं आप पर हमेशा के लिए कलङ्क का टीका न लग जाय और आगे लिखे जाने वाले इतिहास मे कहीं आपका नाम भी रावण, कीचक, दुश्शासन या मणिरथ की तरह घृणित शब्दों में न लिखा जाय। अन्यथा भविष्य में आने वाली पीढ़ी जब इतिहास में आपका नाम देखेगी तो आपका नाम लेकर थूकेगी और कहेगी कि जितशत्रु राजा बड़ा दुराचारी, बदमाश और परस्त्री गामी था। इसलिए हे महाराज! यद्यपि मेरे विचार आपको तीर की तरह चुभेंगे परन्तु मैं आपका हितैषी बनकर आपको इस अपयश के अन्ध कूप मे पडने से बचाना चाहता हूँ। देखिए! परस्त्री के पीछे कामान्ध बनकर बड़े बड़े शूरवीर

राजाओं ने अपने चिर सचित उज्जवल यश को अपयश में बदल दिया और संसार की नज़रों से तिरस्कृत होकर अनेक जन्मों तक कष्ट भोगने के लिए तैयार हो गए।

हे राजन्! उन बदनाम पुरुषों के नाम लेकर इतिहास साक्षी रुप मे कह रहा है कि:—

रावण राज्य गवा दिया, शास्तर को परमाण।
लाल रे।
पर नारी चित्त चावता, कीचक खोया प्राण॥
लाल रे।

भाई! यदि हम प्राचीन इतिहास की तरफ दृष्टिपात करें तो हमें मालुम होगा कि परस्त्री को बदनीयती से देखने मात्र से वडे बड़े नराधिप अपयश के भागी वनकर नरक गामी वन गए। देखो! राजा रावण का नाम तो आपने अच्छी तरह सुना होगा और समय-समय पर सुनते ही रहते हैं। वह तीन खण्ड का स्वामी था। सोने की लका मे रहता था और बड़ी-बड़ी ऋद्धियों का धारक था। परन्तु सती सीता के रुप-लावण्य को देखकर वह विमोहित हो गया। वह कामान्ध वनकर उसे साधु का वेप धारण करके किसी प्रकार उठा लाया। उसने सीता को अशोक वाटिका में रखकर उससे पटरानी वनने की प्रार्थना की। जव वह प्रेम व्यवहार करने पर भी राजी नहीं हुई तो उसने कई प्रकार से उसे शरीरिक यातनाए दी। जव सीता किसी प्रकार भी अपने सतीत्व धर्म को खण्डन करने को तैयार नहीं हुई तो वह वलात उसके धर्म को नष्ट करने को तैयार होगया। परन्तु रावण अपनी इच्छा को पूरी भी नहीं कर सका और राम लक्ष्मण के हाथों

असमय में ही मरकर अपने पाप कर्मों का फल भोगने के लिए एक लम्बे समय के लिए चौथी नरक में चला गया। इस प्रकार उसने अपनी सोने की लङ्का को भी नष्ट करा दिया और ससार के इतिहास मे अपना नाम दुराचारी के रूप में लिखा गया। आज तक भी प्रति वर्ष आसोज के महीने में विजयादशमी के दिन दशहरे के मेले में रावण का पुतला बना कर लोग अपशब्द कहते हुए जला डालते हैं। यही नहीं परन्तु छोटे-छोटे बच्चे भी लकड़ी की तलवारें लेकर रावण को मारने के लिए मेले में जाते हैं और उस पर धूल उछाल कर खुशी मनाते हैं। इस तरह एक मात्र परस्त्री के सेवन करने की इच्छा से ही उसे इस प्रकार तिरस्कृत होना पड़ रहा है। वैसे तो वह त्रिखण्ड का अधिपति और विद्वान् पडित था परन्तु कामान्धता के कारण आज तक बदनाम हो रहा है।

इसलिए प्रधान ने राजा को उक्त रावण का उदाहरण देकर समझाया कि हे राजन्! आप कुपथ पर जाने का विचार छोड़कर सुपथ पर अपने शेष जीवन को व्यतीत करें। जब बड़े-बडे शूरवीर भी उक्त मार्ग का अनुसरण करके बदनाम होगए तब आप तो उनके सामने हैं भी किस कोटि में।

इसी प्रकार मन्त्री राजा को दूसरा कीचक का उदाहरण देकर समझाने लगा कि हे राजन्! विराट नगरी का राजा कीचक था। वह पहले बड़ा प्रजापालक और न्यायी राजा था। परन्तु जब पांचों पाण्डव द्रोपदी के साथ विराट नगरी में कीचक के यहां अज्ञातवास मे समय व्यतीत करने के लिए रह रहे थे तो उस समय द्रोपदी उसके यहां दासी के रूप मे काम कर रही थी।

परन्तु एक दिन द्रोपदी के रूप को देखकर कीचक कामान्ध बन गया। वह द्रौपदी के साथ कुचेष्टाएँ करने लगा।

सती द्रौपदी ने जब देखा कि कीचक की नीयत खराब हो गई और यह मुझे सतीत्व धर्म से भ्रष्ट करना चाहता है तो उसने उसकी सारी हरकतों का वर्णन अपने पति भीम को कह सुनाया। भीम द्रौपदी के मुंह से कीचक की बदनीयती के समाचार सुनकर मन में तो बहुत क्रोधित हुआ परन्तु उसने सोचा कि यदि मैं प्रत्यक्ष रूप में कीचक का सामना करूंगा तो हमारे गुप्त रूप से रहने का रहस्योद्‌घाटन हो जायेगा। अतएव उसने, गुप्त रूप से ही उसे करारा सबक सिखाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इस प्रकार उसने सोच विचार कर द्रौपदी से कहा कि देखो! तुम कीचक को अपने यहां रात्रि में आने के लिए कह देना। मैं उस समय उसको सभाल लूंगा।

दूसरे दिन जब कीचक ने पुनः द्रौपदी से छेडखानी की तो उसने उससे कहा कि अजी! इस तरह से तो किसी की दृष्टि हम दोनों पर पड़ जायेगी और हम दोनों बदनाम हो जायेंगे। अतएव यदि तुम वास्तव में मुझ से प्रेम करते हो तो आज रात्रि को मेरे कमरे में आ जाना। इस प्रकार तुम्हारी मनोकामना भी पूर्ण हो जायेगी और हमको कोई देख भी नहीं सकेगा।

कीचक ने द्रौपदी के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। वह रात्रि में वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर द्रोपदी के स्थान पर पहुँच गया। उसने ज्योंही द्रौपदी के शयनागार में प्रवेश किया त्योंही गुप्त रूप से छिपे हुए भीम ने अपने एक हाथ से उसे

पकड़ लिया और दूसरे हाथ से मकान की छत उठा ली। बाद में उसने उसे उसके नीचे घुसेड़कर ऊपर से उस पर छत रख दी। इस प्रकार उस छत के नीचे दब जाने से कीचक का तो कीचड़ यही निकल गया। भाई ! पर स्त्री को कुदृष्टि से देखने वाले पुरुष का यही अंजाम होता है। वह अपयश का भागी बनकर नरक में अपने कर्मों का फल भोगने के लिए चला गया।

तो हे राजन्। उस कीचक की उसके बदफैलों के कारण दुनिया भर में बदनामी हो गई और आज तक लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते आ रहे हैं। कोई भी भद्र पुरुष उसे अच्छा नहीं बताता। इसलिए उक्त दोनों नराधिपों की जो पर स्त्री को कुदृष्टि से देखने के कारण बदनामी हुई और उन्हें नरकगामी बनना पड़ा तो इससे आपको भी बिना विचारे कोई कदम ऐसा नहीं उठाना चाहिए जिससे आपको और आपके कुल को बदनाम होना पड़े और भविष्य मे भी नीच गति मे उत्पन्न होकर अपने दुष्कर्मों की सजा भोगनी पड़े। क्योंकि किसी ने ठीक ही कहा है कि:—

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनों, जग में होत हसाय॥

अर्थात्—जो भी व्यक्ति बिना सोचे-विचारे कार्य करता है उसे भविष्य मे अपने दुष्कर्म के लिए पश्चाताप करना पड़ता है। वह अपने कार्य को भी विगाड़ लेता है और संसार मे उसकी हंसी होती है।

इसलिए हे राजन् ! आपने जो उक्त सेठानी को प्राप्त करने का विचार किया है उसे दिल से निकाल दीजिए और अपने आज तक के निष्कलंक यश को समुज्ज्वल बनाए रखिए। अन्यथा आपकी बदनामी के साथ साथ दुनिया मुझे भी पागल बताएगी और कहेगी कि धिक्कार है उस खुशामदी और नमकहराम प्रधान को जिसने अपने राजा को बुरी सलाह देकर दुनिया की दृष्टि में बदनाम करवा दिया। इसलिए हे राजन् ! मेरी आपसे कर जोड़ प्रार्थना है कि आप अपनी बुरी भावना को तहदिल से निकाल दीजिए और उक्त दुर्भावना के लिए प्रायश्चित करके शुद्ध हो जाइए।

यद्यपि सुबुद्धि प्रधान ने साहस पूर्वक अपनी बुद्धि के अनुसार राजा को पर स्त्री गमन के दुष्परिणाम उक्त नराधिपों के उदाहरण देकर समझाए परन्तु राजा जितशत्रु के शरीर पर जो कामदेव ने अच्छी तरह कब्जा जमा लिया था उसके हृदय पर कोई असर नहीं पड़ा। मन्त्री के सद्विचारों को और नेक सलाह को सुनकर भी वह निश्चेष्ट बना रहा। उसकी कामदृष्टि बराबर भद्रा सेठानी के रूप को ही तलाश करती रही। भाई ! जब मनुष्य इन चर्मचक्षुओं से कोई मनपसद, लुभावनी चीज देख देता है तो उसका हृदय उसे प्राप्त करने के लिए विह्वल हो उठता है। जब तक उसे वह प्रिय वस्तु प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसे जीवन मे शांति नहीं मिलती। तो दरसल ये आखें ही मनुष्य के हृदय मे बुरी भावना के बीज अकुरित कर देती हैं।

श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने भी इस चक्षुरिन्द्रिय के के विषय में वर्णन करते हुए फर्माया है कि:—

रूवस्स चक्खुं गहणं वयन्ति,
चक्खुस्स रूव, गहण वयन्ति।
रागस्स हेउं, समणुन्नमाहु,
दोसस्स हेउ,अ मणुन्नमाहु ॥ २३ ॥

श्रीमद् उत्तराध्ययन-सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन की तेईसवीं गाथा में भगवान महावीर ने बताया है कि यह चक्षु-इन्द्रिय रूप ग्रहण करने मे समर्थ हैं। जब ये आंखें किसी भी सुन्दर चीज पर आकर्षित हो जाती है तो उसे ग्रहण करना चाहती हैं। ये मन पसन्द चीज को देखकर उस पर राग करती हैं और अमनोज्ञ पदार्थ देखकर उस पर द्वेष करने लगती हैं। तो राग और द्वेष दोनों ही पैदा कराने का कारण ये आंखें ही हैं। जब किसी पदार्थ को देखकर अत्यन्त राग हो जाता है तो प्राणी उसमे गृद्ध हो जाता है और बेभान सा होकर उसे प्राप्त करने की कोशिश करता है। वह उसमे इतना गृद्ध हो जाता है कि पतगे की तरह दीपक की लौ में पड़ कर अपने प्राण गवाने मे भी सकोच नहीं करता। तो ये आखें जब किसी सुन्दर स्त्री के रूप को देखकर विमोहित हो जाती है तो मनुष्य के हृदय में काम वासना का एक तूफान खड़ा कर देती है और उसे पापकर्म करने के लिए बाध्य कर देती है। परन्तु भाई! उस दुष्कर्म का खतरनाक परिणाम भी इन्हीं को भोगना पडता है। जब मनुष्य इन आखों के द्वारा किसी सुन्दर पदार्थ को देखता है तो उसका मन उसे प्राप्त करने को लालायित हो उठता है। वह उसे जैसे तैसे प्राप्त भी कर लेता है परन्तु जब दूसरे की दृष्टि में उसके काले कारनामों का भडा फोड हो जाता है तो उसे उसका दण्ड भोगना पड़ता है। इन

आंखों को ही अपने दुष्कर्मों का भयकर परिणाम अश्रुधारा के रूप में सहन करना पड़ता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हे भव्यात्माओं ! अपनी आखों से किसी चीज को देखकर उसके प्रति राग या द्वेष भाव मत लाओ। अन्यथा उसका दुष्परिणाम इन आंखों को अश्रुधारा बहाकर भी भोगना पड़ेगा। जैसे कि स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने इन आंखों की चचलता और उसके दुष्परिणाम के सम्बन्ध में एक सुन्दर दृष्टान्त देकर समझाया है कि किसी समय एक राहगीर अपने घर से निकलकर नगे पैरों ही दूसरे गांव जाने के लिए रवाना हो गया। यह ग्रीष्म ऋतु का समय था और ज्येष्ठ मास मे सूर्य भी तेजी के साथ अपना तापमान पृथ्वी पर छोड़ रहा था। उक्त कडकडाती धूप में कोई पशु पक्षी भी निकलना पसन्द नहीं करता था। जब कि वह राहगीर उक्त गर्मी से लोहा लेने को चल पडा। परन्तु थोड़ी दूर चलने के पश्चात् ही वह उस भीषण गर्मी से व्यथित होकर कहीं ठंडी छाया में अवकाश ग्रहण करने के लिए छटपटाने लगा। इतने ही में उसे कुछ दूरी पर एक बाग नजर आया। वह जैसे-तैसे उस रास्ते की कठिनाई को पार करके उक्त बाग के निकट पहुंच गया। वहां पहुंचकर वह एक आम के वृक्ष के नीचे अपनी थकावट को शान्त करने के लिए लेट गया। उसे वहां लेटते ही ठंडी छाया में आनन्द का अनुभव हुआ और नींद आ गई।

जब वह थोड़ी देर बाद नींद लेकर उठा तो उसने अपने आपको नवीन उत्साह लिए हुए पाया। परन्तु अब भूख भी सताने लगी थी। अतएव उसने क्षुधा निवारण के लिए इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। देखते-देखते उसकी दृष्टि आम्र वृक्ष पर लगे

हुए पके आमों की तरफ चली गई। ज्योंही उसकी आंखों ने उन पके हुए पीले पीले आमों को देखा तो उसके मुह मे पानी भर आया और उन्हें प्राप्त करने के लिए वह छटपटाने लगा। आखिर वह क्षुधा वेदना को सहन नहीं करने के कारण अपने स्थान से उठा और पेड पर चढ़कर उसने बहुत से पके-पके आम तोड लिए। वह उन आमों को तोड कर नीचे उतर आया और इधर-उधर देखने लगा कि कोई वाग का रखवाला तो मुझे नहीं देख रहा है। क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि कोई भी मनुष्य पाप-कर्म करता है तो वह पहिले इधर-उधर अवश्यमेव देख लेता है ताकि कोई उसके पाप-कर्म को देख न ले। भाई! दूसरों की दृष्टि से मनुष्य अपने आपको पापकर्म करते हुए ओझल कर सकता है किन्तु ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि मे तो वे पापकर्म हाथ की रेखाओं की तरह स्पष्टतया झलक रहे हैं।

तो उक्त राहगीर ने भी इधर-उधर देखा और अपने स्थान पर बैठकर उन आमों को चूसने लगा। उसने उन पके हुए मीठे आमों को चूसकर उनकी गुठलियों और छिलकों का एक ढ़ेर लगा दिया। वह आम खाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह मन ही मन उन आमों की तारीफ करने लगा कि वाह! वाह! आम तो बड़े मीठे निकले। अब ज्योंही वह उक्त आमों को खाकर रवाना होने लगा त्योंही वाग के माली की दृष्टि उस पर जा पड़ी। उसने दूर से देखा कि कोई आदमी वाग में घुस गया है और उसने आम चोरी से खाकर वहीं गुठलियों और छिलकों का ढेर लगा दिया है। अतएव वह उसके पास पहुँचा और उससे कहने लगा कि भाई! तुमने विना पूछे आम तोड़कर कैसे खाए? तब वह राह-

गीर माली से कहने लगा कि भाई ! मुझे भूख बहुत जोर की लग
रही थी और कोई बाग का माली भी मुझे दिखाई नहीं दिया
अतएव मैंने इस आम्रवृक्ष से ही पूछ लिया कि—"लू दो चार ?"
तब इस आम्रवृक्ष ने मुझसे कहा कि—"ले दस बीस"। और
इस प्रकार उसकी इजाजत लेकर मैंने आम तोड़ लिए और यहीं
बैठकर चूस लिए। जब उस माली ने उक्त राहगीर के मुह से इस
प्रकार का सफाई के साथ जवाब सुना तो उसने विचार किया कि
इसे भी इसी प्रकार का सफाई के साथ दण्ड देना चाहिए।
अतएव उसने भी अपनी लाठी को सम्बोधन करके कहा कि—
"दू दो-चार ?" तब उस लाठी की तरफ से ही प्रत्युत्तर मे उसने
कहा कि:—"दे दस-बीस"। और जब इस प्रकार उसने लाठी से
कहला लिया तो उसने उस राहगीर को पीटना शुरु कर दिया।
लाठी की मार पड़ने से उसकी हड्डी पसलिया ठीक हो गई और
वह रोने लगा। जब वह रोने लगा तो कवि अपनी भाषा मे
उसके पापकर्म का चित्रण कर कहने लगा कि:—

देख्या जो दौड्या नहीं; दौड्या और जणा,
दौड्या जो तोड्या नहीं तोड्या और जणा।
तोड्या जो खाया नहीं, खाया और जणा,
खाया जो पिटिया नहीं, पिटिया और जणा।
पिटिया जो रोया नहीं, रोया और जणा ॥

अर्थात्:—उक्त पके हुए आमों को तो इन आंखों ने देखा
था परन्तु दौड़ने में पैर थे, तोड़ने मे हाथ थे, खाने में मुंह था,

और पिटने में शरीर था। इतना सब कुछ होने के बावजूद भी रोना तो इन्हीं आंखों को पड़ा। तो देखने मे भी आंखें थी और पाप कर्म का परिणाम भी इन्हीं आंखों को भोगना पड़ा। ये आखें ही पाप कर्म करने मे आगे हो जाती हैं परन्तु उनका फल भी इन्हीं आखों को अन्त में भोगना पड़ता है। इसलिए किसी सुन्दर पदार्थ को देखो तो सही परन्तु सुदृष्टि से देखो ताकि उसमे गृद्ध नहीं होना पड़े और उसका दुष्परिणाम भी भोगना नहीं पड़े।

तो उक्त मन्त्री भी राजा से निवेदन कर रहा है कि महाराज ! उक्त सेठानी के रूप लावण्य को इन आंखों ने देख कर आपके मन मे दुर्भावना पैदा करदी है और आप उसमें इतने व्यमोहित हो गये हैं कि आपके हृदय में उसकी ही साकार मूर्ति समा गई है और आप उसे किसी भी तरह प्राप्त करने को छट-पटा रहे हैं। परन्तु याद रखिये ! परस्त्री के मोह मे फॅसकर जिस प्रकार रावण और कीचक की असमय मे ही मृत्यु हुई और ससार मे बदनामी हुई वैसे कहीं आपको भी इस चक्कर में फॅस कर नहीं पछताना पड़े। इसलिए मेरी तो आप श्री के चरणों में सानुरोध प्रार्थना है कि आप अपने दिल से उक्त श्रीमती के प्रति कुत्सित भावना को निकाल कर शुद्ध हो जाइये।

देखिए ! मणिरथ को भी परस्त्री के चक्कर में पड़कर नरक मे जाना पड़ा। उसके पल्ले भी कुछ नहीं पड़ा और बदनामी का टीका ससार की नजरों में लगवा लिया।

आपको मालूम होगा कि मणिरथ युगबाहू का बड़ा भाई

था। वह अपने राज्य में सानन्द शासन कर रहा था। उसके महल में रानियों की भी कमी नहीं थी। परन्तु फिर भी एक दिन वह अपने छोटे भाई की स्त्री के रूप को देखकर उस पर मोहित होगया। वह अपनी काम-वासना के वेग को रोक नहीं सका। चूंकि उसके हाथ मे शासन सत्ता की बागडोर थी अतएव वह धनमद, बलमद, शरीरमद, राजमद और ठकुराईमद में छका हुआ अपने सामने सबको मच्छर की तरह देखने लगा। जब उसकी भावना दूषित होगई तो उसने अपने भाई की स्त्री सती मयणरहा के पास अपने दिल का सन्देशा भेजा। मयणरहा ने जब अपने जेठ की दुर्भावना को जानी तो वह विस्मित होगई। उसने विचार किया कि देखो! ससार की मर्यादा में कितना परिवर्तन होगया है। एक छोटे भाई की स्त्री जो कि उसके लिए पुत्री के समान है परन्तु उसे भी वह स्त्री के रूप मे देखना चाहता है। इससे बढ़कर उसकी नीचता और क्या हो सकती है? वह पूर्ण पतिव्रता स्त्री थी और स्वप्न मे भी कभी पर-पुरुष की वाञ्छा करने वाली नहीं थी अतएव उसने सोच विचार कर पुन जवाब भिजवा दिया कि कल तुम मेरे पास आ सकते हो। बाद मे उसने अपने पति को भी मणिरथ द्वारा भेजा गया सदेशा कह सुनाया। उसने अपने पति को भी आगाह कर दिया कि तुम अपने भाई की चिकनी चुपड़ी बातों पर विश्वास मत करना।

जब मणिरथ के पास मयणरहा के समाचार पहुँचे तो वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने उसी वक्त अपने भाई युगबाहू को बुलवाया और उससे कहा कि आज ही तुम्हें अमुक जगह दुश्मनों का मुकाबला करने को जाना है। युगबाहू भोले स्वभाव का था। उसे

अपने भाई के प्रति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था। अतएव वह अपने भाई की आज्ञानुसार दुश्मन से लोहा लेने को रवाना हो गया। वहां उसने लड़ कर विजय प्राप्त की और अपने शहर की ओर आया।

इधर जब मणिरथ ने देखा कि अब तो मैदान बिल्कुल साफ है और मेरे दुष्कर्म का प्रतिकार करने वाला कोई नहीं रहा अतएव वह उसी रात को स्नान-मज्जन करके तथा वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित होकर मयणरहा के महलों में निर्भीकता पूर्वक जा पहुँचा। जब युगबाहू ने अपने बड़े भाई को असमय में महलों में देखा तो उसे रंज तो अवश्यमेव हुआ परन्तु अपने भाई से कुछ कहने की भी उसे हिम्मत न हो सकी। उसने अपने भाई का स्वागत किया और एक जगह बैठकर बहुत देर तक बातचीत करने लगा। उसे अभी तक भी अपने भाई के प्रति कोई शक शुबह न हो सका। वह उसे अभी तक देवता के रूप मे देख रहा था।

इस प्रकार जब मणिरथ बात चीत करके वापिस लौटने लगा तो वह अपनी स्त्री के सावचेत कर देने के उपरांत भी कुछ दूर तक पहुँचाने को गया। परन्तु मणिरथ के दिल में तो पाप समाया हुआ था और वह उसकी स्त्री को प्राप्त करके कामवासना की तृप्ति करना चाहता था अतएव उसने अंधकार मे अच्छा मौका देखकर युगबाहू का तलवार से शीश काट दिया। देखो! इस कामवासना के पीछे अन्धा बनकर एक बड़ा भाई अपने छोटे भाई को मौत के घाट उतारने में भी नहीं लजाया। यह कामान्धता एक सगे भाई से भी अमानवीय कृत्य करवा लेती है। परन्तु मनुष्य का पाप उसे ही खा जाता है।

जब मणिरथ अपने भाई को मारकर बदनामी के डर से तुरन्त घोड़े पर सवार होकर जाने लगा त्योंही कुछ दूरी पर घोड़े की एक टाप एक सर्प पर पड़ गई। वह सर्प क्रोध से उछलकर मणिरथ के शरीर से लिपट गया और उसने उसे डस लिया। सर्प के काटते ही मणिरथ वहीं घोड़े से नीचे गिरकर समाप्त हो गया। इस प्रकार एक दुरात्मा को उसके नीच कर्तव्य की सजा फौरन मिल गई।

इधर जब अपने पति के मारे जाने के समाचार सती मयणरहा को प्राप्त हुए तो वह निस्तब्ध सी रह गई। परन्तु कुछ ही क्षणों में अपने आपको सभाल कर अपने पतिदेव के शव के सन्निकट पहुंची और पति के शीश को अपनी गोदी में रखकर कहने लगी कि हे प्राणनाथ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आपके भाई ने आपके साथ विश्वासघात किया है और उस कारण आपके अंतःकरण में उसके प्रति रोष उत्पन्न हो रहा होगा। परन्तु उस नीच ने अपने दुष्कर्म का प्रतिफल अपने आप पालिया है। वह भी तत्क्षण सर्प से दंशित होकर अपनी करनी के फल भोगने के लिए तदनुसार गति में चला गया होगा। परन्तु अब यह समय किसी के प्रति राग-द्वेष करने का नहीं है। आप अपनी आत्मा को सद्विचारों पर लगाते हुए आर्तध्यान से मन को हटा लें। क्योंकि अन्तिम समय मे जैसी मति होती है वैसी ही गति हो जाती है। अतएव आपको मैं अनन्त सिद्ध भगवान की साक्षी से अठारह ही पापों का परित्याग कराती हूँ और आमरण अनशन व्रत धारण कराती हूँ। आप अपने मन में अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु रूप पच परमेष्ठि का शरणा

ले लें। इस प्रकार जब तक युगवाहू के शरीर मे प्राणों का सचार रहा तब तक वह सती बराबर उसे धर्म की बाते सुनाती रही। युगवाहू की आत्मा भी आर्त रौद्र ध्यान से हटकर धर्म की ओर प्रवृत्त हुई और इस प्रकार शुभ विचारों मे मृत्यु को प्राप्त कर वह प्रथम देवलोक मे जाकर उत्पन्न हो गया। इस प्रकार सती ने धैर्य धारण करके और मोह को त्याग कर अपने पति को अत समय मे धर्म का साफ देकर उसके जीवन को सुधार दिया। वास्तव में उसने अपने पतिव्रता धर्म का सच्चे मायने में पालन किया।

परन्तु आज हम यदि अपने समाज की ओर दृष्टिपात करे तो कुछ विचित्र सा ही दृश्य दृष्टिगत होगा। आज समाज मे कुरूढ़ियों ने घर कर लिया है। जब कोई स्त्री का पति या कुटुम्बी काल धर्म को प्राप्त हो जाता है या होने लगता है तो उसकी स्त्री या कुटुम्बी जन उसके मोह में अंधे बनकर रोना-पीटना प्रारम्भ कर देते है। और मरने के बाद भी बहुत महीनों तक "लोग क्या कहेंगे" इस दृष्टि कोण से मन मसोस कर भी लोक व्यवहार का पालन करने के लिए रोते रहते हैं। जब कि वे सब अच्छी तरह जानते हैं कि जो जन्मा है सो एक दिन अवश्य मृत्यु का आलिंगन करेगा परन्तु फिर भी उक्त मृत आत्मा के मोह में फसकर और रुदन करते हुए अपने भी कर्म बन्धन कर लेते हैं। भाई! आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो यह रूढ़ि आत्मा की हनन करने वाली है। शास्त्रकार तो इसी बात पर जोर देते हैं कि किसी भी स्वजन की मृत्यु के अन्तिम क्षण तक उसे धर्म श्रवण कराते हुए उसके आर्तध्यान को धर्मध्यान में परिवर्तन कराने का

भरसक प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस प्रकार धर्म का साक्ष देने से ही आप वास्तव में उस मृत आत्मा के माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री पुत्र, पुत्री या अन्य रिश्तेदार का फर्ज अदा करने वाले कहे जा सकते हैं। अन्यथा स्वार्थ के सगे सम्बन्धी तो दुनियां में हजारों लाखों होते हैं। तो आपको सती मयणरहा के उदाहरण से यही शिक्षा लेनी चाहिये कि अंतिम समय में अपने कुटुम्बी-रिश्तेदार को धर्म श्रवण कराकर उसकी गति को सुधारने की तो चेष्टा करेंगे परन्तु रो-धो कर उसकी और अपनी आत्मा को भारी नहीं बनाएंगे।

तो सती मयणरहा ने इस प्रकार अपने पति को अन्तिम समय में धर्म का शरणा दिलाकर उसका जीवन सुधार दिया। बाद में युगबाहू के शव का अंत्येष्ठि क्रिया-कर्म कराया गया।

इसके बाद मयणरहा ने सोचा कि यहां रहकर मेरे सतीत्व धर्म की रक्षा होना असम्भव है अतएव वह एकाकी वहां से निकल पड़ी। वह चलते-चलते एक जङ्गल में पहुँच गई। चूंकि वह गर्भवती भी थी और चलने के कारण उसे थकावट भी बहुत महसूस होने लगी थी अतएव वह एक वृक्ष के नीचे लेट गई। अब उसका गर्भकाल भी पूर्ण हो चुका था अतएव उसने जंगल में ही एक बालक को जन्म दे दिया। जंगल में उसे कर्मवशात् किसी दाई का संयोग भी प्राप्त नहीं हुआ। उसने स्वय ही उठकर पास के जलाशय में अशुचि कर्म निवारण किया और अपने नवजात शिशु को एक पत्थर की शिला पर लेटा कर अपने भाग्य के भरोसे आगे रवाना हो गई। वह बालक भी पुण्यशाली था अतः एव उस हालत में भी पत्थर पर पड़ा-पड़ा ही हाथ-पैर हिलाता

रहा। परन्तु थोड़ी ही देर वाद उधर से एक विद्याधर का विमान उड़ता हुआ गुजरा। उक्त स्थान पर आते ही विद्याधर का विमान रुक गया। उसने अनुमान लगाया कि मेरा विमान या तो किसी शत्रु की वजह से रुका हैं या किसी दुखी दर्दी की वजह से रुका है। अतएव वह नीचे उतरा और इधर-उधर देखकर जब उसकी दृष्टि उस नवजात शिशु पर पड़ी तो वह प्रसन्न होकर उसके समीप आया उसने देखा कि यह तो बड़ा भाग्यशाली पुत्र है और इसका संरक्षण होना भी वहुत जरूरी है अतएव वह उसे विमान मे बिठाकर अपने घर पर ले गया। उसने उसका बड़े लाड चाव से पालन-पोषण किया और जब वह युवावस्था में प्रवेश कर गया तो उसे राज्य गद्दी पर आसीन कर दिया।

इस प्रकार वह वालक आनन्द पूर्वक राज्य करता हुआ जीवन व्यनीत करने लगा। इधर मयणरहा जाते-जाते एक शहर मे पहुँच गई और वहां साध्वियों का योग मिल जाने पर वह उनकी शिष्या वन गई। एक समय वहां श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी का अपने शिष्यों सहित पधारना हुआ तो उक्त साध्वियों के साथ वह भी भगवान के दर्शनार्थ गई। भगवान का समवसरण लगा हुआ था और भगवान परिषद् को धर्मोपदेश फर्मा रहे थे। वह भी भगवान को वन्दन-नमस्कार करके समवसरण में भगवान का धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए वैठ गई। इतने में ही प्रथम देवलोक से उसका पति युगवाहू भी देव रूप में भगवान के दर्शन करने को आया। उसने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि उसके पूर्व भव की पत्नि मयणरहा भी साध्वी वनकर भगवान के समवसरण मे उपस्थित हुई है। अतएव उसने वहां आते ही सर्व

प्रथम मयणरहा को नमस्कार किया। यह देख दूसरे श्रोताओं ने शका समाधान के लिए भगवान महावीर से प्रश्न किया कि हे भगवन्! इस देवता ने यहा आकर सबसे पहिले एक साध्वी को नमस्कार क्यों किया? तब भगवान महावीर ने उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि हे देवानुप्रियों! यह देवता उक्त साध्वीजी को सबसे पहिले नमस्कार इसलिए कर रहा है कि इस साध्वी ने अपने पति युगबाहू को जो कि यहां से मरकर देवता बना है, अन्तिम समय मे धर्म का साझ दिया था। तो यही देवता रूप मे आकर अपनी पत्नि को नमस्कार कर रहा है। और इसका बड़ा भाई मणिरथ जिसने इसको मारा था वह मर कर नरक मे जाकर उत्पन्न हुआ।

तो इस प्रकार मत्री अपने राजा जितशत्रु को मणिरथ का उदाहरण देकर समझा रहा है कि हे महाराज! जिस प्रकार मणिरथ ने परस्त्री की काम-वासना के चक्कर में पडकर दुर्भावना की तो उसे भी मर कर नरक मे जाना पड़ा। इसी प्रकार कहीं आपको भी कुत्सित भावना के कारण भविष्य में दुख नहीं उठाना पड़े। अतएव अभी भी समय है कि आप अपने दिल से उक्त नीच विचारों को निकाल कर श्रीमती सेठानी को प्राप्त करने की भावना को तिलाञ्जलि दे दीजिए।

परन्तु भाई! जब मनुष्य के हृदय में काम वासना की जड़ मजबूती से जम जाती है तो फिर समझाने वाला कितना ही समझाए परन्तु उसकी समझ मे कुछ नहीं आता। आखिर वह हितैषी भी इस प्रकार कहकर सतोष प्राप्त कर लेता है कि "जाकी जैसी भवितव्यता, मेट सके ना कोय" अर्थात्—जैसा तुम्हारे भविष्य में

लिखा है उसे मिटाने वाला कोई नहीं है।

देखो ! रावण को उसकी अनीति पर समझाते हुए उसके दोनों भाई विभीषण और कुम्भकरण कह रहे हैं कि:—

कहे यूं रावण को समझाय,
भविक्षण, कुम्भकरण दोय भाय ॥ टेक ॥
राजन पति राजा वाजो, थांने ई वातां नहीं छाजे।
पर नारी, पर धन हरता वह, चोर अन्यायी वाजे॥कहे॥१॥

अरे ! जब रावण कामान्ध बनकर सती सीता को साधु वेष मे हरण कर अशोक वाटिका में ले आया तो उसे उसके भाई विभीषण और कुम्भकरण दोनों मिलकर समझाने लगे कि हे भाई ! हम आपके भाई है और अनीति के पथ से आपको रोकना हमारा भी फर्ज है। क्योंकि इसमे आपकी बदनामी के साथ-साथ हमारी भी बदनामी है। इसलिए हमारा आपसे यही कहना है कि आप राजाओं के भी राजा कहलाते है और आपके लिए किसी की स्त्री को हरण करके ले आना किसी भी प्रकार से शोभास्पद नहीं है। क्योंकि पराए धन और पराई स्त्री का अपहरण करना तो चोर डाकूओं का कार्य है। यह कर्म नराधिपों का कभी नहीं हो सकता।

अरे ! भाई सा० ! आप सीता को तो चुराकर यहां ले आए परन्तु इसका भविष्य मे परिणाम कितना भयकर हो सकता है। क्योंकि:—

राम, लक्ष्मण दशरथ सुत को, होसी यहा पै आवो।
लङ्का को कर देगा नाश, जद पड़सी तुम पछतावो ॥कहे॥२॥

देखो ! जब सीताहरण की बात दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को मालूम पड़ेगी तो वे सदल-बल सहित यहा आयेंगे और रोष मे आकर उनके द्वारा यह सोने की लङ्का ही नष्ट हो जायेगी। तब फिर आपको अपनी अनीति के लिए पश्चाताप करना पडेगा। इसलिए हम आपको हितैपी बनकर प्रार्थना कर रहे हैं कि आप अपने अशुभ विचारों को बदल दीजिए और इस प्रकार कीजिए कि:—

सीता पीछी सौंप दो स, थे मानों अरज हमारी।
कठिन शब्द मैं आज कहां छा, लीजो नाथ विचारी ॥कहे॥३॥

हे भाई सा० ! अब आप कृपा कर सीता को वापिस लौटा आवें। और राम-लक्ष्मण को कहिए कि मेरी बुद्धि बिगड गई थी इसलिए मैं कामान्ध बनकर तुम्हारी सीता को चुरा कर ले गया था परन्तु अब मैं अपनी भूल सुधार कर इसे वापिस कर रहा हूँ अतएव मुझे क्षमा करते हुए अपनी अमानत वापिस ग्रहण करें। इस प्रकार का कार्य करने से कोई नुकसान उठाना नहीं पडेगा। यद्यपि भाई सा० ! हमारे शब्द आपको कठोर तो अवश्यमेव लग रहे होंगे और हृदय में तीर की तरह चुभ रहे होंगे परन्तु हम तो हित बुद्धि से आपके सामने विचार रख रहे हैं। आपको हमारे उक्त विचारों पर अमल करना बहुत आवश्यक है।

परन्तु भाई ! जिस समय मनुष्य कामान्ध बन जाता है तो उसे किसी की भी नेक सलाह अच्छी नहीं लगती। वह इन्हें हिकारत की दृष्टि से देखने लगता है। हां ! यदि कोई खुशामदी बनकर उस कामान्ध की हां, मे हा मिलाता है तो वह व्यक्ति उसके लिए सन्मान का पात्र बन जाता है।

तो रावण ने अपने भाइयों की बात सुनकर रोष प्रकट किया और उनके सामने अभिमान भरे शब्दों में कहने लगा कि:—

मैं हूं अर्ध भरत में स्वामी, कौन अडे मुझ सामे।
तुम कायर सब दूर रहो, मेरा पुण्य आवसी कामे ॥कहे॥४॥

चूं कि उस पर काम विकार का नशा चढा हुआ था अतएव सत्ता के मद मे अन्धा बनकर अपने भाइयों से कहने लगा कि क्या तुम नहीं जानते कि मैं अर्ध भरत का निरकुश शासक हूँ ? आज तीन खण्ड मे मेरा डका बज रहा है। अरे ! किसी पुरुष की ताकत है जो मेरी शक्ति का मुकाबला कर सके। तुम मेरी छत्र छाया मे रहते हुए भी इतने कायर और बुजदिल बन गए हो कि तुम लोग मुझे भी कायरता का सबक सिखाने आए हो। अतएव तुम लोग मेरी नजरों से दूर हो जाओ। मैं तुम्हारे मुँह से अब एक भी इस प्रकार का शब्द सुनने को तैयार नहीं। भविष्य मे मेरा जैसा पुण्य होगा वैसा देखा जायेगा।

तो कवि महोदय निष्कर्ष स्वरूप कह रहे हैं कि:—

महा हठीले हठ नहीं छोडी, गति जैसी मति आवे।
महा मुनि नंदलाल तणा शिष्य, जोड करी इम गावे ॥कहे॥५॥

स्व० पूज्य खूबचन्दजी महाराज अपनी कविता में कह रहे हैं कि वह रावण हठीला ही नहीं परन्तु महा हठीला था। उसने अपने भाईयों की नेक सलाह को भी ठुकरा दिया। भाई! धर्म, न्याय और परोपकार की बात उसे ही सुहाती है जिसकी भविष्य में शुभगति होने वाली होती है। परन्तु जिसका भविष्य गहन अन्धकार मे होने वाला होता है उसे अच्छी बात भी जले पर नमक छिडकने के समान दुख देने वाली प्रतीत होती है। इसलिए जैसी गति होने वाली होती है वैसी ही मति भी होजाती है।

तो उक्त दीवान ने इतिहास के पन्ने पलट-पलट कर रावण, कीचक और मणिरथ के उदाहरण देकर राजा जितशत्रु को बहुतेरा समझाया और उसे बदनामी का टीका लगवाने से बचाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु राजा पर उसके उपदेश का कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि उस पर तो काम-विकार का नशा जोरदार चढ़ चुका था इसलिए दीवान की हितकारिणी सलाह भी उसे जहर के समान लगने लगी। भाई! जिस व्यक्ति को एक सौ आठ डिग्री का बुखार चढ़ा हुआ है उसे बढ़िया से बढ़िया मिठाई भी जहर का कारण बन जाती है। तो इसी प्रकार उस कामान्ध नराधिप के हृदय पर भी मन्त्री की बातों का उल्टा ही असर पड़ा। वह एक दम क्रोधित होकर कहने लगा कि अरे मन्त्री! तुझे व्यर्थ की बकवास करते हुए भी शर्म नहीं आती। मैंने तो तुझे आज्ञा पालन के लिए कहा था परन्तु तूने तो गुरु

बन कर मुझे ही उपदेश देना शुरु कर दिया। अब मैं अपनी आज्ञा का पालन कराने के अतिरिक्त तेरी कोई भी बात सुनने को तैयार नहीं हूँ।

इस प्रकार राजा के मुँह से उक्त वचनों को सुनकर मन्त्री विचार सागर मे गोते लगाने लगा। उसने सोचा कि राजा काम-भोग मे इतना अन्धा और पागल बन चुका है कि इस पर हितोपदेश का कोई असर होने वाला नहीं है। अतएव वह किंकर्तव्य विमूढ होगया और विचारने लगा कि यदि मैं अब राजा की आज्ञानुसार नीच कर्म करता हूँ तब भी बुरा है और राजा की आज्ञा की अवहेलना करता हूँ तब भी अहितकर है।

तब मन्त्री ने बहुत कुछ सोच विचार करने के बाद अपनी जबान को गाड़ी के पहिए की तरह बदलते हुए कहा कि हे महाराज! मैंने तो आपके भले के लिए सब कुछ कहा था परन्तु यदि आपको मेरी नेक सलाह भी अरुचिकर लगती हो तो मैं अपने विचारों को वापिस ले,लेता हूं। अब मैं आपको आपके विचारों के अनुरुप ही ऐसा उपाय बताऊंगा जिससे आपको वह श्रीमती सेठानी भी आसानी से प्राप्त हो जायेगी और आपकी इज्जत भी बची रह जायेगी।

जब दीवान ने राजा के विचारों के अनुकूल ही उपाय बताने के लिए कहा तो राजा बहुत खुश हो गया और मन्त्री से उपाय बताने के लिए आग्रह करने लगा।

अब किस प्रकार से मन्त्री राजा को उपाय बताता है और किस प्रकार उक्त उपाय पर राजा अमल करने की कोशिश करता

है यह सब कुछ आगे श्रवण करने से ही ज्ञात हो सकेगा।

तो आज के प्रवचन के निष्कर्ष स्वरुप मुझे आप लोगों से संक्षेप मे यही कहना है कि आप लोगों को भी परस्त्री गमन से दूर रहते हुए अपने जीवन को बदनामी और नरकगामी होने से बचा लेना चाहिए। अपने जीवन को सदाचार मे प्रवृत्त करते हुए भविष्य को उज्जवल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार जो भाई-बहिन परस्त्री-गमन और परपुरुष-गमन के कुव्यसन का परित्याग कर अपने जीवन को धर्माराधना में व्यतीत करेंगे वे इस-लोक तथा परलोक में सुखी बनेंगे।

बैंगलोर (केन्टोनमेंट)
ता० १७-८-५६
सोमवार

॥ ओम् अर्हम् नमः ॥
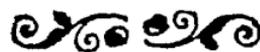
:: रक्षा-बन्धन-पर्व ::

कुन्दावदात चलचामर चारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत कांतम् ।
उद्यच्छशांक शुचि निर्झरवारिधार,
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥

卐卐

भाइयो ! आज मैं आपके समक्ष विशेष रूप से रक्षा-बन्धन पर्व के सम्बन्ध में अपने विचार जाहिर करूंगा क्योंकि आज घर-घर मे रक्षा-बन्धन का त्यौहार मनाया जायेगा । आज श्रावण शुक्ला पूर्णिमा का दिन है । आज के दिन से ही रक्षा-बन्धन के पर्व का श्रीगणेश हुआ था । हिन्दू जाति में यह पर्व बड़े ही उल्लास के साथ मनाया जाता है । प्राचीन-युग मे तो इस पर्व का महत्त्व कुछ दूसरे ही रूप मे समझा जाता था । परन्तु आज यह पर्व दूसरे ही ढङ्ग से मनाया जाता है ।

रक्षा-बन्धन पर्व पर प्रत्येक बहिन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर तथा पूजन सामग्री से थाली सजाकर अपने भाई के यहां

जाती है और बड़े उत्साह एवं प्रेम के साथ उसके हाथ मे रेशम
का प्रेम सूत्र बांधती है। तब उसका भाई उसे प्रेम पूर्वक उपहार
स्वरूप स्थिति के मुताविक कुछ रुपए देता है। इसी प्रकार ब्राह्मण
लोग भी घर-घर और दूकान दूकान पर जाकर यजमानों के हाथ
में या दावात, कलम पर रक्षा-बन्धन बाधकर उन्हें आशीर्वाद
प्रदान करते हैं। तब यजमान भी ब्राह्मणों का सत्कार करते हुए
उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देते हैं। तो इस प्रकार से यह प्रति वर्ष
भारतवर्ष के प्रत्येक गाव और शहर मे बड़े ही आनन्द के साथ
मनाया जाता है। वास्तव मे यह पर्व आपस मे प्रेम-बन्धन का
सूत्रपात करने वाला है।

प्राचीन युग में जब मुस्लिम शासकों द्वारा सर्वत्र युद्ध का
दावानल सिलगाया जा रहा था तब वीर क्षत्राणिएँ अपने पड़ौसी
प्रान्त के वीर क्षत्रिय राजपूत शासकों के पास गुप्त रूप से रक्षा-
बन्धन भेजती थीं। उक्त रक्षा बन्धन को भेजने का एकमात्र प्रयो-
जन यही था कि आज से मैं तुम्हारी बहिन हूँ और तुम मेरे भाई
के समान बनते हो। अतएव तुम्हारी बहिन पर जिन आततायियों
ने जुल्म ढा रखा है तो तुम भाई की हैसियत से अपनी फौज लेकर
आओ और दुश्मन से मुकाबला करके बहिन की रक्षा करो। तो
इस प्रकार से उक्त रक्षा-बन्धन को स्वीकार करके वे क्षत्रिय वीर
राजपूत अपनी बहिन की, दुश्मनों के दात खट्टे करके रक्षा
करते थे।

तो खैर। किसी भी दृष्टिकोण से पर्व मनाया जाता रहा हो
परन्तु है यह प्रेम-बन्धन का प्रतीक। एक बहिन भी अपने भाई
के हाथ मे रक्षा-बन्धन बाधते हुए यही प्रार्थना करती है कि:—

"भैया मेरे, राखी के बन्धन को निभाना"। अर्थात्—वह अपने भाई से कहती है कि हे भाई! मैं आज जो तेरे हाथ मे रेशम का धागा बांध रही हूँ तो तू इसे केवल रेशम का धागामात्र ही मत समझ बैठना। परन्तु इस रेशम के धागे के द्वारा मैं तुझे यावज्जीवन के लिए प्रेम के बन्धन में बांध रही हूँ। तुझे प्रेम-पूर्वक इस प्रेम-बन्धन को निभाना पड़ेगा और समय पड़ने पर मेरी रक्षा भी करनी होगी।

तो मैं समझता हूं कि आज मैं भी आपको धर्म के बन्धन मे बाध दूं ताकि आपके हृदय में धर्म के प्रति सच्चा अनुराग और श्रद्धा उत्पन्न हो जाय। भाइ! वह लौकिक रक्षा-बन्धन का धागा तो शायद दो-चार दिन मे टूट भी जायगा परन्तु धर्म-बंधन मे जो बध गए तो यह तीन काल में भी टूटने वाला नहीं है बल्कि यह आपके समस्त कर्म बन्धनों को तुड़ाकर आपको मोक्ष का अक्षय सुख प्राप्त करा देगा। शायद आप लोगों को मेरी बात पसद आ गई होगी। क्योंकि आप सब भाई-बहिन मोक्ष के अभिलाषी हैं। परन्तु मोक्ष प्राप्त करने के लिए धर्म बन्धन मे बधना अत्यावश्यक है। तो मैं आशा करता हूँ कि आप सब आज के रक्षा बन्धन से यही शिक्षा ग्रहण करेंगे कि प्राणि-मात्र के साथ भ्रातृ-प्रेम करते हुए धर्म के बन्धन मे अच्छी तरह बँध जायगे। इस प्रकार के व्यवहार से आप यथा शीघ्र मोक्ष के सन्निकट पहुँच जायेंगे।

उक्त भक्तामर स्तोत्र के तीसरे श्लोक में धर्म बन्धन के बन्धन में बन्धकर मोक्ष प्राप्त करने वाले भगवान ऋषभदेव की

महामहिम स्तुति करते हुए आचार्य श्री मानतुङ्ग भी कह रहे हैं कि हे महाप्रभो ! आप जहां भी समवसरण मे अशोक वृक्ष के नीचे रत्न जटित सिंहासन पर विराजमान होते हैं वहा आपके दोनों तरफ दो कुन्द के समान उज्जवल चॅवर ढुरते रहते हैं। जब वे दोनों कुन्द के समान उज्जवल चॅवर भगवान तीर्थङ्कर के स्वर्णमयी शरीर के दोनों तरफ़ ढुरते हैं तो आपका स्वर्ण वर्ण के समान कान्तियुक्त शरीर ऐसा सुशोभित होता है मानो सुवर्णमय सुमेरू पर्वत के दोनों तटों पर निर्मल जल वाले दो झरने झर रहे हों। भाई ! तीर्थङ्कर भगवान के तीर्थङ्कर नाम कर्म के उदय से होने वाले आठ प्रतिहार्यों में से यह तीसरा प्रतिहार्य है।

ऐसे तो श्रीमद् समवायांगजी सूत्र के चौंसठवें समवाय में बताया गया है कि तीर्थङ्कर भगवान के दोनों तरफ चौंसठ जोड़े चॅवरों के ढुरते रहते हैं। परन्तु यहा मुख्य रूप से दो चॅवरों का वर्णन किया गया है। खैर ! कुछ भी हो परन्तु यहां तो कहने का आशय यही है कि भगवान उक्त चॅवरों के ढुरने से विशेषाति विशेष शोभायमान होते हैं।

वे चॅवरों के जोड़े भी आगन्तुक दर्शनार्थियों को यही हित-शिक्षा देते है कि जिस प्रकार हम नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं उसी प्रकार आप भी अपने जीवन मे विनय धर्म को धारण करेंगे तो ऊँचे उठ जायेंगे। आप भी जितना झुकेंगे, नमेंगे तो उतने ही जीवन में आगे बढ़ जायेंगे अर्थात् आपकी आत्मा कर्म-बन्धनों से हल्की होकर ऊपर की ओर गति करने लगेगी। परंतु झुकता वही है जो कुलीन और खानदानी होता है। और वृक्षों

मे भी वही वृत्त झुकता है जो फलों से भरा-पूरा और लदा हुआ होता है।

जैसे कि किसी कवि ने कहा है कि:—

आम, नीम, इमली नमे, नमें तो दाड़म दाख।
एरण्ड विचारा क्या नमे, जिसकी ओछी जात॥

भाई! वृत्तों मे भी आम, नीम, इमली, अनार और अंगूर के वृत्त जब फलों से लद जाते हैं तो वे सहजभाव में नम जाते हैं। परन्तु जो एरण्ड का वृत्त है वह फल वाला नहीं होने के कारण ठूंठ की तरह सीधा ही खड़ा रहता है। क्योंकि वह ओछी जात वाला है अर्थात् उसमे फलों का वोझ नहीं होता। उसे अगर कोई नमाने की कोशिश करता है तो उसकी टहनियां टूट तो जाती है परन्तु झुकती नहीं है। तो इसी प्रकार जो मनुष्य गुण रूपी फलों से परिपूर्ण होते हैं वे ही नमते हैं। परन्तु इसके विपरीत जो अभिमान में छका हुआ होता है उससे नमने की आशा करना व्यर्थ है। जो उच्च कुलीन मनुष्य होता है उसके जीवन में विनय भाव रहता है और उससे वह छोटे से लेकर वडे के गुणों को देखकर विनम्र वन जाता है।

श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने भी दशवैकालिक सूत्र के नवें अध्ययन की प्रथम गाथा मे वताया है कि किस आत्मा को ज्ञान प्राप्त होता है और किसको ज्ञान प्राप्त नहीं होता है? तो उसके लिए निम्न गाथा में वताया गया है कि:—

थभाव कोहाव मयप्पमाया,
गुरु सगासेविणाय न सिक्खे।
सो चेवऊ तस्स अभूइभावो,
फल व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

भगवान महावीर ने फर्माया है कि ज्ञान उसी आत्मा को प्राप्त हो सकता है जो विनयवान होता है और जो क्षमावान होता है। इस प्रकार जो गुरु का विनय करता है और क्रोध नहीं करता उसे ज्ञान शीघ्र प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत जो शिष्य अविनयी और क्रोध से अभिभूत होता है उसे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। उस शिष्य को गुरु के निकट रहते हुए भी अपने दुर्गुणों के कारण ज्ञान प्राप्त नहीं होता और जीवन में सुधार भी नहीं हो सकता।

भाई! एक वैरागी को मैंने दीक्षा धारण करवाई परन्तु वह साधु उसी दिन से मुझसे विरोध करने लगा। यह देख मैंने अपने दिल मे विचार किया कि इस प्रकार इसकी लम्बी जिन्दगी कैसे पूर्ण होगी और यह अपने जीवन में ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकेगा। जब मैंने उससे कहा कि भाई! अब तुम साधु-जीवन में हो और इस जीवन मे ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। परन्तु तुम अभी से विरोधी बन गए तो तुम्हारा जीवन कैसे निकलेगा। यह सुनते ही वह कहने लगा कि महाराज! आपको मेरी फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मैं तो सब कुछ जानता हूँ। जब उसने साधु-भाषा के विपरीत शब्दों का उच्चारण किया तो मैंने उससे कहा कि भाई! सब कुछ जानने वाले तो तीर्थङ्कर भगवान होते हैं। तुझे सम्पूर्ण ज्ञान कहा से प्राप्त होगया। तो गर्ज यह है कि उसके

जीवन मे अभिमान आ चुका था अतएव वह जितने वर्ष तक रहा परन्तु उसने आराम से नहीं गुजारे।

तो भगवान का फर्माना है कि जिसके जीवन में अभिमान आ जाता है उसे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरे अभिमानी मनुष्य दूसरों की सेवा भी नहीं कर सकता। उसे जीवन मे जीव-अजीव का जानपणा भी अभिमान के कारण नहीं हो सकता। जैसे वासवृक्ष तब तक फलता फूलता रहता है जब तक कि उसमे फल नहीं लगते हैं। परन्तु ज्योंही उसमें फल लग जाते हैं तो वह सूख जाता है। इसी तरह जब तक मनुष्य के जीवन मे अभिमान, क्रोध और अविनय आदि दुर्गुणों का समावेश नहीं होता तब तक वह शिक्षा प्राप्त करता रहता है। परन्तु जब उसके जीवन में उक्त दुर्गुण आ जाते हैं तो वह शिक्षा प्राप्ति से वञ्चित हो जाता है और उसके दुर्गुण उसके ही जीवन को नष्ट कर डालते हैं।

तो वे चॅवर भी तीर्थङ्कर भगवान के निकट पहुँचने वालों को यही शिक्षा देते हैं कि अपने जीवन से अविनय, अभिमान और क्रोध निकाल कर विनयी, निराभिमानी और क्षमावान बन जाओ। और जब तुम्हारे जीवन मे से उक्त दुर्गुण निकलकर सद्गुण प्रवेश कर जायेंगे तो जैसे हम झुकते हैं, नमते और ऊपर की ओर पहुच जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारा जीवन भी नम्र बनकर ऊपर की ओर बढ़ता जायेगा। तो उक्त गुणों के धारक भगवान ऋषभदेव थे और उन्हीं भगवान को हमारा सर्वप्रथम नमस्कार है।

दुख विपाक-सूत्र

अब मैं कुछ देर के लिए आपके समक्ष दुख विपाक सूत्र के अन्तर्गत विषय को रख देना उचित समझता हूँ।

तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का संकलन गणधरों और आचार्यों ने किया था और उक्त वाणी का सग्रह आज हमारे समक्ष बत्तीस सूत्रों के रूप में मौजूद है। तो उक्त द्वादशांगी वाणी मे से मैं आपके सामने ग्यारवें अङ्ग विपाक सूत्र के द्वितीय भाग दुख विपाक के सम्बन्ध में सुनाने जा रहा हूँ। आशा है आप लोग ध्यान पूर्वक सुनकर अपने जीवन को उज्जवल बनाने का प्रयत्न करेंगे।

तो भगवान सुधर्मा स्वामी से उनके सुशिष्य जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! दुख विपाक-सूत्र के चतुर्थ अध्ययन के भाव तो आपने मुझको सुना दिए परन्तु अब पचम अध्ययन के भाव फर्माने की महती कृपा करें। तब भगवान सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से पचम अध्ययन के भाव फर्माते हुए कहा कि हे जम्बू! उस काल और उस समय में इसी जम्बू द्वीप के भारतवर्ष में कौशांबी नाम की नगरी थी। वह ऋद्धिशाली नगरी थी। उस नगरी के बाहर चंद्रोतर नाम का उद्यान था। उस उद्यान के ईशानकोण में श्वेतभद्र नाम के यक्ष का एक यक्षायतन था। उस नगर में शतानिक नाम का राजा राज्य करता था। उसके मृगादेवी नाम की महारानी थी। वह सर्व गुणों से युक्त तथा रूपवती थी। उसने कालान्तर में उदयन नाम के कुमार को जन्म दिया। वह सभी इन्द्रियों से परिपूर्ण था। उसकी होशियारी देख-

जीवन मे अभिमान आ चुका था अतएव वह जितने वर्ष तक रहा परन्तु उसने आराम से नहीं गुजारे।

तो भगवान का फर्माना है कि जिसके जीवन में अभिमान आ जाता है उसे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरे अभिमानी मनुष्य दूसरों की सेवा भी नहीं कर सकता। उसे जीवन में जीव-अजीव का जानपणा भी अभिमान के कारण नहीं हो सकता। जैसे वासवृक्ष तब तक फलता फूलता रहता है जब तक कि उसमें फल नहीं लगते है। परन्तु ज्योंही उसमें फल लग जाते हैं तो वह सूख जाता है। इसी तरह जब तक मनुष्य के जीवन मे अभिमान, क्रोध और अविनय आदि दुर्गुणों का समावेश नहीं होता तब तक वह शिक्षा प्राप्त करता रहता है। परन्तु जब उसके जीवन में उक्त दुर्गुण आ जाते है तो वह शिक्षा प्राप्ति से वंचित हो जाता है और उसके दुर्गुण उसके ही जीवन को नष्ट कर डालते हैं।

तो वे चँवर भी तीर्थङ्कर भगवान के निकट पहुँचने वालों को यही शिक्षा देते हैं कि अपने जीवन से अविनय, अभिमान और क्रोध निकाल कर विनयी, निराभिमानी और क्षमावान बन जाओ। और जब तुम्हारे जीवन में से उक्त दुर्गुण निकलकर सद्गुण प्रवेश कर जायेंगे तो जैसे हम झुकते हैं, नमते और ऊपर की ओर पहुंच जाते है उसी प्रकार तुम्हारा जीवन भी नम्र ...ऊपर की ओर चढ़ता जायेगा। तो उक्त गुणों के धारक ऋषभदेव थे और उन्हीं भगवान को हमारा सर्वप्रथम ... है।

दुख विपाक-सूत्र

अब मैं कुछ देर के लिए आपके समक्ष दुख विपाक सूत्र के अन्तर्गत विषय को रख देना उचित समझता हूँ।

तीर्थङ्कर भगवान की वाणी का संकलन गणधरों और आचार्यों ने किया था और उक्त वाणी का सग्रह आज हमारे समक्ष बत्तीस सूत्रों के रूप में मौजूद है। तो उक्त द्वादशागी वाणी में से मैं आपके सामने ग्यारवे अङ्ग विपाक सूत्र के द्वितीय भाग दुख विपाक के सम्बन्ध में सुनाने जा रहा हूँ। आशा है आप लोग ध्यान पूर्वक सुनकर अपने जीवन को उज्जवल बनाने का प्रयत्न करेंगे।

तो भगवान सुधर्मा स्वामी से उनके सुशिष्य जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! दुख विपाक-सूत्र के चतुर्थ अध्ययन के भाव तो आपने मुझको सुना दिए परन्तु अब पंचम अध्ययन के भाव फर्मा ने की महती कृपा करें। तब भगवान सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से पचम अध्ययन के भाव फर्माते हुए कहा कि हे जम्बू! उस काल और उस समय में इसी जम्बू द्वीप के भारतवर्ष मे कौशांबी नाम की नगरी थी। वह ऋद्धिशाली नगरी थी। उस नगरी के बाहर चंद्रोतर नाम का उद्यान था। उस उद्यान के ईशानकोण मे श्वेतभद्र नाम के यक्ष का एक यक्षायतन था। उस नगर में शतानिक नाम का राजा राज्य करता था। उसके मृगादेवी नाम की महारानी थी। वह सर्व गुणों से युक्त तथा रूपवती थी। उसने कालान्तर मे उदयन नाम के कुमार को जन्म दिया। वह सभी इन्द्रियों से परिपूर्ण था। उसकी होशियारी देख-

कर महाराज ने उसे युवराज की पदवी से विभूषित कर दिया था। उक्त कुमार के पद्मावती नाम की भार्या थी। उक्त शतानिक राजा के सोमदत्त नाम का पुरोहित था। वह वैदिक शास्त्रों में चतुर था। उसके वसुदत्ता नाम की पत्नि थी। उन दोनों के अगजात का नाम वृहस्पति कुमार था। वह भी सर्वांगों से पूर्ण एवं सुदंर था।

तब उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का उक्त नगर के बाहर चन्द्रोत्तर नाम के उद्यान में अपने शिष्यों सहित पधारना हुआ। वे वहां के माली की आज्ञा लेकर उक्त उद्यान में विराजमान हो गए। भगवान महावीर के शुभागमन की सूचना पाकर नगरी की जनता तथा राजा सभी भगवान के दर्शनार्थ गए। उन सबने भगवान को वन्दन नमस्कार किया और धर्मोपदेश श्रवण कर पुनः भगवान को वन्दन नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को लौट आए।

तदन्तर उस काल और उस समय में भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ शिष्य भगवान गौतम स्वामी ने भगवान के पास जाकर वन्दन-नमस्कार किया और अपने वेले के पारणे निमित्त उक्त नगरी में भिक्षाचरी को जाने के लिए आज्ञा मांगी। भगवान महावीर स्वामी के द्वारा आज्ञा प्राप्त हो जाने पर वे उक्त उद्यान से निकलकर ईर्या समिति का पालन करते हुए कौशांबी नगरी में प्रवेश करके वहा के ऊँच, नीच और मध्यम कुलों मे गौचरी के लिऐ पर्यटन करने लगे। इस प्रकार घूमते हुए जब वे राजमार्ग पर आए तो उन्होंने बहुत से हाथियों, घोड़ों और पैदल सिपाहियों के बीच में एक मनुष्य को देखा जिसके दोनों हाथ पीछे

की और बांधे हुए थे। उसका मुंह काला किया हुआ था और उसके सामने फूटा ढोल बजाया जा रहा था। दर्शक लोग उसे तरह तरह के अपशब्दों से सम्बोधित कर रहे थे। और राज कर्मचारी चौराहे चौराहे पर ऐलान कर रहे थे कि इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। यह आदमी अपने ही किए हुए दुष्कर्मों का फल भोग रहा है। इस प्रकार का वीभत्स दृश्य देखकर भगवान गौतम स्वामी अपने मन मे विचारने लगे कि मैंने प्रत्यक्ष में नरक और नारकी को दुख भोगते हुए तो नहीं देखा है परन्तु यह आदमी प्रत्यक्ष मे नरक के सदृश दुख भोग रहा है। तो वे उक्त दृश्य देखकर वहा अधिक समय तक नहीं ठहर सके। वे वहा से रवाना होकर तथा आहार-पानी लेकर सीधे उक्त उद्यान में भगवान महावीर स्वामी के पास आ गए। उन्होंने भगवान को आहार-पानी दिखाया और हाथ जोड़ कर अर्ज करने लगे कि भगवन् ! आज नगरी मे आहार-पानी के लिए जाते हुए राज मार्ग पर मैंने एक आदमी को नरक के समान दुख भोगते हुए देखा। वह सरकारी कर्मचारियों के द्वारा मरणान्त दुख भोग रहा था। उसके दुख को देखकर मेरा भी दिल सिहर उठा। हे भगवन् ! कृपा करके फर्माइए कि उक्त मनुष्य ने अपने पूर्व जन्म मे ऐसे कौन से दुष्कर्मों का सेवन किया जिसके उपलक्ष्य मे उसे इस जन्म मे इस प्रकार दुख भोगना पड़ रहा है ? तब श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने अपने परम शिष्य गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि हे गौतम ! उस काल और उस समय मे इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र मे सर्वतोभद्र नाम का एक नगर था। वह ऋद्धि सम्पन्न था। उक्त नगर मे जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहां महेशदत्त नाम का पुरोहित रहता

था। वह चारों वेदों का पाठी था और ब्राह्मण शास्त्रों में निपुण था। वह प्रतिदिन राज्य की वृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के एक एक लड़के को सिपाहियों द्वारा चुपचाप पकड़वाकर मगवाता और उक्त चारों लड़कों के हृदय का मास पिण्ड निकाल-कर जितशत्रु राजा के खातिर होम करता था। यही नहीं परन्तु अष्टमी तथा चतुर्दशी को दो दो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लड़कों को मगवाता और उनके जीवित हृदय-मांस-पिण्ड को निकाल कर होम कर देता था। इसी प्रकार चौमासी पर चार-चार लड़कों को मंगवाता और छः मासी पर आठ आठ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लड़कों को मगवाकर उनके हृदय के मास-पिण्ड को निकाल कर हवन कुण्ड में होम कर देता था। और वर्ष के अन्त में सोलह-सोलह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लड़कों के कलेजों को हवन-कुण्ड में होम कर डालता था। इस प्रकार वह वर्ष भर मे एक सौ आठ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लडकों के कलेजों का राजा को बाहरी शत्रुओं के आक्र-मणों से बचाने के लिए होम कर देता था।

[भाई ! उक्त जितशत्रु राजा जब तक वह जैन धर्मानुयायी नहीं बना तब तक उक्त अधर्मी राजपुरोहित के चक्कर में फंसा हुआ उसके आदेश में ही विश्वास करता रहा। और उक्त अन्ध-विश्वास के खातिर ही वह बहुत वर्षों तक उक्त एक सौ आठ लड़कों को प्रति वर्ष मरवाने का हुक्म देता रहा] क्योंकि उस समय का इतिहास साक्षी रूप में है कि उस समय छोटे-छोटे राजा लोग एक दूसरे के राज्य पर धावा बोलकर उसे कब्जे में करने का प्रयत्न करते रहते थे। तो उक्त दुश्मनों के आक्रमणों

से अपने राज्य की सुरक्षा के लिए उन्हें पुरोहित लोग जैसा भी उपाय बताते वैसा ही राजा लोग कठपुतली की तरह नाच नाचने को तैयार रहते थे।

तो उक्त पुरोहित भी इसी कारण उक्त राजा के राज्य की सुरक्षा के लिए इसी प्रकार के पाप के उपाय बताकर और हवन करता हुआ अपने जीवन को आनन्दपूर्वक व्यतीत कर रहा था। भाई! राजस्थान के प्राचीन इतिहास को यदि उठाकर देखें तो उसे देखने पर भी यही मालूम होगा कि उस समय भी बहुत से राजा महाराजा अपने राज्य के संरक्षण के लिए तथा शत्रुओं के आक्रमणों से बचने के लिए अमुक अमुक तिथियों पर देवी के सामने बकरों तथा भैंसों का बलिदान करवा देते थे। इतना ही नहीं परन्तु अपने स्वार्थ के लिए कभी-कभी मनुष्यों तक का भी बलिदान करवा दिया जाता था। उस समय के राजा-महाराजाओं की अंधश्रद्धा के अनुसार ऐसी मान्यता थी कि ऐसा करने से कोई दुश्मन चढाई करने के लिए आ भी जाएगा तो वह पीछे हटकर लौट जायेगा।

तो भगवान महावीर ने भी जैसी उस समय की परिस्थिति थी और जैसा ज्ञान में जाना तथा जैसी घटना घटी उसका वैसा ही वर्णन स्पष्टरूप से प्रश्नकर्ता के सामने रख दिया।

इस प्रकार उक्त महेशदत्त नाम के पुरोहित ने भी राज्य की अभिवृद्धि तथा सुरक्षा के लिए बहुत से निरपराध बालकों की हत्या करवा कर बहुत से पापों का संचय कर लिया। इस प्रकार वह पाप करते हुए अपने तीस वर्ष के उत्कृष्ट आयुष्य को भोगकर

और वहां से यथा समय काल करके पांचवी नरक मे जाकर उत्कृष्ट स्थिति तक दुख भोगने के लिए उत्पन्न हुआ।

फिर वह पांचवी नरक से निकलकर कौशाम्बी नगरी में सोमदत्त पुरोहित की पत्नि वसुदत्ता की कुक्षिका से यथा समय पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वहां उसका नाम बृहस्पतिकुमार रखा गया। जब बृहस्पतिकुमार उत्पन्न हुआ तो उसका जन्म-महोत्सव खूब धूम-धाम से मनाया गया। उसके पालन पोषण के लिए पांच धायों की नियुक्ति कर दी गई। इस प्रकार वह उनके संरक्षण में वृद्धि को प्राप्त होने लगा। जब वह बाल्यावस्था से मुक्त होकर युवावस्था में प्रविष्ट हुआ तो उसकी युवराज उदयनकुमार के साथ घनिष्ट मित्रता हो गई।

कालान्तर मे जब राजा जितशत्रु की मृत्यु हो गई तो उदयनकुमार ने अपने परिवार वालों के साथ विलापात करते हुए अपने पिता का अन्त्येष्ठि क्रिया कर्म किया। जब वह राजा जित-शत्रु के पीछे किए जाने वाले तमाम क्रिया-कर्मों से निवृत्त हो गया तो बहुत से राजा, महाराजा, सेठ, पदवीधारी और सार्थवाहों की उपस्थिति में उसका राज्याभिषेक किया गया।

अब उदयनकुमार युवराज से राजा के पद पर आसीन हो गया। वह भी हेमवन्त पर्वत की मर्यादाओं से युक्त हुआ। जैसे हेमवन्त (हिमालय) पर्वत भारतवर्ष की मर्यादा करने वाला है वैसे ही उदयन राजा भी स्वयं मर्यादा मे रहते हुए दूसरों को भी मर्यादा में रहने का सफल प्रयत्न करता है!

उदयनकुमार के राजा बनते ही उसका मित्र पुरोहित कुमार भी राजा का मित्र होने के नाते उसका दाहिना हाथ बन गया। वह अब बेरोक टोक राजमहलों में आने-जाने लगा। वह रात्रि और दिन में जब भी चाहता तभी महलों में निस्संकोच भाव से आ-जा सकता था। परन्तु उसकी भावना कलुषित थी। वह अत्यधिक विषय लम्पटी था। राजा के महलों मे वक्त-बेवक्त बार-बार आने-जाने से एक समय उसकी दृष्टि रानी पद्मावती से लग गई। वह उसके प्रेम मे पागल होगया। इस प्रकार वह उक्त महारानी के साथ भोग भोगने में व्यस्त होगया।

एक समय की बात है कि जब उदयन राजा स्नान मञ्जन करके तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर जब महारानी पद्मावती के महलों मे गया तो उसने अचानक रानी पद्मावती और बृहस्पतिकुमार को भोग-भोगते हुए देख लिया। भाई ! जब कोई भी छोटा या बड़ा पुरुष इस प्रकार से अपनी स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार करते हुए देख लेता है तो उसे क्रोध आए बिना नहीं रहता। तो उदयन राजा को भी उक्त दुष्कृत्य देखकर बृहस्पतिकुमार पर क्रोध आ गया। उसने मन मे विचार किया कि जो मित्र होकर भी इस प्रकार से अपने मित्र की स्त्री के साथ पाप कर्म का सेवन करे तो वह मित्र नहीं परन्तु शत्रु के समान है और एक शत्रु को जो दण्ड दिया जाता है वही इसे भी दिया जाना चाहिये। तो उसने क्रोधित होकर उसी वक्त अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि इस बदमाश को पकड़लो और शूली पर चढ़ा दो। इसने मेरी मित्रता का नाजायज फ़ायदा उठाया है अतएव संसार में रहने का कोई अधिकार नहीं। इस प्रकार राजा की

आज्ञा होते ही उसके नौकरों ने बृहस्पतिकुमार को पकड़ लिया और शूली पर चढ़ाने के लिए ले गए।

तो हे गौतम ! तू जिस पुरुष को दयनीय दशा में देखकर आया है वह और कोई नहीं परन्तु यही बृहस्पति कुमार है। यही अपने पापकर्मों का फल भोगने के लिए ले जाया गया है। चूंकि इसके पूर्व जन्म के पाप और इस जन्म के पाप दोनों ही उदय में आ गए हैं अतएव इसका पाप का घड़ा अब फूटने ही वाला है।

जब भगवान् गौतम स्वामी ने इस प्रकार बृहस्पति कुमार के पूर्व जन्म के और इस जन्म के पाप कर्मों के सम्बन्ध में भगवान महावीर स्वामी से जानकारी प्राप्त करली तो उन्होंने भगवान से पुनः प्रश्न किया कि हे भगवान ! यह बृहस्पति कुमार पुरोहित यहां से आयुष्य पूर्ण करके कहां-कहां उत्पन्न होगा तब भगवान महावीर गौतम स्वामी की शंका का समाधान करते हुए फर्माया कि हे गौतम ! यह बृहस्पतिकुमार यहां से चौंसठ वर्ष का परम आयुष्य भोग कर आज दिन के तीसरे भाग मे शूली पर चढ कर और यहा से मर कर प्रथम रत्नप्रभा नाम की नरक में नेरियापणे जाकर उत्पन्न होगा। वहां के उत्कृष्ट समय तक नारकीय दुखों को भोग कर यह पशु योनि मे उत्पन्न होगा। इसके बाद पशु योनि की स्थिति को पूर्ण करके यह दूसरी नरक में उत्पन्न होगा।

दूसरी नरक से निकल कर पुनः पशु योनि में जाकर जन्म लेगा और उक पशु योनि के दुख भोग कर यह तीसरी नरक में जाकर उत्पन्न होगा। वहां के असह्य कष्टों को भोग कर पुनः पशु बनेगा।

इस प्रकार बार-बार नरक और पशुयोनि के दुःख भोग कर यह हस्तिनापुर मे मृग रूप मे उत्पन्न होगा। यह मृग के रूप में आजादी के साथ अपनी हिरणियों के साथ परिभ्रमण करते हुए एक समय एक वधिक के हाथ से मर कर इसी नगर में एक सेठ के यहा पुत्र रूप मे उत्पन्न होगा।

उक्त सेठ के यहां पुत्र रूप मे उत्पन्न होने पर इसका अच्छी तरह पालन पोषण किया जायेगा। इस प्रकार जब वह बाल्या-वस्था को उल्लंघन करके युवावस्था में प्रविष्ठ होगा तो इसे तथागत साधुओं के दर्शनों का लाभ मिलेगा। यह उक्त मुनिराजों की वैराग्य वाणी को सुनकर वैराग्य रस मे डूब जायेगा। इसके बाद यह अपने माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर साधु अवस्था को ग्रहण कर लेगा। चूंकि अब इसके पाप-कर्मों की समाप्ति होकर पुण्य का उदय होने लगेगा अतएव यह उक्त साधु अवस्था मे उच्च करनी करेगा और यथा समय समाधि पूर्वक मरण करके प्रथम देवलोक मे जाकर उत्पन्न होगा।

उक्त देवलोक से च्यव कर यह पुनः मनुष्य भव मे उत्पन्न होगा। जब यह आनन्द पूर्वक बाल्यावस्था मे क्रीड़ा करते हुए युवक बनेगा तो इसे पुनः मुनिराजों के दर्शन होंगे। यह पुनः साधु बनकर श्रेष्ठ करनी करेगा और साधु अवस्था को पूर्ण करके यह तीसरे देवलोक मे जाकर उत्पन्न होगा। फिर तीसरे देवलोक से च्यवकर और मनुष्य जन्म को धारण करके यह साधुओं का योग मिलने पर पुनः साधु बन जायेगा। साधु अवस्था में उच्च करनी करेगा और काल समय करके यह पांचवें देवलोक में जाकर उत्पन्न होगा।

इस प्रकार यह देव तथा मनुष्य के कई भव करता हुआ यह अंत में सर्वार्थ सिद्ध विमान मे जाकर उत्पन्न हो जायेगा। वहां के परम सुखों को भोगकर तथा तैंतीस सागर की स्थिति को पूर्ण करके यथा समय च्यव कर महा विदेह क्षेत्र में एक ऋद्धि· शाली घर में जाकर पुत्र रूप में उत्पन्न होगा। इसके जन्म लेते ही इसके माता-पिता जो धर्म करनी करने मे शिथिल हो रहे थे वे धर्म में दृढ़ हो जायेंगे। इसलिए इसका गुण निष्पन्न दृढपइण्णा नाम रखा जायेगा। यह वहां आनन्द पूर्वक बड़ा होगा। कालान्तर मे इसे तथागत मुनिराजों के दर्शन होंगे। यह उनकी परम वैराग्यमयी वाणी को सुनकर भगवती दीक्षा अंगीकार कर लेगा। तदन्तर उक्त साधु अवस्था मे उत्कृष्ट करनी करके और समस्त मार्गों को काटकर अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

भाई ! उक्त पचम अध्ययन को सुनकर आप भाई-बहिनों को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि जो मनुष्य पापकर्म करके अपनी आत्मा को भारी बना लेता है उसे नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार दुख भोगते भोगते जब मनुष्य के पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं तो उसकी आत्मा पुण्य का उदय होने पर पुण्यफल भोगने को भी तत्पर हो जाती है। और अनन्त काल से संसार में इसी प्रकार का क्रम चला आ रहा है। चूंकि मनुष्य ससार मे रहता है अतएव यहां रहते हुए इसका विशेष रूप से पापी जीवों के साथ परिचय रहता है और इस कारण इसकी आत्मा भी अनायास ही पाप कर्मों के बन्धन मे जकड़ी जाती है। परन्तु उसने जो पापकर्म

हसते हुए बांधे थे उन्हीं का फल इसे उदय काल आने पर रोते हुए भी भोगना पडता है। इस प्रकार जब पापकर्म और पुण्यकर्म दोनों ही समाप्त हो जाते हैं तो वही आत्मा हल्की होकर अक्षय एव अविचल सुख मे विराजमान हो जाती है। ऐसी आवागमन से रहित स्थिति को ही मोक्ष कहते है। तो आप लोग भी अपने अनमोल मानव जीवन मे ऐसी उच्च करनी करलें ताकि आपको भी बार-बार जन्म-मरण के दुख उठाने नहीं पड़ें और मोक्ष मन्दिर के निकट पहुँच जाय। तो मैं आशा करता हूँ कि जैन धर्म मे जन्म लेकर आप भी सच्चे जैनी बनकर एक दिन अवश्यमेव जिन रूप में विलीन हो जायेंगे।

इस प्रकार जो भव्यात्मा पापकर्मों से डरती हुई पुण्य कार्य मे पुरुषार्थ करेगी वह इस लोक तथा परलोक मे सुख की अधिकारिणी बन जायेगी।

रक्षा-बन्धन दिवस--

भाइयों! आज श्रावण शुक्ला पूर्णिमा का दिन भी पौराणिक इतिहास के पृष्ठों पर बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आपने रक्षा-बन्धन पर्व के सम्बन्ध मे पौराणिक कथा तो सुन ही रखी होगी। परन्तु आज मैं इस पर्व के विषय मे जैन कथानक सुनाकर आपको यह बताने की कोशिश करूंगा कि रक्षा-बन्धन का जैन इतिहास मे क्या महत्त्व है। तो जो ऐतिहासिक घटना घटी है उसे ही आपके समक्ष रख देना उचित समझता हू।

भाई उक्त रक्षा-बन्धन पर्व से सम्बन्ध रखने वाली घटना का वर्णन मैं आपके सामने दिगम्बर जैन ग्रन्थों मे उल्लिखित ही सुना रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि आप निम्न कथा को सुनकर रक्षा-बन्धन पर्व के विशेष महत्त्व को जानने की कोशिश करेंगे।

देखो ! जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में कपिलपुर नाम का एक नगर था। वहा महा पद्म नाम का राजा राज्य करता था। उस समय इसी भारत भूमि पर सुमतिसागर नाम के जैनाचार्य विचरण कर रहे थे। एक समय की बात है कि नमूचि नाम के एक वैष्णव आचार्य ने इनसे द्वेष भाव में आकर अभिमान पूर्वक प्रश्न किया। उसके उक्त प्रश्न का उत्तर इनके एक छोटे से साधु ने ही दे दिया। इससे उसे बड़ा अपमानित होना पडा। जब नमूचि आचार्य का अपमान हो गया तो उसके हृदय में इनसे प्रतिशोध लेने की भावना जागृत हो गई। वह अब इसी मौके की तलाश मे इधर-उधर घूमने लगा कि किस प्रकार से सुमतिसागर तथा उसके शिष्यों से मेरे अपमान का बदला लूं। परन्तु भाई ! जो मनुष्य जिसकी तलाश में व्यस्त रहता है तो कभी न कभी उसे उक्त मौका मिल ही जाता है। तो इसी नियम के मुताबिक काला- न्तर मे उसे महापद्म राजा के यहां दीवान पद प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होगया। कालान्तर मे राजा के यहां पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम संभुम चक्रवर्ती रखा गया। उक्त नमूचि नाम का दीवान राज्य सञ्चालन कार्य में अति कुशल था। अतएव उसने थोडे ही समय में महापद्म राजा को अपनी कार्यकुशलता से प्रसन्न कर लिया। एक समय राजा ने दीवान के किसी कार्य से प्रसन्न होकर इसका अत्यधिक सन्मान किया और इससे कहा कि दीवानजी ! मैं तुम्हारी कार्य कुशलता से वहुत खुश होगया हूँ

अतएव आज तुम मुझसे जो कुछ भी मागना चाहो वही मांग सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छित वस्तु को सहर्ष देने को तैयार हूँ।

महाराज की तरफ से उक्त उद्घोषणा होजाने पर नमूचि दीवान ने विचार किया कि अब मुझे महाराज से क्या मागना चाहिये ! इस प्रकार विचार करते-करते उसे अपने अपमान की बात याद आगई। उसने सोचा अब इससे बढकर उस सुमति सागर आचार्य से बदला लेने का मौका और क्या प्राप्त हो सकता है ! अतएव उसने महाराज से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि महाराज ! मुझसे आप वाकई प्रसन्न हैं और मुँह मागा इनाम देने को तैयार है तो मैं आपसे आज केवल सात दिन का राज्य मांगता हूँ। वह भी आज नहीं परन्तु कालान्तर में जब मेरी इच्छा होगी तभी आपसे अर्ज कर दूगा। महाराज ने दीवान के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहा कि दीवानजी ! तुम्हारे द्वारा मागा हुआ सात दिन का राज्य मेरे पास अमानत रूप मे रहेगा और तुम्हारी मर्जी हो तभी मुझसे तुम अपनी अमानत मांग सकते हो। इस प्रकार वह नमूचि दीवान राजा को वचन में बाध कर पुनः राज्य का सञ्चालन करने लगा।

इधर कालान्तर में मुनि सुमतिसागर नाम के आचार्य ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए तथा भव्यात्माओं को समार सागर से तारते हुए अपने पांच सौ शिष्यों सहित उसी नगर मे पधार गए। वे उक्त नगर के बाहर उद्यान में विराजमान होगए।

चूंकि सुमतिसागर आचार्य दिग्गज विद्वान थे और ओजस्वी प्रवचनकार थे। अतएव जब वहां की जनता को मालूम

हुआ कि जैनाचार्य पधारे हुए हैं तो वह भी बड़ी भारी सख्या में उनका धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए जाने लगी। उनकी प्रशसा के समाचार उक्त नमूचि प्रधान के कानों में भी पहुच गए। वह उक्त प्रशसा को सुन कर जल भुन कर खाक होगया। उसने उनसे अपने अपमान का प्रतिशोध लेने का दृढ संकल्प कर लिया। उसने विचार किया कि अब इससे बढ़कर अपमान का बदला लेने का मौका और क्या आ सकता है। अतएव इस प्राप्त अवसर का लाभ उठा लेना चाहिए। इस प्रकार की उत्पन्न दूपित भावना को साकार रूप देने की दृष्टि से वह एक दिन महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर निवेदन करने लगा कि महाराज! आपने मुझे सात दिन पर्यन्त राज्य करने का वचन दिया था अतएव इस समय यदि आप अपने वचन को पूर्ण करदे तो आपकी महती कृपा होगी।

राजा महापद्म ने जब दीवान के मुंह से उक्त वचन सुने तो उसने प्रसन्नता पूर्वक उसे कह दिया कि तुम राज्य-भार सभाल सकते हो। चूंकि राजा अपने प्रण का पक्का था अतएव उसने अपने राज्य सभासदों को बुलवाया और उन सब के समक्ष कहने लगा कि मैंने दीवानजी को सात दिन के राज्य का अभिवचन दिया था अतएव आज मैं इन्हें राज्यगादी पर आसीन कर रहा हूँ। आप लोग सात दिन पर्यन्त इन्हें ही अपना राजा समझें और इनकी आज्ञानुसार कार्य करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार महाराज नमूचि प्रधान को राज्यसिंहासन पर आरूढ़ करके अपने महलों में चले गए।

वह नमूचि प्रधान ज्योंही राज्यसिंहासन पर बैठा तो उसने

उसी दिन से प्रजा पर अपना रौब गालिब करने की दृष्टि से नए-नए सख्त कानून निकाल दिए। उक्त कानूनों में सबसे पहिला कानून यह बनाया गया कि जितने भी जैन साधु हमारे राज्य की सरहद में आवें उन सबको मरवा दिया जाय। वक्त जैन साधु भारतवर्ष की सीमा मे नहीं रह सकते।

जब इस प्रकार से उक्त कानून की नगर मे उद्घोषणा करवा दी गई तो नगर की जनता में बड़ी खलबली मच गई। तब जनता मे से गणमान्य प्रतिनिधियों ने जाकर नमूचि राजा की सेवा में निवेदन किया कि महाराज! आपने इतना सख्त कानून बनाया है जिसका प्रभाव समूचे भारतवर्ष के साधुओं पर पडे बिना नहीं रह सकता। और उक्त कानून के द्वारा आपकी अपकीर्ति सारे देश में फैल जायेगी। और आपको भी इसका दुसह्य परिणाम भोगना पड़ेगा। यह सुनकर नमूचि ने कहा कि भाइयों! कुछ भी हो परन्तु इस कानून का तो पालन करवाया ही जायेगा। जब उन प्रतिनिधियों ने बहुत अनुनय-विनय किया तो नमूचि ने कहा कि अब तो मैं सिर्फ इतना ही कर सकता हू कि उन्हें सात दिन की मोहलत दी जाती है। और उक्त अवधि में यदि वे लोग भारतवर्ष की सरहद से बाहर होना चाहे तो हो सकते हैं। अन्यथा सातवें दिन उन सबको कोल्हू में पिलवा दिया जायेगा। इस प्रकार नमूचि राजा से सात दिन की मोहलत का ऑर्डर सुनकर वे तमाम प्रतिनिधिगण अपने घर पर लौट आए।

उक्त घोषणा से प्रत्येक के हृदय मे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया परन्तु उक्त कोठर कानून का बहिष्कार करने की किसी में शक्ति नहीं थी अतएव वे सब मन मसोसकर रह गए। जब उक्त

समाचार आचार्य श्री सुमतिसागर के कानों में पड़े तो वे भी विचार-सागर मे गोते लगाने लगे। वे किंकर्तव्य विमूढ हो गए। भाई ! उक्त सात दिन की अवधि मे वे भारतवर्ष की सरहद से पार भी तो नहीं हो सकते थे अतएव उनके सामने सबके प्राण बचाने की विकट समस्या उपस्थित हो गई। इस प्रकार विचार-विमर्ष मे ही तीन दिवस व्यतीत हो गए परन्तु उक्त समस्या का कोई हल नहीं निकल सका।

आखिर ! आचार्य श्री ने समस्त साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ को एक जगह एकत्रित होने का आदेश दिया। जब समस्त चतुर्विध सघ उक्त स्थान पर निश्चित समय पर एकत्रित हो गया तो आचार्य श्री ने सबके समक्ष उक्त कानून की पुनरावृत्ति करते हुए सबसे मंत्रणा की कि अब हमें क्या करना चाहिए ? उस दुष्ट के चगुल से साधु-साध्वियों के प्राण बचाना असंभव सा हो गया है। हे भव्यात्माओं ! उक्त सात दिन की अल्प अवधि में सबके प्राणों की रक्षा करने का और कोई सरल उपाय नहीं दीख पड रहा है। और उक्त अवधि के समाप्त होने में भी कोई देर नहीं है। इस प्रकार की मंत्रणा करते करते सब चिंताग्रस्त हो गए।

आखिर ! विचारते-विचारते आचार्य श्री के मस्तिष्क मे उक्त विपत्ति से बचने का एक उपाय उत्पन्न हो गया। उन्होंने तब चतुर्विध सघ के समक्ष कहा कि इस विनाशकाल से बचने का एकमात्र उपाय मेरे दिमाग में यह आरहा है कि इसी नगर के राजा के भाई विष्णुकुमार ने मेरे पास भगवती दीक्षा अगीकार की थी और वह इस समय मेरू चूलिका के ऊपर तपस्या कर रहा है

और अपनी साधना मे लीन है। अतएव यदि वह किसी भी प्रकार यहां उक्त अवधि से पहिले आ जाय तो हम सब के प्राण येन केन प्रकारेण बच सकते हैं। अन्यथा किसी भी तरह साधु-साध्वियों के प्राण नहीं बचाए जा सकते।

आचार्य श्री के मुखारविंद से उक्त उपाय सुनकर सब के दिलों मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। परन्तु जब उसके पास सूचना भेजने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो पुनः सबके चेहरे उदास हो गए। परन्तु तभी एक लब्धिधारी साधु ने कहा कि भगवन्! मेरे अन्दर वहा तक पहुंचने की ताकत है परन्तु उक्त स्थान से वापिस लौटने की शक्ति नहीं है। इसलिए यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वहा पहुँचकर उक्त मुनिराज की सेवा में आपका सदेश पहुँचा दूँ। यह सुनते ही आचार्य ने कहा कि यदि तुम मेरा सदेश वहा तक पहुँचा सकते हो तो इसमे क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। वहा जाने पर सब काम ठीक बन जायेगा।

इस प्रकार वह साधु आचार्य श्री की आज्ञा प्राप्त कर उक्त साधु के पास अपनी विद्या के द्वारा पहुँच गया। उसने मेरू चूलिका पर पहुँचकर आचार्य श्री का संदेश सुनाते हुए कहा कि इस प्रकार की विकट स्थिति उत्पन्न हो गई है और अब तो आप ही एकमात्र सबके प्राणों की रक्षा करने मे समर्थ हो सकते हैं। वहा पर एकत्रित चतुर्विध सघ आपकी सहायता के लिए लालायित हो रहा है। इसलिए आप अपनी साधना से उपराम लेकर आचार्य श्री की सेवा मे पहुँचने का यथाशीघ्र प्रयत्न करें। अन्यथा कल प्रातःकाल ही समस्त साधु साध्वीगण फांसी पर चढा दिए जायेंगे। इस प्रकार जब उनके समस्त सघकी रक्षा का

प्रश्न उपस्थित हो गया तो पहिले तो वे अपनी साधना को छोडने को तैयार नहीं हुए परन्तु जब उक्त साधु ने अत्याग्रह पूर्वक कहा कि आपको आचार्य श्री ने तथा चतुर्विध सघ ने बुलाया है और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आपका मुख्य कर्तव्य है तो वे चलने के लिए तैयार हो गए।

भाई ! आज भी रक्षा-बन्धन का शुभ दिन है और आज के दिन प्रत्येक भाई अपनी बहिन के हाथ से रक्षा बन्धन बधवा-कर उसकी ताजिंदगी तक रक्षा करने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु रक्षा केवल बातों से या रक्षा-बन्धन की रस्म अदा कर लेने मात्र से ही नहीं हो जाती। उसके लिए समय पर तन, मन और धन का बलिदान भी देना पड़ता है। क्योंकि त्याग एव बलिदान के बिना रक्षा होना असभावित है।

भाई ! जब संसार पक्ष में भी रक्षा के निमित्त बलिदान देना पड़ता है तब जहा धर्म की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो जाय तब तो कितने भारी त्याग और बलिदान की आवश्यकता हो जाती। परन्तु धर्म की रक्षा वही कर सकता है जो अपने प्राणों की आहुति देने को भी तैयार हो जाता है। तो धर्म की रक्षा के लिए सर्वस्व भी अर्पण कर देना पड़ता है।

तो वे लब्धिधारी उक्त सभी साधु-साध्वियों की रक्षा करने को तैयार हो गए। वे उक्त साधु के मुख से सघ की आज्ञा का उल्लघन नहीं कर सके। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि मेरी साधना से भी कहीं अधिक महत्व संघ की आज्ञा पालन में है। अतएव वे उक्त साधु के साथ विद्या के द्वारा उड़कर सीधे

कपिलपुर मे जहां चतुर्विध-सघ एकत्रित था और उनकी प्रतीक्षा में था, पहुच गए।

जब सारी सभा ने दोनों लब्धिधारी मुनिराजों को देखा तो उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा। उक्त दोनों मुनिराजों ने आचार्य श्री की सेवा मे पहुचकर नमस्कार किया और विनय सहित प्रश्न किया कि भगवन्! आपने मुझे किसलिए याद फर्माया है? हे गुरुदेव! मेरे लायक जो भी सेवा हो उसे शीघ्र फर्माइए। मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को सहर्ष तैयार हूँ।

यह सुनते ही आचार्य श्री ने फर्माया कि हे शिष्य! तेरे जाने के बाद यहां का शासक नमूचि बन गया है। इसने अपने अपमान का बदला लेने के लिए इतना कठोर कानून जाहिर कर दिया है कि इससे बचने के लिए अब केवल आज की रात ही शेष रह गई है। अतएव सब की रक्षा करने के लिए जो कुछ भी उपाय करना हो वह कर लो।

आचार्य श्री के मुखारविन्द से उक्त वारदात सुनकर उन्हें बहुत दुख हुआ और नमूचि राजा की नीच भावना पर रोष भी उत्पन्न हुआ। उन्होंने कहा कि गुरुदेव! आपके शुभाशीर्वाद से सब काम ठीक हो जायेगा। आपको अब चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार गुरुदेव को नमस्कार करके वे सीधे राजमहलों मे पहुँच गए। ज्योंही महाराज ने अपने भाई मुनिराज को अचानक आया हुआ देखा तो उन्होंने मुनिराज को नमस्कार किया और महलों मे आने का कारण पूछा। तब मुनिराज ने कहा कि महा-

राज ! मैं तो मेरुचूलिका पर साधना में तल्लीन था परन्तु चतुर्विध सघ ने एकत्रित होकर मुझे यहां बुलाया है और आज्ञा प्रदान की है कि नमूचि प्रधान के जुल्मों से साधु-साध्वियों की रक्षा करो। और उक्त सम्बन्ध में ही मैं तुमसे कुछ बातें करने को उपस्थित हुआ हूँ। हे राजन्! तुमने भी किस नालायक को वचन में बद्ध होकर राजा बना दिया। उस दुष्ट ने आपको प्रसन्न करके इसी-लिए सात दिन का राज्य मांगा था कि वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए इस प्रकार का कानून बनाने मे समर्थ हो सके और बदला ले सके। और उसीके लिए उसने साधुओं को मरवाने का आर्डर दे दिया है। चूंकि कल सातवां दिन है और इसके लिए शीघ्र ही उपाय नहीं किया गया तो कल प्रातःकाल ही सब साधु लोग फासी पर चढा दिए जायेंगे। इसलिए आप ही बताइये कि उक्त साधुओं के प्राणों की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है।

जब महाराज ने अपने भाई मुनिराज के मुँह से उक्त समाचार सुने तो उनका हृदय भी दया से पसीज गया। उन्होंने कहा कि महाराज! मुझे पता नहीं था कि उस दुष्ट ने अपने अपमान का बदला लेने की नीयत से ही मुझसे सात दिन के राज्य का वचन लिया है। परन्तु जहा तक मेरी जिम्मेवारी और वचनबद्धता का प्रश्न है मैं उसके प्रति कुछ भी अनुचित कदम उठाने मे सर्वथा असमर्थ हूँ। यदि मेरे हाथ में सत्ता होती तो इसी वक्त-मैं उसे अपने राज्य से निकाल बाहर करता परन्तु आज की रात्रि तक तो वही राज्य का मालिक है। चू कि उस नमूचि के हाथ में कानून की बागडोर है अतएव मैं उसके विरुद्ध कुछ भी करने में मजबूर हूँ।

महाराज के मुँह से यह प्रत्युत्तर सुन कर मुनिराज विचारमग्न होगए और सोचने लगे कि जिससे रक्षा होना सम्भावित थी परन्तु वे ही अपने आपको असमर्थ बता रहे हैं। अब मुझे क्या अन्य उपाय करना चाहिए जिससे उन निरपराधियों के प्राण बच सकें। क्योंकि अब तो समय भी बहुत थोड़ा रह गया है और जिससे मुझे अपने कार्य मे सफलता प्राप्त होने की उम्मीद थी परन्तु उसने भी इस कार्य मे दखल देने से इन्कार कर दिया है अतएव अब मैं कहा जाऊँ और किससे उक्त साधुओं के प्राणों की भीख मागू ?

यदि महाराज पांच सौ साधु साध्वियों के प्राणों की रक्षा के शुभ कार्य में दखल देना चाहते तो दे सकते थे। परन्तु जब राजा ही उक्त नमूचि के कब्जे मे हो गया हो तो वह भी दखल-न्दाजी की कैसे हिम्मत कर सकता है। खैर! जैसी भवितव्यता होगी वैसा ही होकर रहेगा।

भाई! आज भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है और सारी हुकूमत राष्ट्रपति के हाथ में है। उन्होंने शासन की सुविधा के लिए अलग-अलग प्रान्तों में निर्वाचित हुकूमतें कायम कर दी हैं। परन्तु फिर भी जब कभी किसी प्रान्त मे अराजकता फैल जाती है और वहा की जनता उक्त मिनिस्ट्री से असहमत होकर विप्लव मचा देती है तो उस समय राष्ट्रपति अपने विशेष अधिकार के जरिए वहा की विधान सभा को भग करवा कर राष्ट्रपति शासन कायम कर देता है। तो इसी दृष्टिकोण से यदि राजा चाहता तो नमूचि के उक्त कानून को भंग करके उसे पदच्युत भी कर सकता

था। परन्तु वह तो स्वयं वचन बद्ध होकर नमूचि के कार्य मे हस्तक्षेप करना भी पाप समझने लगा था।

इस प्रकार जब मुनिराज के कहने का राजा पर कोई असर नहीं पडा तो उन्होंने सोच लिया कि यहा तो अब तिलों में तेल नहीं है अतएव मुझे सीधे नमूचि के पास जाकर ही उक्त साधुओं को बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। शायद मेरे अत्याग्रह और अनुनय-विनय करने पर उसका कठोर हृदय पानी-पानी हो जाय और वही अपनी आज्ञा को वापिस ले ले! क्योंकि मनुष्य-मनुष्य को खाता थोडे ही है इसलिए निर्भीकता पूर्वक उसके पास पहुॅच कर रूबरू मे ही उक्त समस्या का हल क्यों न कर लिया जाय! परन्तु भाई! आज प्राय: करके यही देखा जाता है कि छोटे मनुष्य बडे आदमियों के पास जाने मे भी सकुचाते और भयभीत होते हैं। परन्तु मेरा तो आप सबसे यही कहना है कि सच्चाई और न्याय के लिए किसी के पास भी पहुँचने मे संकोच नहीं करना चाहिए। ऊँचे से ऊँचे अफसर के पास जाने में भी भय मत लाओ और सभ्यता के साथ खुलकर बात करो। आपकी निर्भीकता और काबलियत देखकर उक्त अफसर भी पानी पानी हो जायेगा और जिस उद्देश्य से उसके पास जाना होता है उसमें यथासभव सफलता भी प्राप्त हो जायेगी।

तो इसी दृढ निश्चय के साथ वे मुनिराज, राजा से विदाई लेकर उक्त नमूचि राजा के पास पहुँचे। नमूचि राजा ने भी उनका राजा के भाई होने के नाते यथोचित स्वागत सत्कार किया और उनसे असमय मे आने का कारण पूछा। तब मुनिराज ने नमूचि से कहा कि प्रधानजी! आप सिर्फ सात दिन के लिए राजा बने

हैं और इतने थोड़े समय के लिए भी आपने इतना कठोर कानून बना दिया है कि जिसके अन्तर्गत पाच सौ महात्माओं के प्राण विसर्जन हो जायेंगे। देखो! आप जैसे राजा को इस प्रकार का अनुचित कर्म करवाते हुए शर्म आनी चाहिए। उन निरपराधियों को मरवाकर आप भी अपयश के भागी बन जायेंगे और भविष्य में भी अपने पापकर्मों का फल भोगने के लिए नीच गति मे जन्म लेना पड़ेगा। अतएव मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना हुक्म वापिस ले लें और सबको जीवन दान देते हुए ससार मे यश के भागी बन जाय।

देखो! दीवानजी। आपको यह भी भलीभांति विदित है कि ब्राह्मण, साधु, गौ और स्त्री हत्या का कितना भयंकर पाप माना गया है। अतएव उक्त घोर पाप से अपने आपको बचाने का प्रयत्न करें।

परन्तु भाई! जिस व्यक्ति के शरीर में एक सौ आठ डिग्री का बुखार चढ गया हो तो उसके सामने यदि बादाम का हलुआ भी रख दिया जाय फिर भी वह उसको ज़हर के समान प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार से उस नमूचि प्रधान को भी मुनिराज का उपदेश जहर के समान मालूम होने लगा। वह किसी भी तरह अपने इरादे को बदलने को तैयार नहीं था। इस प्रकार मुनिराज ने उसे नम्र शब्दों तथा कठोर शब्दों म जिस प्रकार भी समझाना था समझाया और कल तथा बल से भी काम लिया परन्तु उसके ऊपर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा।

जब मुनिराज ने देख लिया कि यह नमूचि प्रधान दृढ़

ढीट, जिद्दी और कठोर बन चुका है तो उनके सामने निराशा के बादल मडराने लगे। परन्तु फिर भी गभीरतापूर्वक विचार करते-करते उन्हें आशा की किरण दिखाई देने लगी।

उन्होंने अन्त मे दृढ़ निश्चय के साथ नमूचि से कहा कि प्रधानजी ! आपको इतना समझाने पर भी यदि आप अपने निश्चय पर अटल हैं तो कोई हर्ज नहीं। आप अपने बनाए हुए कानून को न तोड़े परन्तु मेरी एक छोटी सी बात तो मान लो। मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि आप मुझे थोडी सी जमीन तो रहने के लिए दे दो। मैं उक्त थोड़ी जमीन प्राप्त करके भी सतोष प्राप्त कर सकूँ।

जब नमूचि ने मुनिराज के मुंह से उक्त बात सुनी तो उसका हृदय थोड़ी देर के लिए पसीज गया। उसने मुनिराज से कहा कि महाराज ! जो मैं हुक्म निकाल चुका हूँ उसमे तो किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता और वे सब साधु कल फांसी पर चढ़ा दिए जायेंगे। परन्तु चूंकि आप महाराज के भाई हैं अतएव मैं आपके ऊपर दया करके इतना कर सकता हूँ कि आपके रहने के लिए साढे तीन पैर जमीन दी जा सकती है। यदि आप ठीक समझें तो उक्त जमीन अपने पैरों से नाप कर ले सकते हैं।

विष्णुकुमार मुनि ने नमूचि प्रधान के हृदय को पिघला हुआ जान कर मनमे विचार किया कि यह किसी प्रकार से जब मुझे साढ़े तीन पैर ज़मीन देने को तैयार हो गया है तो उक्त जमीन को स्वीकार कर लेनी चाहिए अन्यथा इससे भी हाथ धोना पड़ेगा। अतएव उन्होंने प्रत्यक्ष मे नमूचि से कहा कि प्रधानजी !

आपने जो मुझ पर दया दिखलाई है वह सराहनीय है। मैं आपके प्रस्ताव को सहर्ष मंजूर करता हूँ।

भाई! विष्णुकुमार मुनिराज तो लब्धिधारी संत थे। वे यदि चाहते तो उसे कभी का अपनी शक्ति के द्वारा भस्मीभूत कर डालते परन्तु वे इस प्रकार से उसकी हत्या करके पापकर्म का उपार्जन नहीं करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने राजा महापद्म से भी उसके विरुद्ध हस्तक्षेप करने के लिए कहा और बाद में स्वयं नमूचि के पास जाकर अनुनय विनय किया परन्तु जब वह अपने इरादे को किसी भी प्रकार बदलने को तैयार नहीं हुआ तो मुनिराज ने साढ़े तीन पैर ज़मीन लेना ही स्वीकार कर लिया। यद्यपि यह सभी जानते हैं कि साढे तीन पैर जमीन पर सभी साधु गण नहीं रह सकते हैं परन्तु विष्णुकुमार ने फिर भी भागते भूत की लंगोटी स्वरूप उक्त जमीन लेना ही श्रेयस्कर समझा। जब उन्होंने नमूचि को वचनबद्ध कर लिया तो अब साढ़े तीन पैर पृथ्वी नापना शुरु किया।

भाई! जो मानव दानव के रूप में इस संसार में विचरण करने लगता है तो एक दिन उसके पाप का घड़ा अवश्यमेव फूट कर रहता है। चूंकि नमूचि ने भी राज्यसत्ता प्राप्त कर अपने अपमान का बदला लेने के लिए समस्त साधुओं को फांसी के तख्ते पर लटकाने का हुक्म निकाल कर पाप के घड़े को भर लिया था अतएव अब उसके फूटने में भी देर नहीं थी। उसने अपने विनाश के बीज अपने ही हाथों बो लिए थे।

जब उसने विष्णुकुमार को साढ़े तीन पैर जमीन नापने की आज्ञा प्रदान कर दी तो उन्होंने अपनी लब्धि के द्वारा एक

लाख योजन का लम्बा शरीर बना लिया। उन्हें तो केवल नमूचि को उसके पापों का प्रायश्चित करवा कर धर्म की रक्षा करनी थी अतएव उन्होंने अपना एक पैर जम्बू द्वीप की ;जगती पर रखा और दूसरा मेरू पर्वत पर रख दिया। इस प्रकार विकराल रूप बनाकर क्रोध के आवेश मे वे नमूचि से कहने लगे कि अरे दुष्ट! अब तू बता कि बाकी डेढ़ पैर कहां रखूं ?

उक्त भयंकर रूप देखकर और डेढ़ पैर कहां रखूं यह प्रश्न सुनकर वह नमूचि घबरा गया और आवाक् रह गया। वह मन ही मन कहने लगा कि हाय ! यह मैंने क्या गजब कर दिया कि इस विष्णुकुमार को साढ़े तीन पैर जमीन नापने का वचन दे दिया ! मुझे क्या मालूम था कि एक जैन साधु भी इतनी शक्तियों का सचय रखता है और वक्त पडने पर उन शक्तियों का परिचय भी दिखाता है ! अरे ! यह तो बड़ा गजब हो गया ! अब तो मेरे प्राण भी सुरक्षित रहना असंभव सा प्रतीत होता है ? कहीं इस धर्म संकट युद्ध मे मेरे प्राणों की ही आहूति न हो जाय!

जब नमूचि विष्णुकुमार मुनि के प्रश्न के उत्तर में कुछ भी नहीं कह सका और अपने प्राण बचाने की कोशिश करने लगा तो उसी वक्त उन्होंने एक पैर उसके मस्तक पर रख दिया। इस प्रकार विष्णुकुमार मुनि के पैर रखने पर नमूचि का कचूमर निकल गया और वह वहां से मरकर अपने पाप कर्मों का फल भोगने के लिए सीधा नरक मे चला गया। यह परिस्थिति देख नगर के सारे ही स्त्री-पुरुष घबराने लगे और सोचने लगे कि कहीं मुनिराज की क्रोधाग्नि में सारा नगर जलकर भस्म न हो जाय। अतएव मुनिराज के क्रोध को शान्त करने के लिए राजा,

प्रजा और देवता भी आकर उनके चरणों में गिर पड़े और विष्णुकुमार से प्रार्थना करने लगे कि हे महामुनि! आप तो परम दयालु हैं और एक कीड़ी को सताने मे भी पाप मानते हैं अतएव आप हम लोगों पर दया करके अपनी विद्या को वापिस समेट लो।

इस प्रकार उन सब लोगों के द्वारा प्रार्थना करने पर और दया की भीख मागने पर विष्णुकुमार मुनि का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने अपने विकराल रूप को समेट कर पुनः अपना असली रूप बना लिया। इस प्रकार वे अपने असली शरीर को धारण कर अपने गुरुदेव के पास चले आए। उन्हें अपने कार्य में सफल हुआ देख सभी साधु-साध्वियों के दिल मे शांति स्थापित हो गई। क्योंकि जब हुक्म देने वाला नमूचि ही इस संसार में नहीं रहा तब हुक्म का पालन भी कैसे कराया जा सकता है। तो अकेले विष्णुकुमार ने धर्म सकट कालीन परिस्थिति मे अपनी लब्धि के द्वारा आततायी को नष्ट करके पाच सौ साधुओं की रक्षा कर ली। इस प्रकार पाच सौ साधुओं के प्राणों की रक्षा होते ही वह दिन इतिहास के पृष्ठों पर रक्षा दिवस के रूप मे प्रसिद्ध हो गया। उसी दिन से रक्षा बन्धन पर्व का प्रादुर्भाव हुआ और आज तक मनाया जा रहा है।

भाई! उक्त विष्णुकुमार मुनिराज ने लब्धियाँ प्राप्त कीं तो वक्त पर वे धर्म की रक्षा के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करने मे भी समर्थ हो सके। इसीलिए श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने साधु साध्वियों को सभी ज्ञान प्राप्त करने की तो आज्ञा प्रदान की परन्तु उनका प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए-पेशे के रूप में

प्रयोग करने की इजाजत नहीं दी। हां! जब कभी धर्म की रक्षा करने का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाय तो साधक को अपनी शक्ति का परिचय दिखलाने की उसकी इच्छा पर निर्भर है। परन्तु आज तो कुछ विचित्र ही दशा साधु समाज की दृष्टिगोचर हो रही है। आज हम देखते हैं कि विविध समाजों के साधु अपने साधु वेष को भी कलङ्कित करते जा रहे हैं। वे दस बीस रुपये प्राप्त करने के लिए और अपने स्वार्थ पोषण के लिए गृहस्थवर्ग को दवा दारु, मन्त्र, जन्त्र और तन्त्र आदि के प्रयोग करके अपनी सञ्चित धर्म कमाई को ठिकाने लगा रहे हैं। जबकि इस प्रकार के कर्म एक साधु जीवन मे अशोभनीय है और सयम के घातक है। अतएव प्रत्येक साधक को उक्त मन्त्र जन्त्र का प्रयोग दूसरों के लिए नहीं करना चाहिए।

भाई! उक्त विष्णुकुमार मुनि ने धर्म की रक्षा के निमित्त अपनी विद्या का प्रयोग किया और उक्त जाल में फँसकर नमूचि प्रधान को जान से हाथ धोना पड़ा। परन्तु उन्होंने अपने गुरु के पास आकर उनकी आज्ञानुसार अपने पापों की आलोचना की और प्रायश्चित करके आत्मा की विशुद्धि की। क्योंकि भाई! छद्मस्थ अवस्था में कभी-कभी जीवन में क्रोध आ ही जाता है। वह क्रोध कभी किसी के कहना नहीं मानने पर अथवा किसी के द्वेषी, क्लेषी या अन्यायी बन जाने पर सहजभाव में उभड़ पड़ता है। जब एक लब्धिधारी तपस्वी साधक के जीवन मे क्रोध का समावेश हो जाता है तो वह तपस्या के प्रभाव से सबको नष्ट भी कर सकता है।

तो विष्णुकुमार महामुनि ने नमूचि के जुल्मों से पांच सौ

साधुओं की रक्षा की। अतएव उसी दिन से रक्षा-बन्धन पर्व का श्री गणेश हुआ।

भाई! स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० ने भी रक्षा-बन्धन पर्व पर एक सुन्दर भावपूर्ण कविता का निर्माण किया था और उसी कविता को मैं आपके सामने रख देना उचित समझता हूँ। निम्न कविता में रक्षा बन्धन के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए उच्च कोटि की शिक्षा भी भर दी गई है। हां, तो कवि महोदय अपनी कविता में बता रहे हैं कि:—

रक्षा आई रे, सब रक्षा करो, सन्देशा लाई रे॥ टेक॥

बहिन भाई के रक्षा बांधे, लीजे मने निभाई रे।
सासरिया में गाज सकूं, पीहर के माही रे॥ १॥

रक्षा बांधे वणिक कलम के, और दवात के ताई रे।
प्रतिज्ञा है नीति धर्म से, करूं कमाई रे॥ २॥

क्षत्रिय खड्ग के राखी बांधे, प्रजा रक्षा ताई।
दीन गरीब को कोई भी, नहीं सके सताई रे॥ ३॥

ब्राह्मण सेठ क्षत्रिय के बांधे, देखो रक्षा जाई रे।
धर्म और धार्मिक की, रक्षा करो सदाई रे॥ ४॥

रक्षा-बन्धन को यह सारो, समझो मतलब भाई रे।
चौथमल राणाजी को, रक्षा सुनाई रे॥ ५॥

भाई ! रक्षा-बन्धन के दिन वहिन अपने भाई के घर जाकर राखी बाधती है। वह उसके हाथ में प्रेम-सूत्र बांधते हुए यही भाव दर्शाती है कि हे भाई ! मुझे जीवन भर तेरा ही सहारा है अतएव मुझे दुख-सुख मे संभालते रहना। मैं तेरे प्रेम के पीछे अपने सासरे में और पीहर मे भी गाज सकूं ऐसा मीठा सम्बन्ध बनाए रखना।

इसी प्रकार व्यापारी वर्ग भी रक्षा-बन्धन के त्योंहार को मनाता आ रहा है। वह प्रतिवर्ष रक्षा बन्धन के दिन अपनी दावात और कलम के राखी बांधकर प्रतिज्ञा करता है कि मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा अर्थात् मैं नीति पूर्वक कार्यों में ही तुम्हारा सदुपयोग करूंगा। मैं आयन्दा अनीति से धन कमाने में तुम्हारा उपयोग नहीं करूंगा।

भाई ! क्षत्रिय लोग भी इस पर्व का महत्त्व कुछ कम नहीं समझते। वे क्षत्रिय राजपूत भी आज के दिन अपनी तलवारों के मूठ पर रक्षा-बन्धन बाधते हैं और भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं कि हम भी भवानी की रक्षा करेंगे और इसका निरपराध प्राणियों को मौत के घाट उतारने मे कभी भी उपयोग नहीं करेंगे। हम सदैव इसका उपयोग अन्याय का प्रतिकार करने तथा निर्वलों की सहायता करने मे ही सदुपयोग करेंगे। तो उन क्षत्रियों के रक्षा-बन्धन पर्व मनाने का भी उद्देश्य यही है कि वे भी आज से निर्वलों की रक्षा करेंगे। क्योकि सपतिशाली, सत्ताधीश या बलवान होने की तभी सार्थकता है कि जब वे किसी निर्धन या निर्वल व्यक्ति की अपनी शक्ति के द्वारा रक्षा करे। और बलवान ही सब की रक्षा

करने मे समर्थ हो सकता है अतएव बलवान ही उक्त प्रतिज्ञा को धारण कर सकता है।

अरे ! उक्त पर्व को ब्राह्मणवर्ग भी उल्लास के साथ मनाता हुआ दृष्टिगत होता है। वह आज के दिन सेठ, साहूकार या क्षत्रिय के हाथ मे रक्षा बन्धन बाधता है और अपने यजमानों की रक्षा के लिए मन्त्रोच्चारण करता है। उक्त त्यौहार को मनाते हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं फिर भी यह पर्व साविक दस्तूर चला आ रहा है। यह त्यौहार भारतवर्ष में भाईचारे और प्रेम का सूत्रपात करने वाला है। यह सबको प्रेम-सूत्र में बाधने का काम करता है। क्योंकि जिस देश के निवासियों मे आपस में प्रेमभाव रहता है वहा सुख और आनन्द की गंगा बहती रहती है। परन्तु जहां प्रेम का अभाव होता है वहा की सुख-समृद्धि भी गायब हो जाती है और दुख की घटा घिर जाती है।

इसलिए ब्राह्मण भी रक्षा बन्धन बांधते समय अपने मुंह से यही उच्चारण करते हैं कि हे प्रभो ! धर्म और धर्मी पुरुषों की रक्षा करना। तो वास्तव में रक्षा बन्धन पर्व मनाने का यही उद्देश्य है कि आपस में प्रेमभाव रखते हुए हम सुख दुख में एक दूसरे के मददगार बनें।

भाई ! उक्त कविता का निर्माण स्व० जैन दिवाकरजी म० ने उस समय किया जब कि वे उदयपुर में विराजते हुए आज के दिन महाराणा फतहसिंहजी के विशेप आग्रह करने पर राजमहलों मे उपदेश देने को पधारे थे। उस दिन दिवाकरजी म० ने रक्षा बन्धन पर प्रवचन फर्माते हुए उक्त कविता को सुनाई थी। और उसी को आज मैंने भी आपके समक्ष सुना दी है।

तो आज के विशेष महत्वपूर्ण दिवस पर मेरा भी आप लोगों से कहना है कि आप भी आजके दिन प्रतिज्ञा करें कि हम लोग आपस में प्रेमभाव रखते हुए अपने समाज के निर्धन, अनाथ, और विधवाओं की रक्षा करते हुए उन्हें सब प्रकार से सुखी बनायेंगे।

अचम्भे का बच्चा

भाइयो ! अब मैं आपके सामने थोड़ासा वर्णन अचम्भे के बच्चे का भी सुना देना चाहता हूँ। आशा है आप थोड़ी देर और स्थिरता रखकर सुनने की कोशिश करेंगे।

तो दीवान जब जितशत्रु राजा को हर तरह की हित शिक्षा देकर हताश और निराश हो गया तो उसने भी अन्तोगत्वा अपने मन मे विचार कर लिया कि मैंने तो अपना फर्ज अदा कर दिया है और फिर भी राजा यदि किसी प्रकार मानने को तैयार नहीं तो मैं भी क्या कर सकता हूँ। जब राजा ही स्वयमेव बहुत रोकने के उपरान्त भी कुए मे पड़ना चाहता है तो अब उसे रोकना मेरी शक्ति से परे की बात है। खैर ! ठोकर खाकर भी यदि ये सम्भल जायेंगे तब भी कोई बात नहीं है। परन्तु अब मुझे इनके विचारों के अनुकूल ही ऐसी तरकीब बनानी चाहिए जिससे इन्हें श्रीमती सेठानी भी प्राप्त हो जाय और इनकी इज्जत भी बनी रह जाये।

भाई ! नीतिकारों ने भी कह दिया है कि संसार में राज-हठ, त्रिया हठ, साधु हठ और बाल हठ प्रसिद्ध है। जब राजा स्त्री, साधु या बालक किसी चीज को प्राप्त करने के लिए हठ कर लेता है तो वह उसे पूरी किए बिना चैन नहीं लेता। उस समय

यदि कोई मनुष्य कितना ही समझाए और उपदेश दे परन्तु उसका उस पर कोई असर नहीं पडता।

तो दीवान ने प्रत्यक्ष मे राजा से कहा कि हे महाराज! मैंने तो आपका दिल देखने के लिए ऐसा कहा था वाको आपके हुक्म की तामील करना मेरा परम कर्तव्य है। मैं अब आपके समक्ष वह उपाय रखता हूँ जिससे सांप भी मर जाय और लाठी भी नहीं टूटे?

हे राजन्! आप किसी कारण से उक्त सागर सेठ को राजमहलों मे बुलवा ले। जब वह आपकी आज्ञा प्राप्त कर यहां आ जायेगा तब आप इस प्रकार बोलिएगा और मैं इस प्रकार बोलूंगा। अर्थात् सिद्ध साधक बनकर सेठ को अपने कार्य के लिए तैयार कर लेंगे। जब वह आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हो जाये तो आप उसे कहिएगा कि सेठजी! मैंने तुम्हें इसलिए याद फर्माया है कि हमारे अन्तःपुर में रानियों ने कभी से हठ पकड़ ली है कि महाराज! आप तो इधर उधर राज्य कार्य से बाहर पधार जाते हैं परन्तु हम सब पर्दे में बैठी बैठी घुला करती हैं। हमारी इस प्रकार एक जगह बन्द रहने से तबियत उकता चुकी है। इसलिए हमारे मनोरंजन के लिए कोई ऐसी मनोरंजक चीज मंगवा कर दीजिए जिससे हमारा मन पर्दे के अन्दर भी लगता रहे। और वह चीज है "अचम्भे का बचा"।

इस प्रकार हे राजन् ! आप उसके सामने मनघड़न्त बात बनाकर "अचम्भे के बच्चे" को लाने का प्रस्ताव रख दीजिएगा और जब वह बर्बस होकर उसे लाने के लिए चला जाएगा तो फिर श्रीमती सेठानी आपके कब्जे में आसानी से आ जायेगी और आपकी इच्छा पूरी होने में कोई बाधा भी नहीं आयेगी।

उक्त तरकीब सुनकर राजा का दिल बाग बाग हो गया। उसके खुशी का ठिकाना न रहा। उसने फौरन दीवान को शाबासी देते हुए कहा कि वाह रे दीवान! तेरी भी अक्ल का ठिकाना नहीं। इस तरकीब से मुझे श्रीमती सेठानी भी हस्तगत हो जायेगी और मेरी बदनामी भी होने से बच जायेगी। भाई! यद्यपि दीवान के हृदय में उक्त उपाय बताते हुए पश्चाताप तो अवश्यमेव हो रहा था परन्तु वह इसके सिवाय कर भी क्या सकता था। उसने यही विचार कर लिया कि जो जैसा करेगा वैसा ही भरेगा।

इस प्रकार राजा दीवान से उक्त तरकीब सुनकर अपने महल में सोने को चला गया परन्तु उसे रात भर नींद नहीं आई और वह इसी विचार में व्यस्त रहा कि कब सूर्योदय हो और कब मैं सागर सेठ को बुलाकर अपना मनोरथ पूर्ण करूँ।

भाई! जब एक राजा अपने प्रजा की बहू-बेटियों के साथ भी दुर्व्यवहार करने को तैयार हो जाता है तो वह रक्षक के

बजाय भक्षक बन जाता है। ऐसे अन्यायी राजा को अपने दुष्कर्मों का प्रतिफल मिले बिना नहीं रहता। वह इस लोक में तो निंदा एव घृणा का पात्र बनता ही है परन्तु परलोक में भी उक्त कर्मों का फल भोगना पडता है।

तो राजा भी परस्त्री के मोह में कामान्ध बन गया और दीवान के द्वारा उक्त तरकीब बताये जाने पर प्रसन्नता प्रकट करने लगा परन्तु सारी रात तारों को गिनते गिनते पूर्ण की।

अब किस प्रकार प्रातःकाल होने पर राजा सागर सेठ को राज दरबार मे बुलाएगा और किस प्रकार अचम्भे का बच्चा लाने के लिये हुक्म देगा यह सब कुछ आगे श्रवण करने से ज्ञात होगा।

तो मेरा आप सभी भाई बहिनों से कहना है कि आप सब अपने धर्म मे दृढ रहते हुए असद् विचारों को तिलांजलि दे दें।

इस प्रकार जो भव्यात्मा धर्माचरण में अपने जीवन को व्यतीत करेगा वह सच्चे मायने में रक्षा-बन्धन के पर्व को मनाता हुआ इस लोक तथा परलोक में सुखी बनेगा।

बैंगलोर (केन्टोनमेंट)
ता० १८-८-५६
मङ्गलवार

★★

पं० बालकृष्ण उपाध्याय के प्रबन्ध से
श्री नारायण प्रिंटिंग प्रेस ब्यावर में मुद्रित।